

नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र

नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र

लेखक
गजानन माधव मुक्तिबोध



राधाकृष्ण प्रकाशन

©
रमेश गजानन मुक्तिशोध
भिलाई
१९७१

प्रकाशक
अरवि-दकुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन
२ जमारी रोड दरियागज
जिल्ला ६

दो शब्द

स्वर्गीय पिताजी की अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करवाने के लिए अनेक साहित्यकारों ने बार-बार मुझे प्रेरित किया। उनके समकालीन साहित्यकारों तथा अनेक युवा लेखकों से समय-समय पर उनकी प्रकाशित अप्रकाशित पूर्ण-अपूर्ण रचनाओं पर चर्चा होती रही। फलतः तमाम रचनाओं की खोज की एक योजना बनायी गयी। पिताजी की हरेक साहित्यिक विधा को अलग-अलग किया। उनकी प्रतिलिपियाँ उतारी। स्वाभाविक ही इसमें काफी समय लगा। अब तक की खोज का परिणाम स्वरूप एक उप-यास प्रकाशित हो चुका है तथा एक कहानी-संग्रह प्रस्तुत है। इनके अलावा एक कविता-संग्रह जो शीघ्र प्रकाशित हो रहा है और यह महत्वपूर्ण कृति प्रस्तुत है।

ये रचनाएँ भी शीघ्र ही श्री गजानन माधव मुक्तिबोध के पाठकों के सामने प्रकाशित रूप में आ जायेंगी ऐसी संभावना है।

भिलाई नगर

रमेश गजानन मुक्तिबोध

क्रम

रचनाकार का मानवतावाद	६
छायावाद और नयी कविता—१	३२
छायावाद और नयी कविता—२	३६
नयी कविता निम्नहाय नकारात्मकता	४६
नयी कविता की प्रकृति	५१
प्रयागवाद	६१
आधुनिक हिन्दी कविता में यथाथ	६४
प्रश्न यह है कि आन्विर रचना क्यों ?	६६
प्रगतिशीलता और यातनाग्रस्त मानवता	७२
जनता का साहित्य किसे कहते हैं ?	७७
काव्य की रचना-प्रक्रिया	८२
माक्सवादी साहित्य का मौ-दय पक्ष एक प्रत्युत्तर	९८
साहित्य के दृष्टिकोण	१०७
समाज और साहित्य	११२
कलात्मक अनुभव	१४७

रचनाकार का मानवतावाद

नयी कविता पर विचार करते वरत में यह सोचन लगता है कि उसमें प्रेरणा मय मानवतावादी दृष्टि होनी चाहिए। किंतु इस प्रकार कुछ कह देन स नयी कविता में या किसी भी कविता में वे गुण उत्पन्न नहीं हो सकते कि जिनका जाग्रह में कर रहा हूँ या दूसरे कर रहे हैं। प्रेरणामय मानवतावादी भावधारा उसमें तब तक उत्पन्न नहीं हो सकती जब तक कि समाज में या जीवन-अंगत में मानवतावादी भावधारा का उत्कट और व्यापक प्रभाव न हो। जयवा रचनाकार का ऐसा प्रचण्ड व्यक्तित्व न हो कि उसका मान लीजिए वाल्ट व्हिटमन का था। यदि कुछेक समीक्षारतों और विचारकों के अनुरोधों और आप्रहों से कविता का रूप रंग बन पाता तो न मालूम कितने ही समीक्षकों और विचारकों के भिन्न भिन्न जाग्रहों और अनुरोधों के अनुसार कविता के भिन्न भिन्न रूप रंग हो जाते। लेकिन ऐसा नहीं हो पाता, न ऐसा होना चाहिए। क्या, ऐसा क्या नहीं होना चाहिए !

यह इसलिए नहीं होना चाहिए कि काव्य में—साहित्य में चूँकि आभ्यन्तरिक जीवन-दृष्टि प्रकट होनी है इसलिए जब तक कि रचनाकार वास्तविक अनुरोधों और आप्रहों को स्वीकार करके उनमें प्राप्त सत्या के अनुसार जीवन का आभ्यन्तरीकरण नहीं करता तब तक वह नवीन दृष्टि से अर्थात् उन अनुरोधों और आप्रहों को, अन्तर में म्यान देकर उनकी क्रियाशील शक्ति से आभ्यन्तरिक जीवन को वाच्य में बलात्मक रूप से प्रकट नहीं कर सकता। और यदि वह इस प्रकार के आभ्यन्तरीकरण के विना रचना उपस्थित करता है तो निस्संदेह उसकी उम रचना में बलात्मक गुण उत्पन्न नहीं हाने—एक गुण जो प्रभावकारी है। दूसरे शब्दों में उनमें वह सौम्य उत्पन्न नहीं होगा जो बलावृत्ति के लिए आवश्यक होता है।

तो मुझे प्रत्येक वास्तविक अनुरोधों और आप्रहों की दृष्टि से जीवन के आभ्यन्तरीकरण का ही अर्थान अपना व्यक्तित्व के—अपने बलात्मक व्यक्तित्व के समोपन तथा पुनः मशापन का है, न कि बस नवीन दृष्टि का अभिव्यक्ति का। दूसरे

पाते ?

केवल वे ही सवेदनात्मक अनुभव केवल वे ही अनुभवात्मक सत्य कलात्मक अभिव्यक्ति पा लेते हैं जो लेखक के सवेदनात्मक उद्देश्या के—रचना उपस्थित करने वाले सवेदनात्मक उद्देश्या के अनुसार होते हैं। रचना उपस्थित करने वाले सवेदनात्मक उद्देश्य किस प्रकार के होते हैं ?

क्या यह सत्य नहीं है कि अपन जीवन में प्राप्त विशेष अनुभवा और विशेष भाव प्रेरणाओं को ही लेखक प्रकट करता है तथा इतर अनुभवों और भाव प्रेरणाओं को वह व्यक्त नहीं करना चाहता या उन्हें व्यक्त करने की व्याकुलता उसमें उत्पन्न नहीं हो पाती। रचना प्रसूत करने वाले उससे सवेदनात्मक उद्देश्य उन विशेष व्याकुलताओं की ही एक शाखा है कि जो व्याकुलताएँ अनुभूत जीवन के किसी विशेष अंग या क्षेत्र ही से सम्पन्न होती हैं और उन्हीं से उत्पन्न या निष्पन्न होती हैं। ये अनुभवात्मक जीवन उनसे अलग रह जाता है अर्थात् कलात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने के लिए आतुर नहीं होता। क्या यह सत्य नहीं है ! !

कलात्मक रचना का मनोविज्ञान निम्न देह एक महत्वपूर्ण विषय है। कलाकार बाह्य अनुराधों और जाग्रहों को स्वीकार करके भी और तन्नुसार अपन अंततत्त्वों की व्यवस्था का सम्वार करते हुए भी उन अनुराधों और जाग्रहों को कलाकृति में अवतरित करे ही यह आवश्यक नहीं होता—अर्थात् वह बसा करेगा ही, यह अनिवार्य नियम नहीं है—इसके विपरीत बहुधा यह देखा गया है कि लेखक चुप हो जाता है (समय के कारण तरह-तरह के होंगे) अथवा वह अपनी दिशा बदल देता है या वह सकल्पशील कम-जीवन में प्रविष्ट होकर उनकी पूर्ति करने लगता है।

किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि आभ्यन्तरीकृत अनुरोध तथा जाग्रह कलाकृति में व्यक्त नहीं होने या उनके अनुसार कलाकृति निर्मित नहीं होती नहीं हुआ करती। यह सब कुछ कलाकार की उन आंतरिक व्याकुलताओं पर निर्भर है, जिन्हें मैं पहले सवेदनात्मक उद्देश्य कहा।

सब बातें तो यह हैं कि सब कुछ कलाकार के व्यक्तिगत निर्माण के इतिहास, उसके सवेदनात्मक जीवन के इतिहास और उन सबसे बने हुए कथि-स्वभाव पर निर्भर है।

किंतु ऊपर जो पचीसगियाँ बताई गई हैं उनका मतलब यह नहीं है कि लेखक कलाकार बाह्य अनुरोधों या जाग्रहों को स्वीकार नहीं करता ! ! अथवा उसके स्वभाव से जो भिन्न और बाह्य हैं—जागतिक वने अनुरोध—उनका वह विरोध ही करता रहता है। नहीं यह बात ग़री।

इनके विपरीत सच्चा सवेदनात्मक लेखक-कलाकार अपने को बाह्य प्रभावों

की प्राण बराने निरा छद्रा छोड़ देता * या उग छोड़ देना चाहिए। कनासार या जितना महान् काय हो जीवन प्राण की सुखता में उतना अन्तर छोटा ही है। इसीलिए यह जीवा जगत् के निम्बा प्रेरणापूर्ण दृश्या भाव विचारपारतन्त्रा व सार-मत्या को पीना रत्ना है या पीने रत्ना चाहिए।

इस प्रकार की प्रवृत्ति यदि उगम है तो यह बाह्य अनुरोधा और आग्रहा को अपने सवेत्तनीन विषय द्वारा ग्रहण कर उन्हें अपने ढंग में जानाया कर रहा है। लघु रत्नासार भव ही इस तथ्य या अन्वीकार कर दे कि वह बाह्य अनुरोधा या आग्रहा का कल्पिनी मानता किन्तु मय तो यह है कि वह अपने ढंग में उन्हें निमी त्रिती रूप में स्वीकार करता रहता है। तभी नी और निगम भी उग मत्प्राण विद्यार्थी रत्ना है उग मत्प्राण को मोघ पीना है। निगम यह आत्मसातकरण उमर अपने अन्तर्जीवन से सम्बद्ध है। वह उन मत्प्राण को अपने सवेत्तनीन अन्तर्जीवन में भिन्ना लेता है। इस प्रकार प्रमा लेखक व्यक्तित्व का विनाश होना जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि लेखक बहुत बार बाह्य अनुरोधा या आग्रहा को स्वीकार करके उन्हें आमसात् परके अपने सवेदनात्मक अन्तर्जीवन में भिन्ना कर भी या तो चुप हो जाता है या अपनी दिशा बदलकर सवेत्तनीन बर्द्ध जीवा में प्रविष्ट हो जाता है। किन्तु आमसात् कृत उन बाह्य अनुरोधा या आग्रहा व अनुरोधा का विनाश होना जाता है।

यदि हम यह मान लें कि वे बाह्य अनुरोधा और आग्रहा उमरे अन्तर्जीवा के दृष्टिगत वा चुके हैं उक्त प्रेरण तत्त्व बन चुके हैं तो क्या कारण है कि वह बगी कलाकृतियाँ उपस्थित नहीं कर पाता।

इसका सभवत एव कारण यह है कि लेखक के पास उस प्रकार की अभिव्यक्ति का अभ्यास नहीं है कि जसी अभिव्यक्ति उन अनुरोधा और आग्रहा की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है।

चरन के लिए अनवरत अभ्यास की आवश्यकता है। होना यह कि लेखक अपने नवीन अनुरोधा (बाह्य अनुरोधा के आत्मसात् प्रभावों से उत्पन्न आग्रहा) द्वारा प्रेरित होकर चलता तो है उसका पास रहने के लिए भी बहुत-कुछ होता है किन्तु तदनुसार सक्षम अभिव्यक्ति के विकास व प्रारम्भिक चरण में होने से वह आत्मविश्वास गो देना है। नवीन अनुरोधा नवीन बन्धु ने आते हैं उन बन्धु को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करना सरल वाय नहीं जाना। उन बन्धु को व्यक्त करके लिए प्रभावोत्पत्तिक कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने के लिए तदनुसरणीय अभिव्यक्ति पद्धति का विकास करना पड़ता है। अतएव लेखक वस्तुतः गुरु में सक्षम अभिव्यक्ति के विकास के प्रारम्भिक चरण ही में लडवडाता

रहना है ।।

क्या लडखडाता रहता है ।। इसलिए, जबतक उसने जिग अभिव्यक्ति पद्धति और सौन्दर्याभिरुचि का विकास किया है वह—एम्पेटिक पटन—नवीन कथ्य की अनुमानिणी मक्षम अभिव्यक्ति के पथ पर चलने वाले मन को मोड़ते हैं भावा और गब्दा को व्यवस्था-बद्ध करने वाली उमकी (गलत शब्दा का और अनायाम उत्पन्न हुए किन्तु मदम न रखने वाले भावा और गब्दा का स्वीकार करने वाली उसकी) आलोचन-सञ्ज्ञाधन-सम्पादन दष्टि म बाधा और व्यतिरक् मन्नेह और गका उत्पन्न कर देते है । बार बार यह घटना होन पर लेखक उम विषय-क्षेत्र के उम पथ पर आत्म विरसास पादता है लडखडा जाता है और हाय म लिया हुआ काम फेंक देता है ।

किन्तु यदि वह कथ्य अन्तर्जीवन मे स्थायी बना हुआ है, उम कथ्य को मवेत्न करने वाली अन्तर्बाह्य स्थिति-परिस्थितिया बराबर बनी हुई है देश समाज और साहित्य क्षेत्र का वातावरण ऐसा है कि उम विशेष प्रकार के कथ्य को महत्त्व प्राप्त हा गया है तो लेखक श्रमपूर्वक, तथा पुन-पुन प्राप्त असफलता का वावजू सक्षम अभिव्यक्ति प्राप्त करने के बारम्बार प्रयत्न म स्वय कनात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त कर लेता है । और साहित्य-क्षेत्र म, निज विशिष्ट स्थान बना लेता है ।

मनुष्य का स्वभाव है कि जा सुकर है जो सुगम है उस अपनाता है जो कठिन है, जो श्रम साध्य है उस वाह्यत मूल्य प्रदान करते हुए भी अपनाता नहीं । उसकी यह आदत अपन जीवन ही के मूल्यवान् तत्त्वा को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं करने देती । परिणामत स्वय क ही कुछ आवत और पुनरावत भावा और अभिव्यक्ति-पद्धति का—भले ही व उसके जीवन मे वस्तुतः विशेष स्थान न रखते हा दुहगता रहता है उन्ही की जुगाली करता रहता है । परिणामत उमका वास्तविक अन्तर्जीवन (और उसका व्यक्तित्व तथा जीवन प्रमग भले ही किमी अ य उप यानकार का विषय हो जाएँ) उमकी कला म व्यक्त नहीं हो पाता । एसी स्थिति म, यह कहना कि कलाकृति म कवि-कलाकार आत्मो दषादन करता है अत्यन्त सन्तुचित और वायवीय अथ ही म सही हो सकता है ।

कलाकृति म व्यक्त भाव किन्ही विशेष सन्तर्भों म लेखक के त्रिण महत्त्वपूर्ण होन है । कोई लेखक मान आत्मगतानि जथवा कोई युभुक्षित वासना का दमित रूप जथवा जय काई सामाजिक आलोचन प्रकट करता है । किन्तु जो विशेष भाव लेखक प्रकट करता है केवल व ही उसके हृदय मे है तथा अय नहीं, यह मानना गलत है । जाना यह है कि केवल यत्त किए जाने वाले भावा को कोई अनिरिक्त मूल्य प्रदान करता है नैप भावा को नहीं । परिणामत केवल वे ही भाव तथा उनके आमपास नगे हुए भाव ही वह प्रकट करता है । शेष को

छोड़ देता है। दूसरे शब्दों में लेखक अपनी मूल्य भावना के अनुसार आभ्यन्तर भावों को प्रस्तुत करता है। और उससे अंतःकरण में एक मूल्य भावना होती है जो उसे कि-ही विशेष भावों को प्रकट करने के लिए तैयार करती रहती है। दूसरे शब्दों में लेखक अपना एक एस्पेक्टिवस तैयार कर लेता है।

पहले ही यह बताया जा चुका है कि लेखक के अंतःकरण में सवेदनात्मक अनुभवा की गहन अंतर्दृष्टि सम्पन्न व्यवस्था विकसित होती रहती है, (ऐसी व्यवस्था अपने अपने ढंग से प्रत्येक के हृदय में विकसित होती रहती है) सवेदनात्मक अनुभवों की यह गहन अंतर्दृष्टि सम्पन्न व्यवस्था क्या है? सवेदनात्मक अनुभवों में गहन जीवन आलोचन के जो सूत्र होते हैं वे सूत्र ही सवेदनात्मक अनुभवों से उत्पन्न या उनसे समुक्त अंतर्दृष्टि हैं। यह जीवन आलोचन इतना निज गत निज-बद्ध और सवेदनायित होता है कि उसको सवेदनात्मक अनुभवों से विच्छिन्न करने, पथक रूप से, स्थापित करना कदाचित् संभव नहीं है। वे हमारे सवेदनात्मक जीवन के ही इतिहास का एक अंग हैं।

दूसरे शब्दों में मानव अंतःकरण में आलोचन धर्म मूलभूत है। वह सवेदनात्मक अनुभवा से प्राथमिक अवस्था में अविच्छिन्न होता है। किंतु आग चलकर वह सामाजिककरण के रूप में जीवन-तथ्यों के सामाजिककरण के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार मानव अंतःकरण में सवेदनात्मक आधारों पर अनुभव-आधारों पर एक विशेष प्रकार की जीवन-ज्ञान-व्यवस्था उत्पन्न और विकसित हो जाती है। यह जीवन-ज्ञान-व्यवस्था मूल्य भावनाओं और आलोचन-सूत्रों को अपने में सम्मिलित किए रहती है। संक्षेप में, जीवन-ज्ञान व्यवस्था में मूल्य भावना और आलोचन सूत्र होते ही हैं। यह जीवन-ज्ञान-व्यवस्था अपने-आपसे क्रम में विकसित होती जाती है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि इसके अंतर्गत समाया हुआ जो विश्व-बोध या जीवन-जगत-बोध है, जो मूल्य भावना है जो विचार-व्यवस्था है जो आलोचन सूत्र है वे परिष्कृत ही निज बढ़ना संभरे होकर वे सञ्चोधित-सम्पादित किए गए हैं।

इस जीवन-ज्ञान-व्यवस्था की विचार-व्यवस्था की एक विशेषता ध्यान में रखने योग्य है। उसमें जीवन-व्याप्यान के जो सूत्र होते हैं वे उस दृष्टि के अंग हैं कि जो दृष्टि भोक्तात्मन ने जीवन-यात्रा में निजगत् प्रयास और बाह्य प्रभावा से प्राप्त और विकसित की है। यह दृष्टि और मूल्य भावना बाह्य और अंतर के याग से प्राप्त और विकसित की है। चूंकि उसकी वास्तविक जीवन-प्रणाली एक विशेष ढंग के क्षेत्र में ही चलती रहती है अतएव उस ढंग में प्रचलित सामाजिक भाव-धारा भी उसमें विश्राम में सहयोग प्रदान करती है। इस प्रकार, उस मूल्य भावना तथा दृष्टि के विकास में जितना निजगत योग है उतना ही पारिवारिक तथा वर्गीय क्षेत्रों का भी उसमें विकास में सहयोग है। इस प्रकार, एक ही साम्य,

वह दृष्टि निजगत तथा जीवन-क्षत्रगत अर्थात् वनगत प्रयासा के योग का एक परिणाम है, मूल ही संवेदना के रूप में अनुभूति के रूप में, उसके तत्त्व तथा काय निनी मालूम हो।

संवेदनात्मक अनुभवात्मक आधारों पर उपस्थित यह जो विचार-व्यवस्था है यह जो जीवन ज्ञान-व्यवस्था है वह उसके साहित्य में, उसकी रचना में, उसकी कलाकृति में तरह-तरह से प्रकट होती है। मरे अपने खयाल से वह मुख्यतः दो प्रकार से होती है। एक तो वह भाव दृष्टि, जीवन आलोचन, जीवन विवेक अथवा विचार चित्रण या भावाकन के रूप में प्रकट होती है। किंतु इसके अतिरिक्त, वह कलात्मक विवेक का रूप धारण कर कला-सम्बन्धी विचारधारा भी बन जाती है और उसके प्रभाव से वह कलाकृति का अंतर्बाह्य संगठन भी करती है।

किंतु महत्त्व की बात यह है कि उसने अंतःकरण में स्थित यह जो जीवन-ज्ञान-व्यवस्था है—जिसके मूल-जाल संवेदनात्मक अनुभवात्मक होते हैं उस जीवन ज्ञान-व्यवस्था को जीवन जगत की व्याख्या के साथ अर्थात् किसी व्यापक विचार धारा के साथ, किसी दशन के साथ, जोड़ने का प्रयत्न होना रहता है। एक ओर लेखक स्वयं जीवन जगत की व्याख्या चाहता है तो दूसरी ओर साहित्य क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की विचार धाराएँ और दशन जीवन-जगत की व्याख्या को लेकर उपस्थित होती हैं। इस प्रकार लेखक के अंतःकरण में उपस्थित संवेदनात्मक-अनुभवात्मक जीवन ज्ञान व्यवस्था के साथ जीवन-जगत की दार्शनिक व्यवस्था का सम्बन्ध हो जाता है और वह दार्शनिक धारा लेखक को आत्मविस्तार के रूप में ही लिखाई देती है।

यह आवश्यक नहीं है कि लेखक जिस जीवन ज्ञान-व्यवस्था को लेकर चलता है उसमें विवास नहीं होता अथवा जिस दार्शनिक धारा का लेकर चलता है, उसमें वह अपनी ओर से कोई नवीन तत्त्व नहीं जोड़ता।

इसके विपरीत, वह स्वयं भी अपने आपको उस दार्शनिक धारा द्वारा परिपुष्ट करता है अपने स्वयं की जीवन ज्ञान व्यवस्था का ध्याध्यान उस दार्शनिक धारा की सहायता से करता है साथ ही उस दार्शनिक धारा को वह अपनी विशेष दृष्टि से व्याख्यात करता हुआ उसमें नवीन अर्थ भर देता है।

किंतु, जब तक विकास प्राप्त जीवन ज्ञान व्यवस्था जो लेखक के अंतःकरण में स्थित होती है और कलाकृति में किसी न किसी रूप में प्रकट होती है, वह नवीन जीवन परिस्थितियों की पंचोदगिया में पड़कर नवीन जीवन प्रसंगों में ठेस खाकर जब नवीन तत्त्व ग्रहण करने लगती है तब ऐसे नवीन संवेदनात्मक अनुभव तत्त्वों के स्तर के स्तर हृदय में बन जाने के उपरांत या तो कलाकार पूर्व प्राप्त दार्शनिक धारा को ही लचीली बनाकर उसमें नवीन अर्थ भरते हुए उसे नए रूप

मरिनु, पुराने नाम से ही विकसित कर लेता है, अथवा जीवन-जगत की व्याख्या करने वाली ऐसी तथीन विचार धारा को ग्रहण करता है जिसमें उसके नव प्राप्त अंततत्त्वा की व्याख्या प्राप्त हो सके।

सक्षेप में इस प्रकार हम देखते हैं कि दार्शनिक विचार धारा लेखक को एक निश्ची आवश्यकता होती है। वह दार्शनिक विचार धारा कितनी दार्शनिक है अथवा वह कितनी स्पष्टव्यावृद्ध है वह कितनी सत्याधारित है यह एक भिन्न प्रश्न है। महत्त्व की दान (लेखक के लिए) इतनी ही है कि वह अंत करण स्थित जीवन जगत यथस्या को व्यापक दृष्टिकोण से व्याख्या करती है।

लेखक कलाकृति में उस दार्शनिक भाव धारा को जया वा त्यो प्रकट नहीं करता बल्कि वह उस एक दृष्टि रूप में ग्रहण कर उसके अनुसार जीवन-व्याख्यात या जीवन आलोचन (जैसा और जितना कलाकृति में सम्भव है) उपस्थित करता है। उस दृष्टि द्वारा उसके हृदय में मूल्य भावना विकसित होती है और उस मूल्य भावना के अनुसार, वह कितनी विशेष अंततत्त्वों को महत्त्व प्रदान कर लेने को अभियक्ति क्षेत्र से ग्रहित कर देता है, अथवा उन्हें उपेक्षित करता है।

कलाकृति में—कलाकार के काय में यह मूल्य भावना बहुत सक्रिय होती है। वह कितनी विशेष जीवन-तत्त्वा को अभियक्ति महत्त्व प्रदान करती हुई उन्हें विशेष भाव से विशय दृष्टि से ही स्थापित करती है। यह विशेष यह दृष्टि क्या है—वह उस ज्ञानात्मक भावधारा का ही एक रूप है जिसमें दार्शनिक विचारधारा कहा।

अतएव, कलाकार अपने जोचित्य को स्थापना के लिए आत्म विस्तार के लिए अपने को उच्चतर स्थिति में उदबुद्ध करने के लिए अपना अंततत्त्वम दार्शनिक भाव धाराओं से करता है। चूंकि वह कलाकार है इसलिए वह कला में जीवन चित्र ही प्रस्तुत करता है कि जीवन की व्याख्या। किंतु उसके पास अपना एक वैचारिक दृष्टिकोण रहना ही है जो एक मूल्यांकन कार्मी और नियंत्रणशील शक्ति के रूप में उसकी कलाकृति के रूप-तत्त्व और तत्त्व रूप का नियमित करता है। अतएव यह कहना गन्त है कि लेखक के पास जोवा जगत की व्याख्या अर्थात् विचार धारा का नितान्त अभाव है।

हो यह कहना सही हो सकता है कि अपनी एक विशेष अवस्था में वह एक सर्वांगीण जीवन-जगत-व्याख्या—एकी व्याख्या जो उसके सब दृष्टियों में उस सन्तोष प्रदान कर सके उन सभी प्राप्त नहीं की है अतएव उसने अमुक विचार धारा में अमुक तत्त्व लेकर भिन्न भाव धारा में कोई अन्य तत्त्व लेकर किसी दूसरी विचारधारा में लेकर कोई तीसरी दान लेकर अपने आपको परिपुष्ट करवा का प्रयत्न किया है अथवा जीवन जगत के याम्बिन क्षेत्र में किसी सामाजिक धारण से ग्रहण की दान लेकर उनमें अपने को मत्तुष्ट कर लिया है। सम्भवत आत्र की

नई काश्च प्रवृत्तिके क्षेत्र म ऐमा ही कुछ ह ।

वाच जा भी हो यह निश्चित ह कि लेखक के व्यक्तित्व का एक पक्ष बलात्कृत है और यह वचारीक पक्ष—अपनी पूरी वचारीकता भले ही बलात्कृति में उपस्थित न करे वह स्वयं ओभा रहकर किंतु एक शक्ति के रूप में उसके उस सवेत्नात्मक-अनुभवात्मक पक्ष का, जो कि बलात्कृति में उपस्थित होता ह नियमन नियंत्रण अवश्य ही करता ह ।

इही बातों को देखते हुए लेखक के इस वचारीक पक्ष में महत्व को ध्यान में रखते हुए साहित्य के क्षेत्र में अनेक विचार धाराएँ उपस्थित की जाती हैं उपस्थित होती हैं—आध्यात्मिक समाजवादी तथा समाजवाद विरोधी तथा अन्य ।

बलाकार का अतमन विचारों को आत्मानुभूत जीवन-सदमों में एकाकार करके ग्रहण करता ह । अतमन में उपस्थित वास्तविक जीवन विचारों में प्रवाहित होता है । विचारों की यह ग्रहणशालता लेखक की मारी सवेत्नाओं में मिलकर उसके अतर्जीवन का अंश बन जाती है ।

किंतु जहां ये विचार बलाकार के अंतःकरण में सवेदनात्मक रूप से उपस्थित जीवन-सदमों द्वारा ग्रहण नहीं किये जाते वहाँ वे बाहरी ही रह जाते हैं । ऐम न मानू म किन्तु विचार है जो अपने-आप में मुसगत और आधोचिंत रहते हैं । किंतु बलारार के लिए वे उसी ढंग से बाहरी हो जाते हैं जिस प्रकार बाजार घर के बाहर ही होता ह ।

ऐसी स्थिति में लेखक के द्वारा आत्मानुभूत न होने वाले विचारों का आग्रह यदि उगस किया जाय अथवा लेखक यह समझे कि एम विचारों का उम पर लागू जा रहा ह, तो मन ही मन अथवा प्रकट रूप से वह विक्षुब्ध होकर विग्रेष कर उठता ह ।

लेखक चूकि किसी न किसी रूप से जीवन का चित्रण करता ह, इसीलिए उमकी जीवनानुभूतियों को उमकी भावनाओं कल्पनाओं और जीवनानुभूति रजित बुद्धि का उत्तजित और प्रोत्साहित करने या कर सकने वाली शक्यवली और गली में जब तक कोई समीक्षा या सिद्धांतवाद या विचारधारा प्रस्तुत नहीं की जाती तब तक वह उमे प्रभावित या प्रोत्साहित अथवा प्रेरित नहीं कर सकती ।

यह विग्रेषकर उस स्थिति में होता ह जब लेखक उस विचार धारा या भाव धारा या सिद्धांतवाद को अपन वायुमण्डल से नहीं खींच पाता, क्योंकि वह विचार धारा या भाव धारा या सिद्धांतवाद उम वायुमण्डल में होता ही नहीं, न उस समय उमके होने की कोई संभावना ही न्छिती ह ।

किंतु जब किसी विग्रेष स्थिति-परिस्थिति में वसी विचार धारा या भाव

धारा या सिद्धांतवाद स्वाभाविक हो उठता है अर्थात् उस विशेष स्थिति परिस्थिति में जब उस ढंग के झुकाव या रुझान या उन्मुखताएँ स्वाभाविक रूप से उपस्थित होनी हैं तब वसी स्थिति परिस्थिति में कलाकार उस विचार धारा को उसकी बौद्धिक-मैदातिक शब्दावली की अनायास ग्रहण कर लेता है अर्थात् वह विवेचनात्मक-सैद्धांतिक शब्दावली यदि उसके निकट नहीं तो दूर भी नहीं मालूम होती।

किंतु ऐतिहासिक युग में ऐसी भी विशेष स्थिति परिस्थितियाँ होती हैं जब समीक्षा या सिद्धांत विवेचना और सिद्धांत का बौद्धिक प्रयोग एक विशेष स्तर पर चलता रहता है तथा कलाकार का जीवन चिंतन या जीवन-अनुभव और उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति किसी भिन्न स्तर पर चलती रहती है और ये दोनों स्तर एक दूसरे से समानांतर चलते रहते हैं और बावजूद उनकी टकराहट का कलाकार का जीवन चिंतन और कलात्मक अभिव्यक्ति समानांतर चलती रहती है। एसी भी एक परिस्थिति होती है।

इसका परिणाम यह होता है कि सिद्धांत विवेचन अर्थात् विचार धारा की मूल दृष्टि या तो स्वयं कलाकार कलाकार के समीप आता नहीं है अथवा उस विवेचन की मूलधारा एक स्वतंत्र विचार-मरणि बनकर चलते हुए जीवन के मूल स्रोत से विच्छिन्न करके अपने आपको जड़ीभूत अवस्था में परिणत कर लेती है। विचार धाराओं की जड़ीभूत स्थिति यही सूचित करती है कि जीवन द्वारा उपस्थित नये सत्यो तथ्या तथा समस्याओं से उसने अपने-आपको अलग करके कूटस्थ ब्रह्म की स्वयंपूर्ण सम्पूर्ण इयता स्थापित कर ली है।

इस प्रकार उस विचार धारा के क्षेत्र में जब सृजनशील और जीवन-जय उद्गम में परिपूर्ण चिंतन एक जाता है तब वसी स्थिति में उसमें उत्तम और उत्तम गौरव गवपूर्ण अहंकार की भावता भले ही भगवन् लग वह बावजूद उराम स्थिति महत्वपूर्ण मर्यादा के जीवा विनाश के लिए निरपराधी हा उठती है—जन्ती जन्ता के कारण मर्यादा के कारण नहीं।

दूसरे शब्दों में समीक्षात्मक विवेचन तथा कलाकार के जीवा चिंतन की समानान्तरता तथा परस्पर-संबंध के अभाव की स्थिति जब स्पष्टतः दिखाई देता लगती है तब यह मानना आवश्यक है कि उक्त विचार धारा के क्षेत्र में बान बनाने का न लाभ अपनी स्वयं की अशमनाश्री की घनी परछाई अपनी स्वयं की विचार धारा के क्षेत्र में तो नहीं छाटा रह है। दुर्भाग्य की यात्रा यह है कि किसी भी विचार धारा के क्षेत्र में या कहिये समीक्षात्मक विवेचन के क्षेत्र में काम करने वाले यात्रा में आत्मसाधन और आत्मनमाणा बहूत कम दिखाती है। अपनी अनायास अशमनाश्री का लाभ अपनी प्रभावशीलता के अपराध का कुछ भी भाग अवन हिंसा में न रखकर उद्विग्न सवदा कलाकार के मर्या

मड़ा ह ।

कलाकार हान मात्र से कोई व्यक्ति, यहैगियत एक कलाकार क, कोई देयता मन् या वाछनीय कलाकार रही हो जाता । अगर ऐसा होता तो औरगजब की प्राप्ति म पाप्य करने वाला कवि कानिशाग यहैगियत एक कलाकार के, औरगजेर मे सप्रथित कविताओ म भी जीवन-मत्य की कलात्मक अभिव्यक्ति कर रहा था । उन कलाकृतिया म अर्थात् उन सबया कविताओ म यह घाटुकार का वाय कर रहा था । प्रसिद्ध कवि पद्माकर ने अपने सरगाव हिम्मत बहादुर की बहादुरी क ना गात गाये है उगत यही प्रमाणित हाता ह कि कलाकार, केवल रचना-कम के कारण ही अपने आप मे कोई देयता या मन्त या वाछनीय कलाकार नही हो जाता । वह कही तक किम हद तक मित सीमा तक वाछनीय कलाकार ह वह उमकी कलाकृति के अपने रूप-स्वरूप पर, उस कलाकृति की मूल प्रेरणा पर, उस कलाकर क व्यक्तित्व पर (ना उस कलाकृति म प्रकट हुआ ह) तथा उस कलाकृति म जो जीवन-मम प्रकट किए गए है (यदि वे प्रकट किए गए हैं ता) इन सब पर और उनके प्रभावा के स्वरूप पर—इन सब परस्पर-मनिविष्ट बातो पर एक साथ निभर करेगा । कलाकार होने मात्र से रचनाकार होने मात्र से, कोई व्यक्ति श्रेष्ठ वाछनीयता का अधिकारी नही होता ।

समीक्षक के अह-चढ विचारो का तुषार जिस भाँति उसके उग्र अहकार का ही धातक होता ह उमी प्रचार कलाकार का अहकार भी एक बडी अजीब चीज होनी ह । ऐसा अहकारात्मक मनीषा जब प्रतिभा क नाम से खुलकर खेलती ह तब साहित्य का 'कल्याण' हो जाता ह । समीक्षा और कला की यह टकराहट असल म मह महामहिम व्यक्तियो या महत्वाकांशी किन्तु पदहीन महानुभाया क आपस की टकराहट ह ।

कला चाह वह यथाथवाणी कला ही क्या न हो, एक आत्मपरक प्रयास ह । यह उसकी विषेपता है, बहुत यही विषेपता । कला न केवल एक आत्मपरक प्रयास ह बरन उसकी अपनी एक सापेक्ष स्वतंत्रता ह । वह व्यक्ति-सापेक्ष ह जीवन-सापेक्ष ह बग-सापेक्ष ह, युग-सापेक्ष ह । वह स्वतंत्र भी है । वह स्वतंत्र इन अथ म है कि जो भाव-बीज कलाकार के अन्त करण म उत्पित होकर उसके मार सवेत्ना और अनुभव द्वारा परिपोषित होकर विस्तार ग्रहण करके उसके अन्तरमन को जाच्छादित करते हुए अपनी अभिव्यक्ति लक्ष्य की जोर विकास यात्रा करता है तो उस भाव बीज की विकास-यात्रा और उसकी अभिव्यक्ति अपने आप म विभिन जोर अनुकूल विपरीत तत्त्वो का एक गतिशील किन्तु सगतिबद्ध जोर सामजस्यवद्ध रूप घन जाती है ।

उम भाव-बीज का (इस प्रकार की) गतिशील अभिव्यक्ति के दौरान म यह सामजस्य-वद्धता का, तथा उसके भीतर क तत्त्वो के विभिन अन्त-सम्बन्ध म एक

गतिशील सगति गी स्थापना का—रह जो शास्त्रात्मक भाषात्मक प्रयोग है—
उतने जाने बिना विनियम नियम ह जो कलाकार द्वारा अपने अंत कर्मण म अपने
अपने डग म अनुभूत तथा विनियमित होत है ।

यही कारण है कि दस्तावेजी की उपयोग रचना का शिल्प और गीता
कुमानव की उपयोग रचना क शिल्प और गीतो से भिन्न है । यही कारण है कि
उपयोग रचना क शिल्पी सिद्धांत प्रथा को पकड़, उनम यथाय नियमों का अनु-
सरण करते हुए उन नियमों पर चलन की पूरी पाव दी बतात हुए कलाकृति
प्रस्तुत नहीं की जाती ।

गीता की स्वतंत्रता का अर्थ है कलात्मकता क अंत समकालीन गतिशील
सगति का अर्थान गीता की स्वाभाविकता का निर्वाह । इस गतिशील सगति गी
स्थापना के बाय म जो भी अंतर या बाहर क व्यवधान उत्पन्न होते है क कला-
तत्त्व की (अभिप्रेक्षित रूप धारण करने वाली) आम विनियमशील गति म बाधा
डालते है अतएव कला का स्वतंत्रता की उपेक्षा करत है ।

गीता का स्वतंत्रता गी कलाकार की स्वतंत्रता—य दोनों समानार्थी प्रयोग
समीपार्थी शब्द नहीं हैं । गीता की स्वतंत्रता जीवन-भाष्य है यथित सापेक्ष
है । क्योंकि यदि कलाकार अतन्त्रता की गतिमानता म उनके विशिष्ट अंत
सम्बन्धों को अनुभूत करके उनम सगति और सामञ्जस्य स्थापित नहीं करता—
अर्थात् काव्य निर्वाह नहीं करता तो इसका अर्थ ही यह है कि अतन्त्रता की
गति जिस दिशा की ओर जाना चाहती है वहाँ म उस मोड़कर (क्या मोड़कर ?
एस्थटिक पटन के माह स प्रस्त होने म अपना अर्थ जाग्य निरूप्य उपदेश
गती सौन्दर्य जाति क सम्मोह गे गेट होकर) राई भिन्न दिशा देना चाहता है
ता कसी दिग्गति म उनके अंत कारण म भावना-कल्पना-धुंदि हा सीता का
जावनानुभूति और उनको प्रकट करत का सवेत्नात्मक उद्देश्य—इन दोनों का
योग न होकर वे अलग अलग पट जात हैं । इन प्रकार कलाकृति बाधा प्रस्त हो
जाती है ।

इस बात को हम या कहते कि लेखक क अंत सरण म सचित जा भाव
तत्त्व है जो गीता जान-व्यवस्था है और उन व्यवस्था के अंतगत जो दृष्टि है
उनस परिवर्तित और परिपुष्ट गी सबन्धात्मक उद्देश्य हैं उनस कलाभिप्रेक्षित
अपनी अभिप्रेक्षित क शिल्प अपना रखती है उन पर निर्भर करती है अपने रूप
तत्त्व क विकास क शिल्प । इस प्रकार कला की स्वतंत्रता लेखक क अंतर पर
नियम क अंतर म उपस्थित जीवन-तत्त्वा पर कलाकार के अंतर म उपस्थित
भाव-दृष्टि तथा गीता जान-व्यवस्था पर निर्भर है और उनी सबह मयाश्रित है ।

दूसरे शब्दों म जब जब इस अंत स्थित भाव-दृष्टि तथा जीवन जान-व्यवस्था
संभिन पृथक तथा बाह्य तत्त्वा के दबाव म आकर लेखक कलाकृति म जा

गुजरे हैं। वस उसके गर पानूनी करार दिये जाने का यही रहस्य है।

हमारे शब्दांश, लेखक और कलाकार की स्वतंत्रता समाज सापेक्ष्य है समाज स्थिति-सापेक्ष्य है। मानव गौरव और उच्च अभिरुचि को ध्यान में रखते हुए भी जो रचनाएँ जानी हैं उन्हींमें ऐसे सत्यांश हो सकते हैं जो अप्रिय हैं अतएव वे सत्ताधारी अथवा सम्पन्न या प्रभावशाली वर्गों की भावना को ठेस पहुँचा सकते हैं।

इस बात को ध्यान में रखते हुए समाज में उन सत्यो के विरुद्ध ऐसी मनो प्रीतियाँ तैयार कर दी जाती हैं कि जिससे अमुक अमुक लेखक को प्रकाशक न मिल सके।

जन मत और लोकाभिरुचि बनाने का ठेका जहाँ उच्च सम्पन्न वर्गों ने लिया है वहाँ किसी भी बात की परिभाषा जो उनकी दी हुई होती है खूब चलती है। और उन परिभाषा को विश्वविद्यालयों से लेकर छोटे मोटे प्रकाशकों तक इस तरह स्वीकृत करा लिया जाता है कि जिससे उसी के मापमान चल पड़ते हैं। सदाप में एक भाव प्रवाह विचार धारा सत्य और सत्यांश के विरुद्ध मनोप्रीतियाँ स्थापित करा दी जाती हैं। कलाकार स्वयं या तो इस तरह की मनोप्रीतियों का स्वयं शिकार हो जाता है और अपनी आपकी जिदगी में एक हिस्से को अभिव्यक्ति के क्षेत्र से निकालकर फेंक देता है अथवा यदि वह बहुत ही जातुर है तो चुपचाप लिखता जाता है छपाता जाता छपाता है और बाह्य प्रोत्साहन में अभाव में बहुत बार-बार रचनाएँ अघरी छोड़ देता है। पूरी नहीं करता इसलिए कि उसकी अभिव्यक्ति का भाव बिंदु प्रकट न गया होता है किन्तु उसका माणिस्य भावमय अंत सुगठित उपस्थित करने की उसे आवश्यकता नहीं रह जाती।

विभिन्न समाजों में इस प्रकार की मनोप्रीतियाँ जायसं अथवा अचानक प्रचार द्वारा उत्पन्न की जाती हैं विवर्तित की जाती हैं ब अच्छी हैं या बुरी पढ़ एवं भिन्न प्रश्न हैं। साम्यवादी दृष्टिसे एक खास ढंग के अतिखिन सामल सकारण अर्थात् समाज-साधनाएँ और समाज-स्वीकृतियाँ उचित होंगी अमरीका में स्वतंत्रता की क्रांती घोषित की जायेगी भले ही फिर जाँचा को—एक अमरिक्का को गोग की हाटत और रेस्तरांओं में जलन रखा जायगा। लखन साम्यवादी समाज रचना को उमक उमक दिन या उमक निन्दनीय टहरान की गरुड में तिर्य गत साहित्य या उमक प्रकट भाव-दृष्टि का उखक और कलाकार की स्वतंत्रता की क्रांती माना जाय। हाँ चाली उपलीन की धार ध्यान में लिखा।

कलाकार की स्वतंत्रता समाज-सापेक्ष्य और समाज स्थिति-सापेक्ष्य है यह निर्विवाद है। सम्पूर्ण स्वतंत्रता कहने भर को बात है। कलाकार को साधक के यह देखना है (यदि वह साधक ही है और मानव-व्याप-बुद्धि की भावना रखता है तो —यह कलाकार एम. न. करत) कि यह सर्वोच्च मानव-सूक्ष्मा की मानव

मुक्ति के सत्य की स्थिति कहीं पाता ह, और कहीं नहीं पाता अर्थात् किम प्रकार की भाव-दृष्टियां मे वह अपनी अनुकूलता पाता है और किस प्रकार की भाव-दृष्टियां मे नहीं। दूसरे शब्दां मे, किम प्रकार के सोशल सेवक-स उसके अनुकूल हैं और किस प्रकार के नहीं।

मूलभूत अंतर्विरोधो से ग्रस्त समाजां मे निम्न-दह लेखक वर्ग मे भी बलाकार वर्ग मे भी सोशल सेवक-स जयात समाजिक निबन्धा के प्रति भिन्न भिन्न दृष्टियां होती हैं, तथा न केवल वे दृष्टियां भिन्न भिन्न होती है वरन परस्पर-विरोधी भी हो सकती हैं।

ऐसी स्थिति मे कोई एक भावदृष्टि अथवा कुछ भाव दृष्टियों का (समानता मूलक) समूह सामाजिक प्रभाव सम्पन्न तथा प्रतिष्ठा-सम्पन्न उच्च पदासीन वर्गों द्वारा भावता प्राप्त होकर गैर दृष्टि या दृष्टियां मलिन भाव की सूचक, निम्न भाव की सूचक, निम्न पदासीन तथा स्वतः और अथहीन करार दी जाती हैं।

इस प्रकार का यह दृष्टि-भेद या यो कहिये कि दृष्टि सघष सदा-सवदा तथा अनिवायत नये और पुराने का भगडा नहीं हाता वरन वह वर्गों का सघष होना ह। साथ ही यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि वह नये और पुरान का भी सघष हो सकता ह। यह बसा ह या नहीं यह देखन-भमभन की बात होनी है।

एकाध उदाहरण अप्रासंगिक न होगा। छायावाद तथा द्विवेनीयुगीन काव्य प्रवृत्ति दोनों एक ही मध्य वर्ग से निःसृत हुए। अपने-अपने ढंग मे दाना आदश बानी और अध्यात्मवादी थे। फिर भी भाषा, भाव, शली तीना क्षेत्रों की भिन्नता न सघष का रूप भी धारण कर लिया, यह किसी से छिपा नहीं। उसी प्रकार प्रयोगवादी या नई कविता का जन्म भी मध्यवर्ग मे हुआ। छायावाद और इस आधुनिकतावादी प्रवृत्ति मे सघष रहा। यह नये-पुरान का भगडा ह।

किन्तु मध्य वर्ग के क्षेत्र मे प्रयागवादी प्रवृत्ति का उदय विकास और प्रसार और फिर उसी मध्यवर्गीय क्षेत्र मे उसी प्रगतिवादी प्रवृत्ति की क्षीणता और दुबलता का ऐतिहासिक सत्य यही तो प्रकट करना ह कि इस मध्यवर्गीय क्षेत्र को एक और अथ-सम्पन्न उच्चवर्गीय प्रवृत्ति हथियाना चाहती ह ता दूसरी ओर समाजवादी आदर्श का समर्थन करने वाली शक्ति—सबहारा शक्ति उसे अपने प्रभाव मे लाना चाहती ह।

मध्यवर्गीय क्षेत्र मे इन दोनों के प्रचार प्रसार का खूब क्षेत्र भी ह। उच्च मध्यवर्गीय आभिजात्य मानवतावादी आध्यात्मिकता व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादी प्रणाली के नाम पर साहित्य क्षेत्र मे समाजवादी प्रभाव का उन्मूलन करना चाहती है। उनका मूल सामाजिक आधार ह—उच्चमध्यवर्गीय लोग और उनकी मोर्दाभिच्छिन्न जगमगाट से मोहमुग्ध। वे निम्नमध्यवर्गीय लेखक जो

लोभ ग्रस्त और पिषामु होकर उनके आसपास भँडराते हैं या व्यक्तिगत आधार पर उनसे घणा करत हुए भी उनके पत्र चिह्नों पर चलने में अपना कलात्मक प्रवृत्ति की सावकता समझते हैं।

इसके विपरीत इसी मध्यवर्ग में भिन्न भिन्न स्थानों पर ऐसे लोग भी हैं जो न अत्यन्त दूरिन्द्र निम्न मध्यवर्गीय लोग हैं, न ऐसे जिन्हें हम आर्थिक दृष्टि से किसी भी हालत में सुखी कह सकते हैं। यह श्रेणी साहित्य तथा कला के क्षेत्र में काम भी करती है तथा वह जान भिक्षु है यह कहा जा सकता है। इसकी मनोवृत्ति में प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ के प्रति समीपता सम्भवतः पाई जा सकती हैं। और वह बहुत कुछ जशा में अभी भी देखी जा सकती है। प्रगतिवादी जीवन मूल्य भी इनमें देखे जा सकते हैं। यह है सामाजिक आधार—उत्तमबहारा आन्दोलन के मध्यवर्ग के ऊपर प्रभाव का।

इसके बावजूद प्रगतिवादी आन्दोलन बहुत-कुछ पीछे हटा है तो इसका कारण यह नहीं है कि मध्यवर्ग पूरा का पूरा अवसरवादी हो गया है यद्यपि उच्चमध्यवर्गीय प्रभुता तथा बल सम्पन्न पूँजी की सत्ताधारिता ने भी हमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग दिया है। किन्तु इसका एक कारण यह भी है कि प्रगतिवादी प्रवृत्तियों ने अपनी वही पुरानी छर्रें वाली बूँदों और वही पुराने तमघे निकाले जिनकी आज कोई कीमत नहीं। सक्षेप में उनके पास प्रगतिवादी प्रवृत्तियों के पास मध्यवर्गीय अधिसिद्धांतवादी अहंकार तो था किन्तु कला की गृहजनशील प्रवृत्तियों में कला-सम्यक् की समस्याओं में वह मूढगमिनी नहीं थी तो कि एक तावत ममज्ञ और कला ममज्ञ के लिए आवश्यक जानती है। यही नहीं लखना से विनापकर नयन्य के लक्ष्य का वतनकर जाग रहने थे। सिद्धांतों के जायवरी टावर में रहकर (अपनी ठाठगार राखी राटी का सवाल के पहले ही हल कर चुन थे) वहाँ के बुद्धि से लक्ष्य के नयन पर और नय लेखना के युद्ध पर अपने तीर नमान का प्रयोग करते थे मूल्य होकर। निम्नदेह उनमें से कुछ न नयी प्रवृत्ति के साथ चलने का प्रयत्न किया भी तो लक्षणित हुए। सब तो यह है कि वे घिम पिट थे और अपने घिम पिटपन का सिद्धांतवादिता का जामा पन्नाकर सबमाय हान का प्रयत्न करते थे।

यही उनकी जात्राचला करने का मरा अभिप्राय नहीं है। मैं तो यह कह रहा हूँ कि प्रगतिवादी धारा का जो पीछे हटना हुआ उसमें प्रगतिवादी के प्रवृत्तियों को निम्न न मानना और न अधिपरि अध-यगु प्रविभा का भी विनाश योग था।

इसी मार्क्सवादी धर्म में शीत युद्ध का भी चला हुआ है। मार्क्सवादी धर्म में मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों का है और सम्भवतः जागना दमिया वहाँ तक वह प्रवृत्तियों का नयन्य। मध्यवर्ग के ही उच्च आत्र भी हैं। जावन की समस्याएँ जन्मकर

हाती जा रही हैं। ये समस्याएँ भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। समाज में आज दिन तक उत्पीड़न और शोषण की मात्रा, अनिचार और अत्याचार की मात्रा और भी अधिक, और भी तीव्र हो रही है। जबसरवाद, भ्रष्टाचार नतिकता का ह्यम मानवतावादी मूल्या की ज्वनति और व्यक्तिवद्ध अहवाणी मूल्या का बढता हुआ प्रभाव लूट खसोट जाति जादि वाता सं सामान्य मानव का दुख अपरिग्मीम होना जा रहा है।

ऐसी स्थिति में, शीत-युद्ध के एक केन्द्र को यह चिन्ता सता रही है कि कहीं यन्मत्तप्त मानव समाजवादी और साम्यवाद का शिखारन हो जाय। ऐसी स्थिति में, वह पाता है कि पश्चिमी जगत का उच्च साहित्य साम्यवादी या समाजवादी प्रभाव को रोकने में विनोप सहायक नहीं जाता। हाँ, यह सही है कि समाज की जा जालोचना उसमें की गई है वह कोई साम्यवादी दृष्टि या समाजवादी दृष्टि में नहीं, यहाँ तक कि कभी कभी उस दृष्टि की जालोचना समाजवादी भी करते हैं। किंतु फिर भी वह जालोचना तो हुई है। ऐसी स्थिति में व अमरीकी प्रयोगवादि्या और श्रष्ट उपयासकारा का अथवा ब्रिटेन या फ्रांस के उच्च साहित्य का प्रचार नहीं करत क्याकि जाज के सन्ध में उनक लिए व उपयोगी मिद्ध नहीं हाने।

आज तो उह पाषचात्य जगत की अराजकतापूण स्थिति का तथा उससे उत्पन्न मानव दुख का इम प्रकार परिभाषित करना है कि जिमसे मनुष्य मकल्प घर्मा बनकर महान् कार्यों के लिए मुक्ति कार्यों के लिए उद्युत्त न हो।

उत्पाहरणन वीरता की व्याख्या लीजिए। वारता क्या है? अपने लघुत्व का दिकने का एक तरीका है। फिर, लाग उस ओर उमुख क्या होते है? इमलिए कि व अपन लघुत्व की वासनविकना सं घणा करते है। निष्कप—(ज) मानव निरंतर लघु है। (ब) इमलिए उमका दु ख स्यायी है। (क) वह दु ख से मुक्ति के प्रयत्न में वीरता बनाना है, किंतु यन् वीरता वस्तुतः उसक लघुत्व ही का मानसिक विक्षेप है। (ख) यन् मानसिक विक्षेप उमम क्या होता है? इसलिए कि उसमें बहून बार आत्मघूणा और आत्मदया होती है अतएव अपने लघुत्व से घूणा करते हुए वह अपनी जैषाश्या प्ररणिन करने के लिए वीरता के दश्य प्रस्तुत करता है। (ग) वीरता व दश्य प्रस्तुत करने से वह महान् नहीं हो जाता क्याकि वह निरंतर लघु है। (घ) इमलिए उमका दु ख स्यायी। [(ड) अतएव मानव-मुक्ति के प्रयत्न क्या हैं, क्याकि मुक्ति जमी कोई चीज नहीं है—एक दु ख से दूसरे दु ख की ओर जान का यह प्रयत्न है।]

यह मानवतावादी अद्यतन दगन है। मानव के सम्बन्ध में यह एक प्रकार का नकारवादी है। मानवीय भाग्य और वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में यह एक प्रकार का निराशावाद है।

बनाई जा रही हैं।

ध्यान में रखने की बात है कि साम्यता समाज, व्यक्ति—इन सबकी (इनकी दृष्टि से देखी गई) घतमान स्थिति की आलोचना के तत्त्व इन कवियों में सूब प्रचलित हैं, किन्तु ये आलोचना के तत्त्व अत्यन्त व्यक्तिवादी दृष्टि की उपज हैं।

इस आलोचना का साराण यह है कि हम हो या जमरीवा—यहाँ सबके औद्योगिक साम्यता है। औद्योगिक साम्यता व्यक्तित्व का नाश करती है। व्यक्ति में आत्म नियम, विवेक नियम शक्ति का ह्रास हो जाता है। उसका व्यक्तित्व भी विनष्ट हो जाता है। साम्यवादी जगत और स्वतंत्र जगत् इन दोनों में अंतर केवल यह है कि 'स्वतंत्र' जगत् में व्यक्ति, यावजूद व्यक्तित्व विभाजन के, बाध जूट व्यक्तित्व-नाश के वह अपने स्वतंत्र नियम के लिए स्वतंत्र है।

व्यक्ति अपना स्वतंत्र नियम तब तक नहीं कर सकता, जब तक वह भीड़ का अंग है। समाज में जब तक व्यक्ति पृथक्-पृथक् हैं और मान के जगत् में रहकर नियम करने को स्वतंत्र है तब तक ही वह व्यक्ति है। तब तक वह आत्मा का बद्र है। किन्तु ज्योंही वह एक हो जाता है वह जन-सूय के मनोविज्ञान की धारा में बहता है। स्वतंत्र नियम की उसकी शक्ति या तो शीण हो जाती है या लुप्त हो जाती है। इंगलिये ये जो मन्त्रों पर जुलूम चल रहा है, ये जो हडतालें हो रही हैं ये जो सामूहिक राजनतिक आश्रमण प्रत्याश्रमण हो रहा है ये सब भीड़ की मनावृत्ति के परिचायक हान में, स्वतंत्र नियम के अभाव की अर्थ शक्ति का ही सूचित करत हैं। परिणामतः लेखक—जो कि अकेले में ही रहता है—उसे अकेले में रहना ही अच्छा है। तभी वह मानवता के उच्च गुणा को (यदि वह होता प्रतिष्ठापित कर सकता है। जावाद ममावात—भीड़ की मनोवृत्ति के परिचायक हैं। जुनूस, हडताल जाति राजनतिक-सामूहिक काय गलत है। जनना दोर है वह पणु है क्योंकि वह नताजा के वहवाव में आती है क्योंकि उसमें स्वतंत्र नियम करने की शक्ति नहीं है।

व्यक्ति अपनी व्यक्ति-सत्ता में अद्वितीय है निःसंग है। और ऐसी बाह्य प्रभावहीन निःसंग स्थिति में ही अपने इस प्रकार के एकांत में ही वह स्वतंत्र नियम कर सकता है जैसा नहीं।

दुःख की स्थिति प्रायः स्थायी है। मनुष्य लघु है। लघुत्व से पूर्ण मनुष्य अपने लघुत्व से घणा करता है इसलिए कुछ काल के लिए वह वीर बन जाता है। वीरता या महानता भ्रमात्मक है। लघुत्व मनुष्य की मूल प्रकृति है। अतएव, हे महोदय महाना और वीरा के चक्कर में मत पड़िय।

दूसरे गलत में यह जो विद्यमान स्वाध्याय अहमस्त व्यक्ति सत्तात्मक स्थिति है—जिसमें कि यह समाज बना हुआ है—उसका पहचानना और उस यथाथ को पहचानकर अपनी अद्वितीयता की रक्षा करना आवश्यक है।

अद्वितीयता की यह रक्षा उन दार्शनिक या कहिये धार्मिक अथवा अध्यात्मिक या रहस्यात्मक अनुभवों में हो सकती है जिनकी परिभाषा करना, जिनके स्वरूप की व्याख्या करना उनका काम है, जिनको इसमें दिलचस्पी है।

और इस प्रकार की अतिम व्याख्या और अतिम परिभाषा—वह जो भी है—यदि व्यक्ति सत्ता की एकमेव अद्वितीयता का रक्षा करती है तो उस स्थिति में वह मानव की सर्वोच्च परिभाषा उसकी निजी शक्तियों का आत्म शक्तियों की सर्वोच्च परिभाषा भी होगी।

मैंने इस भावधारा की कतिपय विरोधताओं को अपने शब्दों में रखने का प्रयत्न किया है न कि भावधारा वाला क शब्दों में। अतएव इसमें उनके विचारों का सम्भवतः भद्दा बनाकर भी रखा गया है। किन्तु भूल हाँ मैंने उसे हलक डग से या भद्दे डग से रखा है। उसका सार-सत्य वही है जो मैंने कहा।

उपर्युक्त भावधारा सम्पूर्ण सर्वांगपूर्ण अथवा व्यवस्था बद्ध या सुसंगठित रूप से सब कवियों में नहीं पायी जाती है। किसी में उसका कोई अंश है तो किसी में कोई और। इन कवियों का आन्तरिक जीवन जान व्यवस्था में इस भावधारा का योग है वह कितना और कसा योग है यह एक भिन्न प्रश्न है।

यह भी ध्यान में रखने की बात है कि सब प्रयोगवादियों या नये कवियों की यह विरोधता नहीं है। सभी में यह भावधारा पाया जाती है—यह कहना यथार्थ का अनुसार नहीं।

महत्त्व की बात केवल यही है कि यह भावधारा नितांत प्रतिश्रियावादी है। उसके सार आधान का मुख्य लक्ष्य कवि-बलाकार को लेखक समाज से सामाजिक मानवीय भावनाओं से, सामाजिक मानवीय लक्ष्यों से सामाजिक-मानवीय सत्ता का उच्चतर रूपांतर के स्वप्न लक्ष्य और प्रयत्न से पृथक् निःसंग और विरोधात्मक रूप में स्थापित करना है।

इस चक्र का मुख्य उद्देश्य इस भाव धारा के मुद्देवार खण्डन उपस्थित करना नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान स्थिति पर अपनी बुद्धि अनुसार प्रकाश डालते हुए यह बताना है कि आखिर किस प्रकार इस भावधारा से छुटकारा प्राप्त हो सकता है।

यह जानना जरूरी है कि आखिर इस क्षेत्र में इस भावधारा का प्रचार क्या कर हुआ। वास्तव परिस्थिति बनी थी यह कहकर छुट्टी लेना गतत है। आंतरिक अवस्था का भी इस भावधारा के प्रचार प्रसार में योग है। यह जाति-रिक्त अवस्था साहित्य-क्षेत्र की आन्तरिक अवस्था तथा जत करण के भीतर की अवस्था भी है।

काव्य एक आत्मपरक प्रयास है। भारतीय साहित्य—विनापकर हिन्दी साहित्य में आत्मपरक काव्य की परम्परा रही आयी। उसी प्रकार साहित्य के

तत्त्वा के विश्लेषण और उसके प्रभाव के विश्लेषण की भी परम्परा रही है।

प्रगतिवादी समीक्षा और प्रगतिवादी साहित्य ने मनुष्य के मात्र सामाजिक राजनतिक पक्ष पर ही न्यून जोर दिया। उसके शेष पक्षों पर तुलनात्मक दृष्टि से, बहुत कम बल रखा या नहीं रखा। परिणामतः पाठक के सामने मनुष्य का जो चित्र प्रस्तुत हुआ वह एकपक्षीय ही था, उसमें मानव-सत्ता का सर्वांगीण प्रगतिशील दृष्टि का प्रकटीकरण नहीं था।

इसका प्रभाव प्रगतिशील साहित्यकारों के व्यक्तित्व पर भी हुआ। एक ओर वे अनेकानेक रचनाओं में केवल उद्बुद्ध सामाजिक क्रांतिकारी भाव-दृष्टि प्रकट करते थे। तो दूसरी ओर उनके वास्तविक जीवन में जो दृश्य बहुत बहुत लोगों को जि होत उह समोपता से देखा है वह उच्चवर्गीय सकीणता विलास लोलुपता, अपने पास अधिकाधिक उच्चवर्गीय सामाजिक प्रभाव तथा अधिकाधिक वस्तु सग्रह और वीति-सग्रह की लालसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रही थी। इस मनोवृत्ति के उदाहरण अधिकतर दिखाई दे रहे थे। अपवाद कुछ थे वे अत्यंत अल्प थे। सक्षेप में इन लेखकों के वास्तविक जीवन में प्रगतिशील दृष्टि का अनुशासन नहीं और उस प्रगतिशील दृष्टि में जीवन संगठन नहीं था। उच्च और सुखपूर्ण व्यक्तिगत जीवन ही उनका प्रधान जीवन लक्ष्य था।

वैसे ही उनके सामाजिक सम्बन्ध भी थे। उन सामाजिक सम्बन्धों के कारण और उनके द्वारा ही वे भौतिक उन्नति के सोपानों पर चलते जा रहे थे। यदि समाजवाद के द्वारा उनका निजी प्रभाव बढ़ता है तो वह भी अच्छा ही है—यह मानकर मानो कि वे चलते थे। उच्च वर्गों में उनके गहन सामाजिक सम्बन्धों ही के कारण, उह अपने प्रगतिवाद से कोई आर्थिक या सामाजिक हानि नहीं हुई।

परिणामतः उनके वास्तविक जीवन और आचरण के द्वारा कोई विशेष प्रेरणा नहीं मिल पाती थी। अपने भौतिक अस्तित्व की रक्षा का सघष, जो एक साधारण मनुष्य को—एक गरीब आदमी को करना पड़ता है वह उनके लिए माना कि नहीं था और अगर था भी तो वह एक ऐसे ढग से था जिसे हम मोटर कार वाला पर लदे हुए कज से छुटकारा का सघष कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि ये लोग मानव, मानवता, सघषशील मानवता मुक्ति सघष, जनवाद, किमान-भङ्गदूर क्रांति आदि शब्दों का प्रयोग करते थे और विभोर होकर भक्ति भावपूर्वक उन सब तत्त्वों का प्रतिपादन भी करते थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि जसा कि लिखाई देना था उनकी विभिन्न कल्पनाएँ अनिम्नरलीकरण पर आधारित हो गई थी। जिंदगी की पेचीदगियों पर उनका ध्यान न जाकर, सामान्य विनोपताओं पर ही दृष्टि टिक जाती थी। इसलिए उनका प्रगतिशील मानव एक निष्ठावान् क्रांतिकारी मानव था जो प्रगतिशील मूल्या की स्थापना के लिए जूझ पड़ता है। उसके हृदय में कहीं भी कोई

गका, अपने व्यक्ति मुख के सम्बन्ध में कोई चिन्ता जथवा अपना परिष्कारितिया में सट घबराहट नहीं थी—यद्यपि यह साफ था कि वास्तविकता वरानर यह मूर्च्छित करती रही थी कि वास्तविक प्रगतिशील मनुष्य जो कि हम काम करते हुए लिये देता है प्रगतिमान कविता में, लिये दे रहे प्रगतिशील मानव में नहीं अधिक उतना भाव भरा कमजोर और विविधपक्षीय सुभाव रखने वाला मनुष्य है। सक्षम में प्रगतिवादी मानव विषय जो काय में उपस्थित हुआ प्रगतिवादी मानव के वास्तविक जीवन-संघर्ष और वास्तविक व्यक्तित्व से बहुत कुछ दूर होकर जतिमरलीकरण पर आधारित कल्पना के रूप में था। साथ ही उसका कर्तन ही पक्ष—सामाजिक राजनतिक पक्ष ही सामने आता था दूसरे पक्ष नहीं।

परिणामतः प्रगतिवादी काव्य एक हृत् तक एक सीमा तक ही प्रभावित करता था। सारे जीवन को मन वचन-कर्म को—जीवनमापन पद्धति को—हृदय, आत्मा और बुद्धि का एक क्षेत्र से अनुशासन और नियंत्रण करने वाले प्रगतिवादी जादू और प्रगतिवादी जीवन मूल्य और उनके कार्यात्मक तथा अनुभववात्मक रूपा का चित्रण हम नहीं लिये देता था न आंतरिक तथा बाह्य समस्याओं का चित्रण जो कि इस प्रकार के आत्मकव्य (?) से स्वभावतः उत्पन्न होता है।

इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। प्रगतिवादी के कतिपय प्रवक्ता अपने प्रवचना का विपुल माकमवादी और उमका विशुद्ध प्रयाग समझते हुए और इस महान् काय से प्रसून अहंकार के प्रतिनिधि बनकर जिस प्रकार जाते-वना करते जाते थे उससे—देश में कामपक्षी समाजवादी राष्ट्रवादी के बन्ने हुए प्रभान की धारणा की उच्च लहरा पर कर्कर व नियन्त्रित विषय प्राप्त करने जाते थे। वह युग ही समा था।

महत्त्व की बात यह है कि प्रयागवादी और नई कविता का आरम्भ ही में विरोध किया। व उमकी मूरत दायकर ही चिन्तित थी। किसी विनाय साहित्य धारा की उत्पत्ति विचार के मूलभूत कारणों का तटस्थ विवरण न कर उमका विम्वन स्वयं विवरण और उम पर आधारित मूल्यांकन न कर व कवन उमका नष्ट भ्रष्ट कर डालने के लिए ही कतिबद्ध रहे।

वर, यह पुरानी बात ही गई। दुःख की बात यह है कि आज भी उम द्वारा कवन विरोध के विपुल विरोध के और कुछ नहीं है। एसी स्थिति में जब नए प्रकार के लक्ष्य में उगत आन का अलग कर डाला व कर्म प्रतिक्रियावादी विचार धाराओं में मार्च में सबते थे उह बचा सकते थे।

आज आवश्यकता इस बात की है कि नए काव्य-क्षेत्र में एक विरोध कर्त में, प्रतिक्रियावादी जन विरोधी विचार धारा का परिपालन किया जाता है, दंगल रखा जाए। किन्तु यह कौन कर सकता है? क्या यह नए काव्य के स्वयं ही में

भड़कन वाला लामा से ही सिद्ध होगा ?

मेरे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि समीक्षा की भाषा, समीक्षा गली, समीक्षा व अतमत विचारधारा की अभिव्यक्ति इन प्रकार से हो कि लेखक यह समझ सके कि समीक्षक उमका शत्रु नहीं, उमका मित्र है उमका भ्राता है। तभी वह लेखक का विश्वास प्राप्त कर सकेगा।

लेखक लम्बी चौड़ी मिद्धान्तवादी शब्दावली से न प्रभावित होता है, न उस जान ही पाता है। अतएव, यह आवश्यक है कि इन ढग स बात की जाए कि जिससे समीक्षक और लेखक की दूरी कम हो — व दो विभिन्न पृथक् लीकाम न रहकर एक ही जगत में रहकर एक ही भाषा बोलत-से प्रतीत हो।

महत्त्व की दूसरी बात यह है कि साहित्य क्षेत्र में जिन केन्द्रों से जा प्रतिश्रियावादी विचारधारा प्रचारित और प्रतिचालित होती है, उन केन्द्रों और उनकी प्रतिश्रियावादी विचारधाराओं की मूलगामी और प्रखर आलोचना करते हुए इन प्रकार आलोचना करते हुए कि जिससे प्रगतिशील मानवतावाद का मार्मिक और सर्वांगपूर्ण तथा प्रेरणापूर्ण चित्र उपस्थित हो सके, अनेक व्यापक विवेचन और मन्थन करने वाली पुस्तक लिखी जाए, लख लिखे जाए, तथा उस चुनौती को सहृप स्वीकार किया जाए जो भारतीय मानवता को विचारधारा के रूप में विशेष केन्द्र या केन्द्रों से दी गई है।

दूसरे शब्दों में समीक्षा एक ऐसा सिद्धान्त-मगत, जीवन ज्ञानपूर्ण जीवन-सर्वेक्षणपूर्ण मार्मिक मानव चित्र प्रस्तुत करे—ऐसा मानव चित्र, जो आज की व्यापक दुःख और कष्ट की स्थिति-परिस्थिति से ग्रस्त लेखक की विभिन्न वास्तविक मनाशाओं के लिए न केवल ग्राह्य हो वरन् उसके विभिन्न पूर्वाग्रह-ग्रस्त भावों को छिन्न भिन्न करते हुए उसे प्रेरणा प्रदान करे—एसी प्रेरणा जो एक ही उसकी समस्याओं—विश्व की समस्याओं के समाधान का एक नम्र किन्तु अत्यन्त भाव-सर्वेक्षणशील प्रयत्न हो।

मिद्धान्त जीवन जगत के विभिन्न सामाजिककरणों ही पर तो आधारित होते हैं। वे मानव के अत-करण में स्थित जीवन ज्ञान-व्यवस्था का ही तो एक उच्च विकास रूप हैं। अतएव, मरा यह आग्रह है कि समीक्षा आज के लेखक के परिवेश-उमकी रचना-प्रश्रिया, उसके अत-करण के सर्वेदन-युजा को समझते हुए उसकी विशेष सद्-भयुक्त भाषा को समझते हुए, और यह मानते हुए कि लेखक मानव-जीवन ही की अभिव्यक्ति कर रहा है, सक्षेप में लेखक के अत-करण और वाच्य में सहानुभूतिशील अत-दृष्टि को परिचालित करते हुए वाच्य किया जाए—विरोधी विचारधारा के क्षेत्र में तथा स्वरूप विश्लेषण करने वाली वास्तविक साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में। क्या ऐसी अपेक्षा करना गलत है ?

छायावाद और नयी कविता-१

वां भी तब साहित्यिक आन्दोलन उन विषय-सम्बन्धी परिस्थितियों में
 पैदा होता है जिन्हें हम सामाजिक विराम की एक महत्वपूर्ण शृङ्खला कह सकते
 हैं। यहाँ कीजिए यह जमाना जब गांधीवादी राजनीति का प्रथम दृष्टि में देखा
 जा रहा था और काँग्रेस मोनोपार्टी पार्टी की थी। यामपणी विचारधारा
 हमें केंद्रित दिने साहित्य क्षेत्र में पन रही थी और साहित्यिक मूल्या
 के पुनर्निर्धारण के प्रश्न कुछ साहित्यिकों के मन में घुम रहे थे। इन यामपणी
 विचार आयतों ने दो प्रकार के सतक पैदा किए—एक तो वे जो सीधे-सीधे
 राजनैतिक विचार प्रवाह के साहित्यिक स्पांतर में और वे जो जितान छायावादी
 साहित्यिक आन्दोलनों और मनोशांति के विरुद्ध तीव्र प्रतिनिधायण की थी। ये
 दो प्रकार के सतक सन् १९३६ में ही छायावादी आन्दोलनी भूमि को संचारिक
 दृष्टि में स्थापित रहे थे। उनका सबसे महत्वपूर्ण विरोध सिर्फ एक बात का संचर
 था। और वह यह कि छायावाद ने अथ भूमि को सन्तुचित कर लिया है। सीधे
 दुःख के सत्य आन्दोलन का धोम का चित्रण जो छायावाद में हुआ वह
 वास्तविक मनोशांति का गहरा वरन कल्पित दुःख के विरुद्ध धोम आन्दोलन
 का है। छायावादी मनोशांति वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करती यह
 जीवन जो जिया जाता है उसकी कठना वास्तविक कठना नहीं। छायावादी
 मनोभावा में रगीनी इसीलिए है कि उसमें जिदगी, जसी कि वह जी जाती है
 की असत्यता सापता है। यही है यह मूल प्रतिश्रिया जो नई कविता ने उन दिनों
 छायावाद के विरुद्ध की थी।

किंतु इस प्रतिश्रिया की पार्श्वभूमि सामाजिक नहीं थी। आग्रह इस बात का
 था कि अगर छायावाद में यथित कठना व्यक्ति की वास्तविक कठना नहीं
 जिदगी के भीतर कठनास्पद परिस्थितियों से उत्पन्न मनोभावों का चित्रण नहीं,
 वह कुछ और ही है जिसमें कठना का विलास है उसकी तकलीफ नहीं। लेकिन
 नई कविता का कवि इस तकलीफ की आत्मवेदनी अर्थों में ही देख रहा था। यह
 इन कठना की सामाजिक व्याख्या न कर पाता था। अतएव नई कविता का जन्म

छायावादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थो-मुख्य व्यक्तिवाद की ही बगावत थी। यह बगावत इसीलिए सभव थी कि देश की बिगड़ी हुई दशा में मध्यम वर्ग के साधारण व्यक्ति का जीवन असह्य हो उठा था। ऐसा व्यक्ति यह सोचता था कि तत्कालीन रोमैटिक कविता कम से कम उसके कष्ट प्रस्त जीवन के मनोभावा व यथाय को तो उभारे।

नई कविता की दूसरी बढमूल धारणा यह थी कि छायावाद जीवन के प्रश्ना को भावुकता प्रधान कल्पना मूलक आदर्शवादी दृष्टि से देखता है। उसकी यह दृष्टि जीवन के यथाय व विल्कुल विपरीत है—जसे स्त्री-पुंस्व धा का आदर्शीकरण, नारी का जादर्शीकरण, किसान मजदूर जीवन का रोमैटिक वायवीय चित्रण (जसे पत्त-ग्राम्या' मे) दुख और कष्ट का जादर्शीकरण—गोया हर चीज का कल्पना प्रवण आदर्शीकरण और उदासीकरण। निश्चय ही, छायावाद की फिनासफी और काय पद्धति ही गडबड है। इस प्रतिक्रिया का फल यह हुआ कि नई कविता जीवन की समस्याओं को बौद्धिक दृष्टि से देखन और मिटाने के लिए छटपटाने लगी और उसकी चित्रण-पद्धति बौद्धिक हो उठी। यह बौद्धिकता उसके दृष्टिकोण तक ही सीमित न रही वरन काव्य रचना का एक प्रमुख सजनात्मक तत्व बनकर सामने आई। और साथ ही उसकी गली को भी प्रभावित किया।

चूकि नई कविता कल्पना प्रवण भावुकतापूण वायवीय आदर्शवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथायवादी व्यक्तिवाद की बगावत थी, इसलिए उसमें (१) बौद्धिकता के कारण यथायवादी आत्म चेतना और (२) व्यक्तिवाद का आत्म क-द्री स्वरूप अर्थात् वास्तविक मुख्य दुख की सामाजिक पार्श्वभूमि और एतिहासिक शक्तियों के प्रति सघन रागात्मक सम्बन्ध की क्षीणता पाई जाती है। ध्यान रहे कि इहा नो मूलभूत वाता स शेष सब बातें या विशेषताएँ प्रादुभूत होनी है। चूकि नई कविता की यथार्थो-मुख्य बौद्धिकता व्यक्ति और समाज के सम्पूर्ण प्रश्ना का उत्तर नही दे सकती थी इसीलिए धीरे धीरे उसमें साम्यवाद आना निश्चित ही था। तारसप्तक के प्रकाशन (सन १९४३) तक उसके चार कवि प्रगतिवादी और दो कवि प्रगतिवाद से प्रभावित हुए। केवल एक श्री अर्जुन प्रगतिवादी न हो सके। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनने के अनन्तर सन '४२ तक कामपक्षी विचार धाराएँ युवका में फन चुकी थी। यह भी ध्यान देने की बात है कि साधारण रूप से तारसप्तक में गगदीन कविताएँ सन् '४२ के उत्तरार्ध के पूर्व की ही कविताएँ है। इसलिए उन कविताओं में पूजावाद व विरुद्ध शांति के बावजूद व्यक्ति चेतना का ही प्राधाय है।

दूसरा सप्तक निकलते तक परिस्थिति बदल चुकी थी। नई कविता का टकनीक प्रचार पा चुका था। जिन व्यक्तिगत और सामाजिक राजनतिक स्थिति

परिस्थितियाँ म पहल सप्तक के कविता के विकास को जूझना पडा, व परिस्थितियाँ दूसरे सप्तक के कविता के विकास को जूझना पडी। जिन प्रश्नों को पहल सप्तक में उठाया उसका विकास भी दूसरे सप्तक में न हो पाया। पहल सप्तक के कवियों में वतमान दुःस्थितिक भाव में प्रस्त रहने की मनाशा के कारण उत्पन्न नवगव्यापी नगण्य मूलक विपन्न राजनतिक विरोध सामाजिक यग्य व्यक्तिक भीतरके वास्तविक ज तन्निरोध (जिनके स्पष्टीकरण का वदुन वडा सामाजिक महत्त्व है) व्यक्तित्व के जास्य तर विक्रीकरण (जा समाज में स्पष्ट लक्षित होता है), सामाजिक शक्ति के प्रति निष्ठा, मनुष्य की उन्नयनशीलता के प्रति विश्वास और जास्य निष्ठागोचर होनी है दूसरे सप्तक में न इतना सामाजिक यग्य है और न राजनतिक विरोध और न इतनी निविड आत्मचेतना। इसक विपरीत उसमें मनोहर प्राकृतिक दृश्याकन तिसग सौन्दर्य का अनक रूपका म चित्रण वातावरण के सुघर रखा चित्र और काव्यशिल्प की रमणीयता के दर्शन होत है। दूसरे सप्तक के कवियों का टक्कीक सधा हुआ है और उनके काव्य विषय भी अपेक्षाकृत सरल हैं। सामाजिक यग्य प्रगतिशील प्रवृत्ति और राजनतिक स्वरक्षीण है और वह भी सिफ गूज भर है। पहल सप्तक के कविता में जितने मनाभवा का और मनुष्य दशाभा को मथा है उनका दूसरे सप्तक के कविता में नही। ऊपर लिखित कथन सिफ भेद दर्शाने के लिए है न कि किसी की श्रेष्ठतरता स्थापित करने के लिए।

स्व० प० रामचन्द्र गुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद के प्रति जो क्षोभ प्रकट किया वह एकदम निःसार और उर्मगत है यह नही कहा जा सकता। उन्होंने बार बार यह शिकायत की है कि छायावाद में अर्थ भूमि का संकोच हो गया है मानव मन के बहुत ही अल्प और ज महत्त्वपूर्ण विषयों की ओर ध्यान दिया गया है। छायावाद के मात्रात्मक एकच्छप्रता के वातावरण में नव कवियों ने नव नम्रता प्रदर्शित करने के लिए अपनी कविताओं को प्रयाग कहा। वस्तुतः न कविताएँ प्रयोग न होकर मात्रात्मक कविताएँ थीं। नई कविता के विरोधियों ने निःदा के तुच्छ भावसे प्रयागवादी शब्द चला दिया। अब हमारे पाठक यह जान लें कि नई कविता कविता है—प्रयोग नहीं। अगर उनमें जाज अर्थचराने लिखा देना है। तो यह तो नई कविता की प्रारम्भिक अवस्था का लक्षण है जसा कि यह छायावाद में भी था या कि अर्थ साहित्यिक प्रशान्तियों की प्रारम्भिक अवस्था में हो सकता है। तो जाइए अब नई कविताओं के स्वरूप पर थोड़ा विचार करें और उसकी सफलताओं पर भी दृष्टि डालें।

हम यह पहल ही कह चुके हैं कि नई कविता का कवि जगत और जीवन में सामाजिक तथा राजनतिक स्थिति-परिस्थिति से जागृक रहा। किंतु उसकी, उनके प्रति मानसिक प्रतिक्रियाएँ अन्तर्मुखी, भावप्रवण और निविड आत्ममूक

छायावाद और नयी कविता-१

रहा। इस जाग-केन्द्रिता से उसकी गौडिकता अनग नहीं की जा सकती न उसका विश्व क प्रति लेखन के दृष्टिकोण पर कोई बोध जाता है। उदाहरणतः कवि जो भाव अपने हृदय में अनुभव करता है—चाह वह राजनतिक ही या व्यक्तिगत— उस भाव को ठीक व सही लिखना चाहेगा जमा वह वस्तुतः उसके हृदय में है। उसके मागे रूप रंग, स्थिति प्रलय का सच्चा चित्र उपस्थित करना चाहेगा जस घनघोर उदासी का इस प्रकार प्रकट करेगा—

आज उचटा सा हृदय,
साइरन बज जाये उसके बाद
निजन शून्य सड़कों सा तिमृत
नि सग खाली
‘यथता की स्याह सी बेमाप
चादर स

अभी ज्यों ढक गया ही शून्य जी का प्रांत (नेमिचन्द्र)

अगर कोई छायावादी कवि होता तो घनघोर उदासी के बेमनपन को वायवीय प्रकार से रखता। ध्यान रहे कि कलकत्ते में बमबारी की आगका से मारवाडिया और बनिया की बेनहाशा भीड़ स्टेशन पर जमी रहती थी। कलकत्ते में साइरन की आवाज एक भयानक सूचना थी, जिससे सारी सड़कें सूनी पड जाती थी। अपने मन के वास्तविक भाव-सत्य को उसने यथाथ प्रेरित उपमाआ और प्रतीका में बांधा जैसे— लहू की बूँटा स जलने है सड़क पर बिजली के बल्ब लाल लाल' (रामविलास गर्मा) शर्माजी युद्धातक के वातावरण का चित्रण कर रहे है। किंतु यह कभी आवश्यक नहीं है कि उपमाएँ और चित्र वाहरी सामाजिक यथाथ से ही उद्भूत हुए हों। किंतु यह आवश्यक है कि प्रस्तुत उपमा या चित्र ठीक उसी मात्रा में और ठीक उसी रूप में उपस्थित किये जाएँ कि जिस मात्रा में और जिस रूप में कवि के भाव है। 'प्रभाव और भाव की अचिन्ति नयी कविता के टक्कीक की पहली शत है। सारांश यह कि कल्पना तथा गली के सम्य ध में नयी कविता में वजागिबता बरती जाती है और भाव-तरव के यथाथ स्वरूप चित्रण को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। इसका प्रधान कारण है नयी कविता का कवि जगत और जीवन से वस्तुवादी यथार्थों-मुख दृष्टि लेकर जमा है चाह वह अपने मन के निगूढतम भावा की सूक्ष्म से सूक्ष्म छटाआ का प्रकृतिरूपात्मक उपागना के द्वारा चित्रित करता हो अथवा अपने मन की भाव स्थिति को आधुनिक सम्पत्ता के उपकरणों के प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता हो। उसकी कविता में सामाजिक यथाथ प्राकृतिक सौंदर्य और भव्यता से सेवर निगूढ भाव स्थितियों के विस्फेपण और चित्रण-व्यास्य और विद्रोह सभी सम्मिलित हैं। उसकी वास्तविकता-ग्राहक दृष्टि जब मन की स्थितियों पर मुहती है तो

कल्पना शक्ति के माध्यम से यह सामाजिक-व्यक्ति का साधन बनती है जैसे अनेक की मह कविता—

हम झर रहे, झर चली बूँदें
 काल निझर की
 उन्धि की सखा प्रताडित दून लहर
 हमन नहीं माँगी
 धासना के यातना से हम परे थे
 सहज अनुरागी ।।
 वस थे सनगन पर इस इन्द्रधनु के छोर
 नहीं करना चाहते थे,
 निरे मानव जीव की शत कण बुभुजा के
 कुलाहल का वास्फालन
 आमलय के रुद्र का प्रमापा
 तप्त आवाहन
 क्योंकि दोनों बन रहे थे एक ही
 समताल की गति पर ।।

अथवा धमबीर भारती की यह बात देखिए—

लेकिन फिर भी मजबूरी है
 तुम दूर वहीं छाती खाली
 भारी मन से
 धुप धुप करती सी दिबरी के नीचे बठी
 कुछ घर का काम काज धधा करती हागा
 यह शाम मुझ इस तरह
 निगलती जाती है
 कोहरे का पाख फलाती नरभमिणी
 यम चिड़िया सी
 यह जाश की मनहूस शाम मडराती है ।।

जहाँ तक राजनैतिक-सामाजिक चिन्ता का प्रश्न है श्री हरिनारायण व्यास रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचव हमारे सामने प्रमुख रूप से आते हैं। राजनैतिक-सामाजिक आस्थाओं का भाव प्रधान स्वरूप हम श्री हरिनारायण व्यास से ही मिलता है। यही कारण है कि वे शरणार्थी से इस प्रकार की पक्तियाँ लिख सके—

हम पड़ हैं तम्बुओं में
 गिन रहे हैं कल्पना के फूल की पखरी

साराण यह कि नई कविता में कोई भी विषय नहीं छूटता। ध्यान में रखने की बात सिर्फ इतनी है कि नई कविता भाव या अनुभूति को स्थिति या दृश्य को उसके मूल स्वरूप और गत्ता में पकड़ती है। कल्पना उसके लिए सिर्फ एक वैज्ञानिक अस्त्र है जिसके जरिए अन्वय किया जाता है।

छायावाद और नयी कविता-२

बहुत दिना में हिन्दी साहित्य में नयी कविता हानी चली जाइ है। विगत दो दशकियों से हिन्दी कविता में जो नया रंग पकड़ा है उससे घबराकर बहुतों ने जलज-अलग कोणा से उसका विरोध भी किया। किन्तु आज यह प्रकट सत्य है कि नयी कविता को साहित्य के मन्दान से कोई भी नहीं हटा सकता। जिस समय यह साहित्य के मन्दान से हटनी नज़र आएगी तब यह देखा जाएगा कि भिन्न और नवीन प्रकार की वाक्याभिव्यक्ति और भिन्न और नवीन प्रकार की वाक्यधारा उसका स्थान ले रही है। किन्तु इस समय वही भी ऐसा सचेत नहीं मिनता कि नयी कविता का पद और प्रभाव क्षीण हो रहा है।

✓ पिछले बीस पच्चीस वर्षों के भीतर नयी वाक्य प्रवृत्ति अनेक विक्रम-चरणा का पार करती हुई यहाँ तक आ पहुँची है। उसके भीतर अनेक शक्तियाँ अनेक भाव धाराएँ और अनेक वचारिक दृष्टियाँ काम कर रही हैं। प्राकृतिक मौदय और स्नेह भावना में लकर तो सभ्यता, समीक्षा तब जो-जो भाव श्रेणियाँ सम्भव हो सकती हैं वे सब उसमें हैं। गीत और छन्दोबद्ध कविता में लकर पुष्पाभास गद्य तक उसमें सम्मिलित है। दुभाग्य की बात केवल यह है कि उसने जो विरोधी समीक्षक हैं उनकी मारी कृतियाँ सारी श्रेणियाँ और भाव धाराओं को सापने रखकर, उनका अध्ययन करके उसका विरोध नहीं करते। केवल विरोधात्मक प्रचार का ही वे समीक्षा समझते हैं। किन्तु एसी समीक्षा का कोई मूल्य नहीं है। इतिहास में यह स्पष्ट कर दिया है।

छत्तीसगढ़ नयी कविता के क्षेत्र में भी उबर रहा है। हमारे छत्तीसगढ़ में स्व० सतीश चाव की वृत्त कुछ कविताओं में ही हिन्दी समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। आज इसी छत्तीसगढ़ के श्रीकांत वर्मा नयी कविता के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। हिन्दी वाक्यागत उनसे पूर्णतः परिचित है। नाम गिनाना गलत खनने से खाली नहीं है क्योंकि बहुत से नाम छूट भी सकते हैं। किन्तु श्री हरि ठाकुर का नाम भुलाना नहीं चाहेंगा गिनने

मे उधार ली हुई भावना कहना असंगत प्रतीत होता है। होता यह है कि कवि अपनी स्वयं की मन स्थिति जीर अपने स्वयं रज्जान जीर मनोदशाजा के अनुसार बाहर के प्रभाव ग्रहण करता है। जमरीकी भाव-तत्त्वा को भारतीय बश में उपस्थित करते-में दिखाई दत ह। अगर यूरोप जमरीका का कवि उदास है और उसका जी काट खाने को हाता है तो हमारे यहां क कवि भी उदासी को फणनउन समझकर कविता में उदासी का चित्रण करत है। यह गलत है।

किंतु यही समीक्षकों के सामने एक समस्या उठ खड़ी होनी है। आज सुशिक्षित मध्यवर्ग के लिए भारतीय परिस्थिति अनुकूल नहीं है। भ्रष्टाचार अनाचार, तंगी, कलह राग-द्वेष दावपच के दृश्य में आधुनिक साहित्य-बोध का भी परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। ये परिभाषाएँ भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। महत्त्व की बात कबल इतनी है कि आधुनिक संवेदना एक विशेष परिभाषा की सीमा के अंतगत नहीं लाई जा सकती। किंतु यह बात सही है कि पूर्वतर युगों का भाव दृष्टिया से वह नबया भिन्न है। वह वहाँ किस प्रकार भिन्न है यह पहले बताया जा चुका है। किंतु येद की बात यह है कि आधुनिकता के आन्तभूत देश यूरोप-जमरीका माने गये हैं। फलतः बहुत से कवि यूरोपीय यह सभ्यता मानव-व्यक्तित्व का हनन करती है उसका नाश करती है। मानव आत्मा और मानव व्यक्तित्व का उदभव और विकास उसमें नहीं हाता। समाजवादी जीर पूजीवादी दुनियाँ में अंतर केवल यह है कि पूजीवादी दुनियाँ में व्यक्ति को धीखने चिल्लान का अधिचार है। किंतु परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि वह अपना विकास नहीं कर सकता यद्यपि साम्यवादी दुनियाँ में तानाशाही के कारण वहाँ व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अभाव में व्यक्ति प्रिकाम का प्रश्न ही नहीं उठता। यानी कि इस मजाल पर चौतरफा नजर डालने पर यही साबित होता है कि व्यक्ति की आत्म स्थिति अर्थात् व्यक्ति के स्वभाव की भांति ही उसकी बाह्य स्थिति और परिवेश निराशाप्रद है। जीर जासिक जीर बाह्यगत दोना दृष्टियाँ जीर क्षेत्रों में यह जो दुख जीर निगाहा है, मूलभूत अनिवाय और अटन है। मनुष्य की इसमें उतरने की कोशिश केवल एक मानसिक पहलावा है इसमें अधिक कुछ नहीं।

वस्तु-से व्यक्ति समाज में लीन हातर राजनतिक जीर सामाजिक बायों में अपनी मुक्ति की खोज करत ह जनता के उद्धार में अपना उद्धार देखन हैं। किंतु जनता क्या है ? उसका अपना कोई मन नहीं होना, जिधर हाँको उधर हँवती है। जनता तार है। जनता क्या ह ? एर भीड है। भीड की अपनी कोई आत्मा नग होनी। भीड सामूहिक उत्तजना में—अनजानी उत्तेजनाओं में—बाय करती है। सतुलित बुद्धि से मूल सोच विचार करके एतान चिंतन के द्वारा वह किसी निणय पर नहीं पहुँचती

उमम जातमा गही हाती। ये तुम्हें य तार य गाभूति प्रथम काय व्यक्ति
 व अपन आरतन व तार व प्रमाण है। व्यक्ति मूत्र आत्मगती हाता है।
 व्यक्ति मूत्र अद्वितीय हाता है। अपनी अस्मिता की रक्षा व द्वारा ही मनुष्य
 मजतीत हा करता है यन्तु आत्मनशी हा करता है। दूसरे शब्द म जा
 व्यक्ति अपनी अस्मिता की रक्षा हाता है मृजनीत होना हाता है वह
 समाज म अपन को या न दे भी व अगन बन जाता म विमान न हा
 जाय। दूसरे शब्द म व्यक्ति अद्वितीय व्यक्ति मृजनीत व्यक्ति समाज और
 जनता म अलग रार मौल्य साहित्य द मकन की स्थिति म हा करता है।
 नही ना नही। और इस प्रकार मृजनीत-याय ही म मान्य की गच्छी मुक्ति है या
 उसकी आत्मपूति है।

अब यह समझ म आ गया हागा कि नयी कविता म प्रचलित बहुतेरा
 निराशावाङ् और जनता और समाज स अलग रहकर जीवन की यह प्रवृत्ति
 अर्थात्—व्यक्तिवाद—दाना एव दानिक भूमिका म दानिक विचारधारा
 वा रूप धारण कर हिनी साहित्य म—नयी कविता व क्षम म—रूप प्रचलित
 है। भारतीय मध्यवर्गीय जीवन म आज जो घटपूण अवसन्न, दुःखमय स्थिति है
 ✓ उसकी प्रधान मनाशाखा वा आज योराप अमरीका को यह वचारिक प्रवाह
 प्राप्त हा जाता है। और इस प्रकार नये काव्य म स्वप्न भग छेद ग्लानि और
 निराशा व भावा को एक वचारिक भूमिका और दान मिल जाता है जिसम
 व्यक्ति-समीक्षा, सम्पत्ता समीक्षा और मानव भाव्य-समीक्षा भी है।

मै इस वचारिक प्रवृत्ति वा विरोध करता हू। बहुतेरे लोग इसका विरोध
 करते हैं। किन्तु यह प्रवृत्ति प्रबल है।

ध्यान म रखन की बात है कि नयी कविता व पूरे क्षेत्र को इस वचारिक
 प्रवृत्ति न—इस निराशा-दान ने इस अमरीकीवाङ् न नही घरा है। उसका कुछ
 अंश ही इस प्रवृत्ति का शिकार है। किन्तु नयी कविता के क्षेत्र का यह अंश मग
 ✓ ठिल है और सगठित रूप स इसका प्रचार होता है। इन लोगों के लोकप्रिय
 विदेशी पत्रों में इसी तरह व तरह प्रकाशित होत रहत है।

किन्तु नयी कविता के क्षेत्र म कुछ आवाज एसा है जो भारतीय व्यक्तित्व
 की भारतीयता की रक्षा चाहती ह। ये भारतीय व्यक्तित्व को पश्चिमी जगत
 स नही बरन पश्चिमी, अफ्रीका दक्षिण अमरीका स जोड़ता चाहती हैं। इन दशों
 म समाज परिवर्तन सघष और निर्माण की प्रक्रिया जारी है। इसम जनता और
 उसका नवृत्त दाना रूप भाग लते हैं। वहाँ भी साहित्य विकासमान हो रहा है।
 अन्तर्जातिया और इजिप्त कागो और क्यूबा सीमान और जापान, इटालीनिया
 और अजतीना जस देशो म जिन्गी नये उभार पर है और वह विभिन्न
 वलात्मक माध्यमो से प्रकट हो रही है। नयी कविता वा एक क्षम या यो कहिए

कि नयी पीढिया का एक हिस्सा मानसिक रूप से अपने को इन उठते हुए देशों के निकट पाता है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि नयी कविता का मूलप्राण है आधुनिक भाव बोध। यह आधुनिक भाव बोध पश्चिमी जगत के व्यक्तिवादी निराशावादी चेतना से अनुप्राणित है अथवा भारत के अपने भविष्य-स्वप्न से। भारत के अपने भविष्य-स्वप्न से जो प्रेरित हैं, वे तथाकथित पिछड़े देशों के सघर्षों और निर्माणों को प्रस्तुत करने वाली प्रेरणाओं के अधिक निकट पाते हैं स्वयं का। भविष्य भी इन्हीं के साथ है क्योंकि वे मानव की उत्थिति-परक शक्तियों में मानव की उदार क्षमता में, समाजवाद और जनतन्त्र में भारतीय सभ्यता की विविध शक्तियों में प्रगाढ़ विश्वास रखते हैं।

दुनिया छोटी होती जा रही है। राष्ट्रीयता के भाव अंतर्राष्ट्रीयता से अलग नहीं किये जा सकते। नयी कला, नयी कविता स्वयं एक अंतर्राष्ट्रीय वस्तु हो गयी है। किन्तु अपनी भूमि और अपने देश की मिट्टी मरगकर ही विश्वात्मक हुआ जा सकता है नहीं तो नहीं।

इस व्यापक भावभूमि में यदि हम चलें तो हम पाएँगे कि नयी काव्य प्रवृत्ति, जो केवल क्षण चित्रों को प्रस्तुत करती है इस दायित्व को निभा नहीं पाती। क्षण चित्र अपने-आप में अपूर्ण है। जीवन समग्र है किन्तु वह अपनी समष्टि में उलझा हुआ है। अतएव, कोई भी क्षण चित्र उस समग्र का उसकी सारी पची दगिया में प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता। यही दुर्भाग्य है। लेखक की मूल प्रवृत्ति यह हो गयी है कि किन्हीं भी जीवन क्षणों में प्रकट एक स्थिति एक प्रसंग के अंतर्गत एक विशेष भाव को पकड़ ले और उसे शब्दों में उमर दे। वह उस भाव से सम्बद्ध अर्थ मूत्रों का पकड़कर उन्हें प्रस्तुत नहीं कर पाता। इससे यही सूचित होता है कि वास्तविक जीवन विश्लेषण की क्षमता उसमें नहीं है। वह वास्तविक प्रति केवल सचेतनाघात करके सचेतनात्मक प्रतिक्रिया करके उसे शब्दों में बाँध देता है। मर कथन का यह अर्थ नहीं है कि जीवन विश्लेषण के विस्तृत चित्रों का नितान्त अभाव है। नयी कविता के क्षेत्र में ऐसी बहुतरी कृतियाँ मौजूद हैं जिनमें जीवन के विस्तृत चित्र जीवन की विभिन्न परस्पर सलग्न समस्याएँ तथा दिक-सकत प्राप्त होते हैं। किन्तु प्रधानता उनकी नहीं है। ऐसा क्या? यह इसलिए है कि कवि-कलाकार यथाथ बोध के प्रथम स्तर पर, सचेतनात्मक आकलन और सचेतनात्मक प्रतिक्रिया के स्तर पर ही रहना चाहते हैं वे वास्तविक जीवन विश्लेषण का उसकी पूरी गहराई का आत्मसात करना नहीं चाहते, ऐसा प्रतीत होता है। यही कारण है कि जीवन के विस्तार चित्र हम नयी कविता में कम दिखाई देते हैं क्योंकि उसमें केवल विशिष्ट वा चित्रण ही नहीं, बल्कि परस्पर-सम्बन्धित विशिष्ट वा चित्रण और उनका सामायीकरण—

विश्लेषण और समन्वय—इन दोनों की आवश्यकता है। गहराई से जीवन में पढ़ने के अनिश्चित जीवन के विविध अनुभव, जीवन चिंतन और कलात्मक उपलब्धि के लिए आवश्यक अभिव्यक्ति-क्षमता—यह सब चाहिए। तभी हम एक विशेष दृष्टि से अनुभवों को संकलन करके उन्हें प्रम-बद्ध रूप में एक माहुर काव्यात्मक प्रकाश वातावरण के भीतर स्थापित कर सकेंगे। किन्तु यह नहीं होता है क्योंकि क्षण चित्र उपस्थित करने में जो मुकुरता और सुविधा होती है वह इसमें नहीं है। ध्यान में रखिए कि नयी कविता की भी एक रूढ़ि बन गयी है (किसी भी काव्य रूढ़ि को बनने के लिए बीस पच्चास साल बहुत हात है) और इस रूढ़ि के अनुराग के कारण अगला विकास भविष्य पर छोड़ दिया गया है।

मैं बात तो यह है कि जीवन विश्लेषणपरक विस्तृत चित्रण करने के लिए जिस बौद्धिकता और संकलित अनुभव चित्रों के गठन के लिए जिस बुद्धि शक्ति की आवश्यकता होती है वह इस क्षण में बहुत कम दिखाई देती है। वस्तुतः नयी कविता वागे ही कहने है जब व यह कहते हैं कि हमारी कविता बौद्धिक नहीं है। नयी कविता का बौद्धिक कहने वाले के लोभ है जो छायावादी कल्पना प्रधान भावुकतावाद की दृष्टि से, उसके पैमाने को ध्यान में रखते हुए नयी कविता को देखते हैं। नयी कविता की गद्यात्मक आभा को देखकर व उस बौद्धिक कहते हैं। किन्तु नयी कविता में किसी बौद्धिक प्रक्रिया का उल्लेख नहीं मिलता है उमर को संवेदनाघातों या उनके सामायीकरणों अर्थात् सामायीकरणों की ही प्रधानता है। इसमें अनिश्चित कुछ नहीं।

किन्तु, यदि हमें सच्च आधुनिक भाव-वाच को चित्रित करना है तो हम तीव्रतम संवेदना शक्ति के अनिश्चित मूल्य का अवगाहन करने वाली बुद्धि और उमर की विश्लेषण क्षमता चाहिए ही। और उमर अनिश्चित हम विरोध-दृष्टि से अनुभव-संकलन और उनका प्रम-बद्ध चित्रण गठन की भी आवश्यकता होती है।

इसी को मैं दूसरे शब्दों में या कहूंगा कि हम कोई प्रयोगवादी और नयी कविता के नये-नए जान मान दावरे से निकालकर नव-वैज्ञानिक-वादी की तरफ मुखा हागा तभी हम यथाथ के परस्पर अंतर्गम्यता के गहराई से समझकर जीवन के विविध को इस प्रकार रंग सकेंगे कि जिसमें कोई निष्पक्ष निष्पक्ष सके। दूसरे शब्दों में हम अनुभव संकलित करके उनका प्रम चित्रों का एक ऐसा संगठन उपस्थित कर सकेंगे जो यथाथ को प्रस्तुत करेगा ता उमर यथाथ की मारभूत विघ्नताओं के चित्रण द्वारा किन्हीं जीवन निष्पक्षों को अंकित और संवेदित कर सकेंगे।

जिस प्रकार आज जीवन छिन्न विच्छिन्न है, उसी प्रकार संभवतः उन्हीं छिन्न विच्छिन्नताओं के परिणामस्वरूप, नये काव्य में सब और क्षण चित्र ही

क्षण चित्र है। किन्तु यह स्थिति स्थिति होन मात्र से अपने जोचित्य को सिद्ध नहीं कर सकती। अनएव, आवश्यकता इस बात की है कि एक ओर भारतीय भूमि और आकाश में नयी कविता अधिक से अधिक रम तो दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि हम नव-वनागिकवाद की तरफ मुड़ते हुए वविध्यपूर्ण जीवन के सारभूत निष्कर्षों और दिक्सकेता का प्रकट कर सकें—अनुभूत यथाथ के परस्पर अत मन्व्य दो को अनुभव चित्रा के सगठन के द्वारा। तभी हम आधुनिक युग के वहिष्कार, सत्य की गहनता और वविध्य को उसके सार महत्त्व के साथ, कलात्मक अभिव्यक्ति दे सकेंगे।

नयी कविता निरसहाय नकारात्मकता

नयी कविता के वर्तमान स्वरूप के प्रति कदापि असंतोष है—स्वयं उन बहुत से कवियों में भी जो इस धारा के अग्र हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि इस धारा का विशेषण विवेचन खास के लिये करें जो एक ओर तो इस धारा के अग्र हैं तो दूसरी ओर उससे असंतुष्ट भी हैं। असंतोष प्रगति का लक्षण माना जाता है किंतु वह उसका वास्तविक लक्षण तो तब सिद्ध होगा, जब प्रगति वस्तुतः हो, होकर रहे।

काव्य का उन्नयन और विकास निरसहाय एक जटिल प्रक्रिया है। केवल कवि प्रतिभा पर भी काव्य की उन्नति निर्भर नहीं है। हाँ उसकी उन्नति के लिए जो तत्त्व आवश्यक होते हैं उनमें कवि की क्षमता भी एक तत्त्व है, किन्तु केवल वही पर्याप्त नहीं होता। उदाहरणार्थ पश्चिमी जगत की द्वितीय युद्धोत्तर कविता में यद्यपि नया मोड़ है फिर भी द्वितीय युद्ध पूर्व उसका जो उठान था उसकी ऊँचाई तक वर्तमान काव्य नहीं पहुँचा है—यह विना की राय है। संभव है, अनेक अन्य विषय इस बात को बाटने के लिए कुछ युक्तियाँ और प्रमाण प्रस्तुत करें। किंतु यह निश्चित तथ्य है कि काव्य-साहित्य की उन्नति उत्तमतर और अनवरत होनी चाहिए यह अनिवाच्य नियम नहीं है।

द्वितीय के वर्तमान काव्य साहित्य के प्रति कुछ लोगों में जो असंतोष है उस देखकर यह कहना पड़ता है कि यह असंतोष इसलिए है कि काव्य में जो कुछ कहना या देखना चाहते हैं वह प्रकट नहीं होता है या नहीं हो पाता। कोई चीज कही खो गई है गुम हो गई है। जो बुनियादी है बुनियादी होकर सतानी है वह नहीं मिल पाती। उच्छ्वास की कमी नहीं, वातावरण चित्रण प्रीरात्मक भाव व्यक्तता, अनूठी शैली। जो हाँ, सब-कुछ है। किन्तु जीवन का जो मूल सत्य है, वह निरोद्धित है। शायद सत्य है भी कि नहीं इसमें संदेह है, किंतु असत्य भी जीवन का सत्य है वह प्रकट चित्रित हो। सा वह भी नहीं। एक निरसहाय नकारात्मकता अथवा अधिभ्रम में अधिभ्रम जीवन के छिटपुट चित्र—निरसम कभी भावोच्चता-मकता है तो औद्योगिक का बलुप। इन स्थिति के विरुद्ध स्वयं कवि

ही विद्रोह कर उठता है (भले वह उसे कहे या न कह)। हाँ, यह सही है कि जीवन के इन छिटपुट चित्रा में भी भाव गभीरता है तथा मचाई हानी है (नही भी होती है)। फिर भी, उसमें सन्तोष नहीं हो पाता। कुछ और चाहिए थोर, और ! — वह चाहिए जो जीवन को उसकी ममप्रता में, उसकी मारी विगोपताओं सहित, प्रकट करे। कबल छिटपुट प्रयत्ना में (और उसकी वाहवाही में) जय मजा नहीं जाता।

इसलिए कुछ लोग 'खोज' पर विश्वास करते हैं। सतत अवेपण, सतत अनुसन्धान के पथ का नाम रोते लोग कम नहीं। किन्तु अनुसन्धान और अवेपण का थिओरोइजेशन (कबल विचारणा केवल सिद्धांत-स्थापन) ही किया जाता है। अधिक से अधिक वह आत्मावेपण और आत्मानुसन्धान बनकर जाता है जिसमें आवेग में दो चार, पाच-दस, दस-बीस कविताएँ बनाकर मामला ठप्प हो जाता है। और ऐसी कविताओं में जावत्ति पुनरावत्ति आवत्ति पुनरावत्ति। फिर वही दुष्ट चालू। संक्षेप में एक घेरा बन गया है उसमें से निकलना मुश्किल है।

इस प्रकार के या ऐसे ही किसी अन्य प्रकार के विचार सुनने का अवसर मिला करता है। बहुत-से लोग पश्चिमी कायाभ्यासी होकर अनुवादात्मक काल में इसलिए तल्लीन हैं कि उन अभ्यासकों द्वारा उन्हें नई अभिव्यक्ति प्राप्त हो सकेगी। ऐसे कवियों के मन में यह भाव प्रधान हो उठा है कि अभिव्यक्ति-शक्ति प्राप्त करने से हमारी कुछ कमियाँ दूर हो सकेंगी। अतएव अनवादकाय काव्याभ्यास का आवश्यक अंग माना जा रहा है।

इन सब में भी कुछ विचार हो जाए। पहली बात तो यह है कि मनुष्य का कोई सच्चा श्रम अकारण नहीं जाना। इसलिए काव्यानुवाद का भी निमन्त्रेण, अपना एक महत्त्व है। सत रामदास न कवि को शब्दों का ईश्वर कहा था। किन्तु हमारे प्राचीन सिद्धांत शास्त्री, प्रतिभा के अतिरिक्त, निपुणता और अभ्यास को महत्त्व देने आए हैं। आज के युग में जबकि परिवर्तन की गति द्रुततर है, जबकि जगत् अदिकाधिक परम्पर सम्पन्न और मक्षिप्त होना जा रहा है जबकि घटनाओं का वेग तीव्र होकर सामाजिक जीवन में तरह-तरह की ध्वनि प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न कर रहा है जबकि व्यक्ति-जीवन में भ्रांति भ्रांति के उत्तर-दायित्व प्रधान हो रहे हैं सामाजिक जीवन जटिल होकर कतय भावना युक्त हो गई है—तो ऐसी स्थिति में मन के भीतर जो उद्वेग है जो एकालाप है जो मूर है उसकी प्रभावमय अभिव्यक्ति के लिए निमन्त्रेण शब्द-सम्पदा चाहिए अभिव्यक्ति का अभ्यास चाहिए, यदि विदेशी स्रोतों से सहायता मिल सकती हो तो उसे लेने में मुझे कोई हर्ज नहीं दीखता।

किन्तु (और यह बहुत बड़ा किन्तु है) यह विदेशी महायत्ना भारतीय जीवन का हमारे अंतर्जीवन का, कवि-जीवन का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती, हमारे

मून उदगा का स्थान नहीं। म मरती हमारी जीवत जिना का स्थान न। म मरती। य मभी म्भीरणीय या अम्भीरणीय है। यवति एम अपा यम्पु-नय मे पूणत मतात। अपनी भाषा अपा इतिमान अपनी मम्पुति और गाथिप र तीव्र ममायतिर द्य म मरता ही उमम म्भीभूत हातर ही तीर विशय तीव्रन क विरीरणीन विरपा म गाथिप हातर ही हमाम यम्पु-नय क आपा जीर अनुरोधा का पूण वरन क विम हाय ममायता मारण्य है। य मर म मा तानी गाथिप। यति हमारी एसी स्थिति र है। ता नि म म् मर ममायता प्रि- तून है। निरूप यत कि मुग्ग प्रशत जीवन धाना का प्रशत है। न रि अभिव्यक्ति मम्पुति क अवपण का।

२

यह विनयुक्त मही है रि कवि को पण्डित आचार्य या सम्पाक होन को आवश्यकता नहीं है। उमम काव्य का मौख्य उमम पाण्डित्य और आचार्यत्व पर निर्भर न हाकर उसकी भाव-ममृद्धि और अभिव्यक्ति-ममता पर निर्भर है। किन्तु मुग्ग यान यत है कि भाव-ममृद्धि और अभिव्यक्ति-ममता दोनों एसीभूत सधनित स्थिति म बहुत कम पाई जाती है। अगर मचमुच यसा होना तो क्या बात थी। भायद इसीलिए सनत अभ्यास की आवश्यकता है। किन्तु इस म तपा जय याता के अतिरिक्त काव्य-मौख्य के लिए एक और चीज को जरूरत है। वह है—सौंदर्य की धियरी।

आप मानिए या न मानिए मेरा तजुर्बा यह है कि रचनाकार क मन म मौख्य का कोई नमूना, कोई डिजाइन कोर् पेटा होना जरूर है। लेखक यह कोशिश करता है कि उसकी कृति नमूने के समीपतर हो। इसी यान को मैं दूसरे शब्द म कहता हूँ। सौ ख्य-सम्ब धी कोई कल्पना कृति है जिसे हम यति कचारिक शान्तवली म कह ता धियरी कह सकत है। यह मच है कि कवि रचना करते समय उसम इस प्रकार सचेत नहीं रहता मानो वह कोर् बाह्य चित्र हो या बाह्य तिद्धान्त हो। किन्तु सौ ख्य सम्ब धी वह कल्पनाकृति धियरी क तत्त्व या सिद्धान्त क तत्त्व अवश्य रखती है। सौ दय सम्ब धी लेखक की वह मायता जिमके अनुमार वह रचना करता है। रचना प्रक्रिया म महत्वपूर्ण स्थान रखती है। होता यह है कि सौ ख्य सम्ब धी क कल्पनाकृतिमा क धारणाए कभा-कभा अपन ही वस्तु-तत्त्वो क अभिव्यक्ति रूपा क विरुद्ध पूर्वाग्रह भी बन जाती है। इन पूर्वाग्रहो के कारण वे अभिव्यक्ति रूप काव्य मे स्थान नहीं ले पाते, दूसर शब्दो म या तो वस्तु-तत्त्व ही काटकर फेंक दिए जात है। मा उह एसी अभिव्यक्ति दी जाती है जा उनकी मूल अभिव्यक्ति स्वभावत नहा है। इस प्रकार पुराना घेरा ज्यों का त्यागना रहता है।

इस समय व म एक बात धीर विवदनीय है। यह यह कि बहुतरे कविजन यह साचते हैं या यह मोचन ह क विग मजबूर हो जाते कि क्वि प्रत्यक कवि की अपनी विगप अभिव्यक्ति गली हुआ करती है इसलिए उम विगप अभिव्यक्ति गली के विकसित हान पर कवि ने एक मजिल त रर नी। महत्त्व की बात यह है कि अभिव्यक्ति पयाम के दीघवान म जो गली विकसित हो जाती है वह आग चल कर कवि या एक बहुत बडा बघन भी हा जाती है। सभी तरह के अनुभूत वस्तु तत्व एक ही प्रणार की अभिव्यक्ति गली म नही बांधे जा सकते। यह तो कहने की बात है कि तत्व स्वय ही अपना रूप ग्रहण करता है। सच बात ता यह है कि पूण अभिव्यक्ति प्राप्त करने की प्रक्रिया म तत्व स्वय बदलन गगत है। यहा तरु कि प्रारम्भत जिस उद्वेगपूण भाव ना देकर कवि लिख रहा था क्वि उम मूवभाव म दूर चनी जाती है, उमम भिन्न हो जाती है इसलिए मेरा यह मत रहा है कि कना म वस्तुत जात्माभि व्यक्ति नही हुआ करती। अभिव्यक्ति होती है कि तु जीने और भोगने वाल अपने मन की अपनी जात्मा की वह सच्ची अभिव्यक्ति है यह कहने का साहस नही हो पाता। वस्तुत यह आत्मा भिन्नाभि नही है। सौ न्य-सम्बधी अपनी-अपनी धारणाओ के अनुसार जो लाग अत्यधिक विशिष्ट बनने का प्रयत्न करते है और उसम उलभकर रह जाते है चाह वे होमा काई वेन आत्माभिव्यक्ति करते है न मामा याभिव्यक्ति। सच बात तो यह कि जात्मपरक रूप से विश्वपरक जगतपरक होने की लम्बी प्रक्रिया अभिव्यक्ति-बौशल के क्षेत्र म और अनुभूति अरात अनुभूत वस्तुतत्व के क्षेत्र मे।

दूसरे श-म मतत अवेपण और सनत अनुसधान का वाजा बजान वाले लोग वस्तुत, प्रयोग नहा कर रह है, वे प्रयोगवादी नही है, व घेरे म फेंक हुए ताप है वस्तुत म उमी म खण है कइ अपनी इस स्थिति से असतुष्ट भी हैं। कि तु यह घेरा तब तक नही टूट सकता जब तक कि वस्तु-तत्व भिन्न भिन्न होकर व्यापक होकर विभिन्न काव्यरूप ग्रहण नही करते। अथवा इसी बात का मैं इस तरह कहूंगा कि काय रूप म बंधन वाले तत्व और वस्तुत अनुभूत होने वाले तत्व उन ना की यकि हम तुलना करें तो पायेंगे बहुत कम अनुभूत वस्तु-तत्वकाव्य रूप ग्रहण करते है। शेष वस्तु तत्वों को काय रूप देने का प्रयत्न नही किया जाता। और यदि किया नी जाता है तो सौ दय-सम्बधी धारणाओ की तत्पि न हान की स्थिति म उनको काट कर फेंक दिया जाता है। फलत कवि-व्यक्तित्व और वास्तविक व्यक्तित्व म जमीन आसमान का फक दिखाई देता है। कविता म कवन एक ही स्थायीभाव बार बार प्रकट होकर समाप्त हो जात हैं मद्यपि सचेदनशील मन जीवन-जगत को आत्मसात करता हुआ और उसके विरुद्ध अनुकूल क्रिया प्रतिक्रिया करना हुआ अपना सचेत जीवन क्रिया करता है। फलत, कभी-कभी तो यह होना है कि कवि व्यक्तित्व वास्तविक व्यक्तित्व का

प्रतिबिम्बित्व नहा कर पाता ।

भाव जयवा जोवन क जो छिन्पुट चित्र कवि उपस्थित करता है, उनम मात्र विशिष्ट क्षण का चित्र बहुत कम होता है। सच बात तो यह है कि उसम एक निशा म जान जान जयवा एव ही प्रकार का विभिन्न भावा का सामायीकरण जनरलाइजेशन होता है। किन्तु जीवन क जो जय अनुभूत वस्तु-तत्त्व हैं उनम दूरा सामायीकरण का मात्रा कोई सम्भव न हो ऐसा दिखाई देता है। जीवन विभिन्न अनुभूत भावा क विभिन्न अनुभूत वस्तु-तत्त्वा का उनम सामुज्य-स्थापन नहीं है एसा प्रतीत होता है। इसीलिए लगता है रचनाकार क व्यक्तित्व म अन्तर्विभाजन है। काव्य रूप ग्रहण करन वाल वस्तु-तत्त्व अनग और विशिष्ट विशिष्ट जीवन म अनुभूत होत बाव वास्तविक क्षण पृथक जीर विशिष्ट इन मववा विज्ञान सामायीकरण के जनगत संयोजन न होत से बड़ी गड़बड़ है।

सक्षम म काव्य म जीवन के व्यापक चित्र चाहिए न कि छिन्पुट। व्यापक चित्रो म जीवन के विविध क्षणो और अनुभव का सामायीकरण निष्कय आवश्यक है। यह न हान संतुष्टि नहीं होती माग्शन नहीं होता। जिन्दगी को जीने और उस से चलने का उदाह और उसकी दीप्ति हम काव्य से मिलनी चाहिए। जीवन क विविध अनुभवा क सामायीकरण सं उत्पन्न जो निष्कय रूप दीप्ति है वही दे सकती है। कविता यदि जीवन बहन का लानटन हो सक इसका हम प्रयत्न करना होगा।

भारतीय मन की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। बड़े साहित्य को अपने आत्मीय परमप्रिय मित्र की भाँति देखना चाहता है जो रास्ते चलते उससे बात कर सके मलाह द सके बाट छाट कर सक प्ररित कर सक पीठ सहला सक और माग दान कर सके। भारतीय साहित्य म उन लोगो की वाणी को ही प्रधानता मिली है जि लोगे आध्यात्मिक खानापा और अतुष्टियो का दूर करने का दिशा म विवेक-वेदना स्थिति म ग्रस्त होकर काम किया है। जाशा है कि हम लोग बसा ही करेंगे।

नयी कविता की प्रकृति

नयी कविता की प्रकृति और रूप की चर्चा करना यहाँ व्यर्थ है। इतना कहना काफी है कि वह व्यक्ति-मन की प्रतिनिध्या है। प्रथम उभेप-काल में उसके पास आदर्शवाद था, सामाजिक विषमताओं को दूर करने के कार्य में लगन के अतिरिक्त, विषमताहीन समाज-व्यवस्था का स्वप्न और व्यक्ति विकास की अनंत सम्भावनाओं का स्वप्न भी उसके पास था। फलतः, यदि उसके काव्य में समाज के (वर्तमान पूँजीवादी समाज के) प्रति क्षोभ और कष्ट भावना थी, तो दूसरी ओर वफ़ल्य का भाव भी था। किन्तु यह वफ़ल्य उसका व्यक्तिगत था। एक विषम समाज वगैरे परिवार में पाये जाने वाले व्यक्ति के मानस का चित्रण उसमें है उसमें एक मनोवृत्ता है। यदि कवि अपनी आत्म-परक कविता में अपनी व्यथा प्रकट नहीं करेगा तो फिर वह म करेगा। उसकी उगासी और विफलता रोमैटिक नहीं है बरन इसके विपरीत वह वास्तविक जीवन-समस्याओं से उत्पन्न है। उसके पास आदर्शवाद और आशावाद भी है। जतएव वह अपने व्यक्तिगत दुःख के परे जाकर खतरा मोल लेता हुआ राजनतिक-सामाजिक विषय की कविता लिखने के पहले उस क्षेत्र में स्वतः कार्य करता है और उसके साथ राजनतिक-सामाजिक कार्य विषय भी चुनता है संक्षेप में कार्य रचना उसके जीवन से संबद्ध है—ऐसे जीवन से जो उसके काव्य की मूल भूमि है। ध्यान में रखने की बात है कि जागे चलकर नई कविता के डिफेंस में जब प्रगतिवादी दृष्टि का विरोध किया गया तब सबसे पहले जीवन और वायानुभूति की समानांतरता का परेलेलिजम का सिद्धांत स्थापित किया गया। कहा गया है कि जीवन में प्राप्ति होने वाली अनुभूतियाँ और मोदर्यानुभूति ये दो चीजें अलग अलग हैं। बाह्यतः स्पष्ट-सी दीखने वाली इन बातों के पीछे एक स्पष्ट अस्पष्ट राजनतिक उद्देश्य था। वह यह कि कवि का काव्य-जीवन और वास्तविक जीवन इन दो में अविच्छिन्नता और मौलिक एकरता को कुहरिल कर दिया जाय। यह सिद्धांत एक बहुत ही खतरनाक मायता है। नई कविता के बुद्ध से शीत पुद्गल बनाने वाले नीति नियामकों का वह एक सोद्देश्य मानसिक विशेष है।

इसकी चर्चा जागे होगी। ध्यान में रखने की बात केवल इतनी ही है कि उक्त सिद्धांत नई कविता किमी जीवन दृष्टि की या दार्शनिक व्यवस्था की ही—साहित्य के क्षेत्र में—विकसित होती हुई दीखती हुई प्रलम्बित शाखा होती है। यही कारण है कि कला सम्बन्धी धारणाओं को मूल जीवन दृष्टि से सुविधा के लिए भले ही जलग रूखा जाय वे इससे सबका विच्छिन्न नहीं होतीं। ध्यान में रखने की बात है कि भारतीय साहित्य चिंतन में वाक्य सौन्दर्य के सम्बन्ध में विस्तृत और बविध्यपूर्ण चर्चा है। किंतु नई कविता ने पटुव सम्पत्ति भी नहीं की है।

किमी भी दार्शनिक ज्ञान व्यवस्था में अनुप्राणित या जाघारित जो भाव दृष्टि होती है उसकी अपनी सीमा और क्षमता भी रहती है। जब तक लेखक स्वयं उस बात से चेतन न हो वह बहुत गडबड कर सकता है। उदाहरणतः यह आवश्यक है कि मनुष्य को, सम्पूर्णतः वाय विषय बनाया जाय न कि एक व्यक्ति का इधर या उधर झुकाव हो अथवा वह इस विचार-समस्या या उस विचार-व्यवस्था का पूर्णतः मान ले। किंतु नई कविता की अपनी विशेष कोई दार्शनिक धारा या विचार धारा नहीं रही। वह तरह-तरह के झुकावों दृष्टियों और विचारों का एक ढेर बन गयी। सक्षम में नई कविता के पास अपनी कोई विशिष्ट दार्शनिक धारा या विचार धारा नहीं है। लगभग सभी कवियों में विकसित विश्व दृष्टि का भाव है सागापाग विचार धारा का अभाव है। अगर किसी में कोई विश्व दृष्टि है भी तो वह ऐसी स्थिति में है कि वह उसकी भाव दृष्टि का अनुशासन प्रायः नहीं कर सकती।

क्या यह वांछनीय है? इस प्रश्न का उत्तर अपने-अपने झुकावों के अनुसार जलज जलज तरह में दिया जावेगा। मरे अपने मतानुसार यह अच्छा नहीं हुआ। अच्छा नहीं है ज्ञानि प्रश्न है साहित्य के लिए श्रेष्ठ के लिए स्वयं कवियों के अपने-अपने जीवन के लिए भी। आज बहुत-से कवियों के अंतःकरण में जा बची जा ग्याति या अवमान जा विरसित है उसका एक कारण (अथवा कई कारण हैं) एसी विश्व-दृष्टि का अभाव है जो उक्त आभ्यन्तर आत्मिक शक्ति और मना बल प्रदान कर सके तथा उसकी पीछे-पिछे जगत्-व्यवस्था का दूर कर सके।

क्या जायगा कि नई कविता बन्तुन एक नई तंत्र है नया वाक्य प्रचार है और उसमें विभिन्न विश्व-दृष्टियों या विचार धाराओं का म्यान प्राप्त है। जोर यह कि यदि सभी विचार धाराओं में नया आ पाती तो इसका कारण यह है कि मनुष्य में उन विचार धाराओं के लिए स्थितान कोई उपजाऊ जमीन तयार नहीं की है।

इस सम्बन्ध में सरासरी निष्कर्ष है कि नई कविता के क्षेत्र में वाक्य बरन बान कवियों द्वारा किमी एसी विश्व-दृष्टि के विकास के प्रयत्न नहीं देखे गये

(या वे प्रयत्न इतने प्रधान नहीं हुए कि सबका ध्यान अपनी जोर खींच सकें) जो उसकी भाव दृष्टि का अनुशामन कर सकें, जोर उम भाव दृष्टि में किसी प्रकार में उसकी विरग-दृष्टि प्रतिच्छवित हो सके ।

यह भी कहा जा सकता है कि लेखक-कलाकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह नमप्रतापूग किमी विश्व दृष्टि का विकास करे, यह काम दार्शनिक, चिंतक तथा अर्थ विचारको का हो सकता है, लेखक कलाकार का नहीं । इसी मिलमिले में ऐसे साहित्य युगा की धार संकेत किया जा सकता है जबकि किसी दार्शनिक धारा को लेखक-कलाकार ने अपनी कला का आधार नहीं बनाया नहीं बताया,—जैसे हिन्दी का रीति कालीन साहित्य, कहिए बीरगाथा काल । जय दशा के साहित्य-युगा के भी उदाहरण दिय जा सकते हैं । मक्षेप में कलाकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि यह कोई दार्शनिक आधार ग्रहण करे । और, सब कुछ यदि हम 'दार्शनिक' आधार का बहुत सकुचित अर्थ स्वीकार करें तो कलाकार के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह बंधे-बंधाये बचारिक ढाँचे को अपनी कला की श्रेष्ठता उपस्थित करने के लिए, यात्रिक रूप से स्वीकार करे । यह सब नहीं है ।

फिर भी ऐसे लेखक कलाकार ज्ञान जाए ह जिहान व्यक्तिगत सामाजिक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के सम्बन्ध में, एक कलाकार की हैसियत से, सोचा विचारा है । चेतना की समृद्धि और विस्तार श्रेष्ठ कला का एक लक्षण है । और अब तक मानव-समस्याएँ हल नहीं होती, चाह वे किसी भी क्षेत्र और स्तर की क्या न हों तब तक मानव सबन्धापूर्ण अन्तःत्मक चेतना का यह धर्म है कि वह उन पर सोचे विचारे और अपनी दृष्टि को कलात्मक रूप से प्रस्तुत करे ।

एक बात और भी है । किसी भी कलाकृति में लेखक ही जीवा-दृष्टि अवश्य प्रकट होती है । नले ही लेखक जान या न जान यही जीवन-दृष्टि के भीतर और उमरे जासपास जीवन जगत सम्बन्धी तरह-तरह की धारणाएँ और विचार होते हैं । यह भी एक तरह की विचार धारा ही है जिसे हम पूणत मुमम्बद्ध समगन बचारिक व्यवस्था मने ही न कहें ।

उम युग में उम काल विशेष में जबकि मानव-समस्याएँ अधिकाधिक एक धित और विकसित होती जाती हैं यह स्वाभाविक ही है कि लेखक-कलाकार उनसे प्रभावित हो और उन्हें अपनी कलात्मक चेतना में विषय प्रनायें । अगर, वह किसी कारण से—जैसे राजनतिक कारणों से—उन समस्याओं के स्वाभाविक-समगन समाधानों को स्पष्ट और पूणत प्रकट नहीं कर पाता, अथवा उन समस्याओं की वास्तविक रूपाकृतियों को स्पष्टतः प्रकट करना अपने लिए अतर्नाक समझता है तो बनी स्थिति में वह उही समस्याओं के

व्यक्तिवत् स्थिति परिस्थितियों का सामांयीकरण करते हुए आत्म स्थिति और व्यक्ति स्थिति से हटकर मानव-समस्या के रूप में उद्घटित देखना क्या कलात्मक चेतना का धर्म नहीं होना चाहिए? आज जो प्राप्त मानव सम्बन्ध का ताना बाना है उसका अवलोकन निरीक्षण अध्ययन तथा उससे उचित निष्कर्षों की प्राप्ति के प्रयत्न, कलात्मक चेतना के बाहर की कोई चीज होनी चाहिए। क्या कलात्मक चेतना का विस्तार वहाँ तक नहीं हो सकता? कलात्मक चेतना का विस्तार के प्रति यह जरूरी क्यों?

इसका उत्तर यह कहकर दिया जा सकता है कि जहाँ तक जीवन को तदगत (वस्तुपरक) दृष्टि से देखकर उसके अध्ययन का प्रश्न है वह काम शास्त्री का है न कि कलाकार का। अतएव, कलाकार में वही बातें बहना उसके व्यक्ति-स्वातंत्र्य में बाधा डालना है। कलाकार का काम तो केवल आत्माभिव्यक्ति करना है।

किन्तु प्रश्न यह है कि इतर जना को यह अधिकार क्यों न हो कि वे यह जानें कि कलाकार की वह आत्मा, जिसकी वह अभिव्यक्ति कर रहा है, कसी है? हीन और क्षुद्र है या श्रेष्ठ और उदात्त, ज्ञान-दीप्त है या अज्ञान ग्रस्त? वस्तुतः वह कवि जीवन-संवेदनशील है या जीवन कथान पर उसने किसी झूठी स्वप्न प्रतिमा को खड़ा करके काम से छुट्टी पाई है? यदि आदि प्रश्न उठते हैं। क्या ऐसे सवाल उठाना स्वाभाविक नहीं है?

यदि कवि-कलाकार किसी शास्त्रीय पुस्तक के पास न भी पहुँचे तब भी, मनुष्य होने के नाते वह समस्याओं के प्रति संवेदनशील अवश्य होता है। यह सही है कि कोई लेखक-कलाकार अधिक संवेदनशील होता है तो कोई कम संवेदनशील होता है जयवा किसी की संवेदना का विस्तार सक्षिप्त तो किसी का व्यापक होता है। फिर भी, यह कहना कि वह मानव समस्या के प्रति संवेदनशील नहीं है मुझे अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। बातचीत के दौरान मैं प्रकट किये गए इस खयाल से तो मैं सहमत हूँ कि हिन्दी का कवि साधारणतः एक पिछड़ा हुआ प्राणी है। किन्तु क्या वह इतना पिछड़ा हुआ है कि उसे साहित्य का जादुवासी कहा जाय? मैं खयाल से ऐसा कहना कवियों का अपमान है। किन्तु यदि वह उन समस्याओं के प्रति संवेदनशील है तो वह उनका चित्रण इस प्रकार क्या नहीं कर पाता कि जिसमें वह एक मानव-समस्या के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हो। मानव-समस्या जब भी हमारे हृदय को स्पृश करती है तब हम लगता है कि वह अपने पूरे तानेबान के साथ उपस्थित हो रही है। तो वह समस्या उसके तानेबान उसकी पीड़ा इन तीनों का समग्र एकीभूत संवेदनात्मक अङ्गन क्या नहीं हो पाता? यह ठीक है कि एक ही मानव-समस्या को भिन्न कलाकार भिन्न रूप से ग्रहण करेंगे या समझेंगे अथवा उनके सम्बन्ध में हमारा संवेदनात्मक ज्ञान तीव्र होने लूँगा

उपना ही मकता है, किन्तु प्रश्न यह है कि हमारी व्यक्ति-ममस्या, मन की निविड पीडा एक मानव ममस्या क रूप म गहीत और चित्रित क्या नता हो पाती ।।

मर खयाल स यह प्रश्न महत्वपूर्ण है । व्यापक मानव-जीवन तक पहुँचन क लिए यह सिफ पटना कर्म पत्नी सीडी है ।

✓ व्यक्ति-ममस्या की मानव ममस्या बनाकर तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब हम उस ममस्या म पूण तटस्थता और फिर उसम भोगे रम और इस प्रकार उस सारे तान-यान का दखे जिसस मानव-जीवन बना हुआ है अपनी स्थिति म और विवाम म । सक्षप म हम कवन तथास्थित मोर्त्यानुभूति क क्षणों क बाहर जाना हागा, और भाव का आधार बनन वाले गान का विस्तार करना हागा । कवन एक क्षण क उत्कप का चित्रण करन क बजाय हम सम्बी तजर फेरती हागी और वह सारा तानाबाना अकित करना हागा जिसमे का समस्या एक विनोय कात और परिस्थिति म विनय रग और रूप म विवमित और प्री चल हूँ है । यह मय काय तथास्थित मोर्त्यानुभूति क बाहर का काय है । और चरि का काय मोर्त्यानुभूति क बाहर का काय है इगलित या ममसा जाता है कि का मोर्त्यानुभूति क क्षणा क लिए या कनात्मक गाना की परिवर्द्धि और विकास क लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है । और यदि है भा ता उगम गाना का कुछ बनना विगता नहीं है । वह जमी है यमी ही रहगा ।

मय यान ता यह है कि इस प्रकार क शुकावा और लक्ष्मीके पाछ कसा सम्बधी कुछ धारणाएँ और विचार-मर्णियाँ काम कर रता है । ये धारणाएँ और विचार-मर्णियाँ उम कात म अरि प्रती रत और प्रत्यारित हूँ तिम हम तिम ।

कुछ भिन्न है। अमरीकी साहित्य की अधिकांश प्रेरणाएँ प्रगतिशील हैं, यथायवानी हैं। एमी ही श्रेष्ठ परम्पराएँ पश्चिमी यूरोप में भी हैं। किन्तु शीतयुद्ध के नीति नियामकान उनसे अपनी प्रेरणा ग्रहण नहीं कीं वरन् साम्यवाद विरोध का अपना प्रधान धर्म मानते हुए (उन किना डलेस का जोर था भारत में भी डलेसवादियों की आज भी कमी नहीं है) व नीति नियामक ऐसे सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे जो घोषित रूप से तो साहित्य-सौंदर्य कला-सौंदर्य के सम्बन्ध में, किन्तु उनका उद्देश्य अधिक व्यापक था। चूँकि 'प्रगतिवाद', अपने जतर्बाह्य कारणों से, विशृंखल हो गया था, साथ ही वह जिम रूप में हिन्दी क्षेत्र में था वह अपरिपक्व ही कहा जा सकता है। इसलिए उसका प्रभाव क्षीणतर होता गया। उस पुराने अपरिपक्व प्रगतिवाद ने अपने हटके कारण नई कविता का सव तरह से विरोध किया, इसलिए उसे मार खानी पड़ी। इन शीत-युद्ध के समय प्रचलित सिद्धान्तों की छाप अभी भी नई कविता पर है यह भूलना नहीं चाहिए।

ध्यान में रखने की बात है कि एक कला सिद्धांत के पीछे एक विशेष जीवन दृष्टि होती है उस जीवन-दृष्टि के पीछे एक जीवन-दृष्टान्त होता है और उस जीवन-दृष्टान्त के पीछे आजकल के जमाने में एक राजनतिक दृष्टि भी लगी रहती है। निःसंदेह, नई कविता की एक फिर्ताफिरी रूप में, कला सिद्धांत लाया गया। कला सिद्धान्त के पीछे सामाजिक-साहित्यिक मनोवृत्तियाँ का विश्लेषण करनेवाला 'आधुनिक भाव-बोध का सिद्धांत जाया और व्यक्ति-स्वातंत्र्य' का नाम पर एक सामाजिक राजनतिक दृष्टान्त भी प्रस्तुत हुआ। और ये सब नई कविता के समर्थन और विस्तार में ही आए। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।)

यूरोप में काय-सौन्दर्य का उद्घापोह करने वाले सिद्धांतों का एक जगल का जगल खड़ा हुआ है। ध्यान में रखने की मुख्य बात यह है कि न केवल यह सिद्धांत परस्पर भिन्न हैं व सिद्धांत रूप में भा अस्थायी होते हैं। साहित्य सिद्धांत के क्षेत्र में सौंदर्य-तत्त्व का विश्लेषण करने वाली मिजरीज के मृतावगोप इधर उधर फन पड़े हैं। मुख्य बात यह है कि व सौन्दर्य सिद्धांत किसी विशेष कला-प्रवृत्ति की औचित्य स्थापना के लिए किसी जीवन-दृष्टि के (जो कला में प्रकट होती है) समर्थन के लिए लाए जाते हैं। और वह काव्य प्रवृत्ति नष्ट होते ही या उसमें नये तत्त्वों का समावेश होने ही, उन कला सिद्धांतों में धीरे धीरे परिवर्तन होन लगता है। प्रगतिवादियों के विषय एक थे, दृष्टि एक थी वैसे ही उनकी पटन भी थी। नया विषय, नई दृष्टि और नये पटन के लिए नया कला सिद्धांत लाया गया। किन्तु चूँकि उस कला सिद्धांत के पीछे पश्चिम का उज्ज्वल मानवतावाद न होकर उसी पश्चिम का जल्यत सङ्कुचित 'यक्तिवाद' था इसलिए इस नये कला सिद्धांत में भी वह सङ्कुचित जीवन-दृष्टि प्रकट हुई और इस सङ्कुचित 'यक्तिवाद' में, शीत युद्ध के उद्देश्य छिपे हुए थे।

यह नया बना गिज्ञान मुख्यतः जीवनानुभव और नीत्यानुभूति की ममानातरता माता है। नीत्यानुभूति का क्षण म ही कला का प्रभव होता है। नीत्यानुभूति आवेगा स मन का द्रवण हाकर जब यह उदय प्राप्त करता है तब यह बना जाएगा कि यह नीत्यानुभव का क्षण है। नीत्यानुभूति का क्षण ही अनुरोध नहीं किया जा सकता कि यूँसा लिख वसा लिख तरी बना लगी हो वसी हो। नीत्यानुभूति का क्षण म जिग प्रकार उमका मन द्रविन हाकर आत्मप्रवर्तकीकरण करा चाहगा करना। उमका काम तो सिता आत्मप्रवर्तकीकरण नीर मुक्त आकृतिया का निर्माण करना है। ध्यान रहे कि प्रगतिवाणी मज्जन बनाकार म इस प्रकार का अनुरोध करता है। यह उनी तातागारी मनोवृत्ति की। इस प्रकार व रेजीम-प्रण परना चाहते है। कलाकार को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह मन चाही चीज लिख। यदि पाठका को अच्छी लग तो ठीक न अच्छी लग तो ठीक। यदि इस प्रकार का क्षण म कोई मूल्यवान अनुभव ग्रथित हुआ और उसकी अभिव्यक्ति मुदर हुई तो नि सतह वह मानवतावाद की स्वायी निधि म स्थान पायगा। यदि आ नद कविता लोकप्रिय नहीं है ता जनता म उसकी अभिव्यक्ति बढाई जा सकती है प्रचार और प्रशिक्षण द्वारा। सक्षम म तरह-तरह का विचार प्रकट किय गए। उनम मुख्य बात यह बताई गई कि जीवनानुभवा का स्तर और नीत्यानुभवो का स्तर परस्पर भिन्न है। नीत्यानुभवा की स्वतंत्र क्रियमाणता स्वतंत्र गति है। इसलिए उस पर किसी भी प्रकार का बाह्यानुरोध नहीं ना जा सकते। कलाकार का काम, बना वार की हैसियत स सिर्फ नीत्यानुभवो के क्षण की परिसीमा के भीतर रह कर उसका चित्रण करना है अर्थात् कलाकार की हैसियत कलात्मक क्षण का अनुभवन और चित्रण नक ही मर्यादित है। शेष बाय वह एक नागरिक की हैसियत स या नान पिपामु बुद्धिवादी की हैसियत स चाह तो कर सकता है। यह उन नीति नियामका की भूमिका थी।

इस भूमिका के विषय सामाजिक राजनतिक उद्देश्य व। पहला तो यह था कि लक्षक कलाकार को वास्तविक जीवन के स्पण स बचाया जाए जिससे कि वह वास्तविक जीवन को अपनी कलात्मक चेतना का अतभूत न कर सके। कथानि उसने वसा वस्तुतः किया तो नि सदेह होगा कि वास्तविक यह जीवन की तरह तरह की विषमताए सामने आएगी और उनका चित्रण करत हुए वह वामपयी मनोवृत्तियो का भी चित्रण कर सकता है। उन नीति नियामका का मुख्य उद्देश्य तो उन वामपयी मनोवृत्तिया स युद्ध करना था। यही कारण है कि उनी का काय मत्र का अतगत बद्ध स रचनाकारा ने जब अपनी किही वृत्तिया म वामपयी मनोवृत्तियां प्रकट का तो उननी व वृत्तियां उन नीति नियामका और उनका अनुमरण-कर्ताओ क लक्ष असुकर हो गई।

किंतु इसके विपरीत यह भी स्पष्ट है कि कलाकार को जीवन के स्पष्ट से बचाया नहीं जा सकता, इसलिए यह आवश्यक है कि कलाकार का एसी भूमिका प्रदान की जाए जिसमें वह उन मनोवृत्तियों के पजे में न आयें। 'आधुनिक भाव-बोध' तथा 'लघु मानव' आदि सिद्धांत इसी आवश्यकता से उत्पन्न हैं। यह तो स्पष्ट है कि इन 'आधुनिक भाव-बोध' में उन उत्पीड़नकारी शक्तियों का बोध शामिल नहीं है जिन्हें हम शोषण कहते हैं पूंजीवाद कहते हैं साम्राज्यवाद कहते हैं तथा उन सघटनकारी शक्तियों का बोध भी शामिल नहीं है जिन्हें हम जनता कहते हैं शोषित वर्ग कहते हैं। यहाँ तक कि इन आधुनिक भाव-बोध में उस देश निर्माण का स्वप्न भी नहीं है जिसके अंतर्गत हमारा यहाँ औद्योगीकरण हो रहा है, न उस देश निर्माण का जबकि गरीब-अमीर रहण ही नहीं।

सक्षेप में, भारत की शिक्षित मध्यवर्गीय जनता में जो भाव-संवेदनाएँ प्रगति-शील राजनैतिक अर्थ रखती हैं उनका 'आधुनिक भाव-बोध' में कोई स्थान नहीं है। हम तो केवल 'लघु मानव' हैं, साधारण जनता नहीं। साधारण जनता में विश्व-परिवर्तन की अदम्य शक्तिकारी शक्ति होती है। लेकिन उन नीति-नियामकों के लेशे, वह भीड़ की अधीनता है। वास्तविक चेतना तो व्यक्ति के अपने आभ्यन्तर की समृद्धि है। तो इसलिए व्यक्तित्व ही इकाई महत्त्वपूर्ण है। यह इकाई लघु मानव है, क्योंकि अब यह इकाई महान् आदर्शों के उच्चतर स्तर की प्राप्ति के पीढाजनक भीषण प्रयत्नों में संलग्न नहीं है न हो सकती है। महान् आत्माया महान् प्रतिभाशालियों महामानवों का युग गया। अब हम जन साधारण भी नहीं केवल लघु मानव है, क्योंकि नम जन-साधारण हो जाएँ तो वामपंथी मनावृत्तियों के शिकार होकर भीड़ की अधीनता बनते हुए अपनी व्यक्तिगत इच्छा को खार्देंगे। इसलिए हम जनसाधारण से लघु मानव बन जाना चाहिए।

हम पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हैं। व्यक्ति-स्वातंत्र्य एक पुनीत सिद्धांत है, (चाहे उसमें लूट-खसोट अनावार भ्रष्टाचार स्वायत्त चरित्र-हीनता धन का प्रभुत्व, शापण क्या न चलता हो) यदि समाज में बुराईयाँ हैं तो धीरे धीरे ही दूर होंगी। लोग हैं कि जो अपने लघुत्व के कारण इस स्वातंत्र्य से डरते हैं। वे कलाकार हीन हैं जो बाह्यान्तरोप स्वीकार करते हैं। मनुष्य की परम चेतना अतः आत्मा पर जोर डालने वाली यह साम्यवादी पार्टी रजिमेंटेशन करती है। वह साहित्य का भी रजिमेंटेशन करना चाहती है। वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य के विरुद्ध अधिनायकत्व के सिद्धांत में विश्वास रखती है। साम्यवाद का विरोध एक पवित्र धर्म है। य कुछ बुद्धिजीवी जोर वह कुछ जनता इतनी वक्कूफ है कि उनके बह-कावे में आ जाती है। वह विदेशी प्रभाव भारत में लाती है लोग के दिमाग को गुनाम बना लेती है (पश्चिमी प्रभाव भारतीय प्रभाव है अमरीकी नीति

नियमा बन्तुत भारतीय है। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवात् भारत का शत्रु है अन्तर्राष्ट्रीय पूजीवात् जोर साम्यवात् भारत का अपना गण भाई है।)

यह एक स्पष्ट तथ्य है कि हमारे अधिकांश कवि नए राजनीति के चकर म नहीं हैं। भरा उद्देश्य तो बचत यही दरणाया था कि इन प्रकार एक नया मिडाल के साथ एक समाज-नीति जोर राजनीति सगी हुई है। किन्तु आज की दृष्टि म सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यद्यपि इन राजनीतिक विचारधारा का कोई बिगप प्रभाव हम पर नहा है, फिर भी वाक्य-नीत्य सम्बन्धी बन्तुत-नी धारणाओं का हम पर अवश्य प्रभाव है। अतएव यह जायस्यक है कि हम उनका जांच करें।

प्रयोगवाद

तथाकथित प्रयोगवाद की कोई विरोध व्याख्या नहीं की जा सकती। साहित्यिक प्रवृत्ति का रूप में ही उसे देखा जा सकता है। यह निश्चित है कि प्रारम्भिक रूप में प्रयोगवादी कविताएँ तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का विरुद्ध व्यक्ति द्वारा की गई भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ हैं। किंतु अब व्यक्ति छायावादी नहीं उमम जब बौद्धिकता आ गई है वह जा देखता है उस पर सोचना चाहता है जा अनुभव करता है वह लिखना चाहता है। उच्च सामाजिक श्रेणियों और वर्गों में वह Have not में से है Haves में से नहीं। जिस बात पर वह सोचना चाहता है जिस स्थिति पर सोचने के लिए उसे मजबूर होना पड़ता है उसके प्रति उसका दृष्टिकोण घनघोर व्यक्तिवादी स्थिति से लगाकर तो अविकसित भावसाधनावादी स्थिति से लगाकर बना हुआ है। समाज उसका गला दबाता है उसका अपना बग भी उसकी आवाज को कुण्ठित करता है। समाज में पुरानापन है दकियानूसी है जड़ता है और कुचलने की शक्ति है व्यक्ति इसमें विद्रोह करता है परंतु विद्रोह करने का तरीका उस नहीं मालूम। इसलिए मात्र भावनात्मक विस्फोट करके वह रह जाता है। बौद्धिक लक्ष्यानुगामी दान के कारण, उमक विद्रोह में प्रगतिवादी फूटकार नया आ पाते। वह कला-तत्त्व से अधिक सचेतन है किंतु अपन उग्र और दमित भावना मण्डन की यथान्यता को प्रकट करने के लिए उसके पास अबल छायावादी शब्दावली है जिसका प्रयोग वह नहीं चाहता। उसके अनुसार उदाहरण के लिए छायावादी भाव को ही प्रकट करते हैं। वे नए मनोवैज्ञानिक यथायक प्रकट नहीं करते। इस धारणा का परिणाम यह हुआ कि कविता को वैचारिक गद्य का जामा पहनाया जान लगा। समाज से सामंजस्य का अभाव का फलस्वरूप तथा उसके विरुद्ध उमम प्रखर बौद्धिक व्यक्तिवादी का विकास हुआ कुछ लोगो में अंतर्मुखी चेतना उत्पन्न हुई तो कुछ में बहिर्मुखी। चेतना अधिक यथार्थो-मुख हुई चाह वह अंतर्मुखी हो या बहिर्मुखी। कुछ में बाह्य चित्र प्रधान हुए कुछ में अंतर्चित्र। यह स्वाभाविक ही था कि इस सीमा के कुछ लोग आगे चलकर भावसाधनावादी होने लगे। नवीन यथार्थो-मुख्य (यथायक से मतलब हमेशा

वात्री यथाथ ही नहीं जाना) प्रतीक उपयोग समाने आदि। पिगी पिगाई मरना वाली का त्याग हुआ।

हिन्दु जिज्ञासु समाज की अभिवृत्ति छायावादी ही थी। उनका लिए पीडा का अर्थ रोमांटिक या आध्यात्मिक ही था। यह स्वाभाविक ही था कि उन्हें यक्षितनाएँ पसन्द न आनी। आगे चलकर ये ही छायावादी तबक और उनका समकालीन प्रयोगवादी स्थापितनाएँ उपयोग न साहित्य तथा समाज के प्रभावशाली पक्ष और स्थान पर जा पहुँच। उन्होंने पर्याप्त रूप में एकाघातावरण घनीभूत किया जिसमें इस नवीन प्रवृत्ति का कण्ठ रोप्र है। किन्तु प्रयोगवादी प्रवृत्ति ऐतिहासिक कारणों से ही उपयोग हुद्र थी उसी में उसका विकास भी हुआ और हो रहा है। इसलिए वह सामयिक विरोधा से दब नहीं सकती थी। दूसरे तार-सप्तक के प्रयोगवादी गाय ही हिन्दी का विद्वान मण्डली का ध्यान इसकी ओर गया और तार सप्तक प्रयोगवाद चर्चा का विषय बना हुआ है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि पहले तारसप्तक और दूसरे सप्तक में स्थिति तथा व्यक्ति का बहुत बड़ा भेद है। दूसरे सप्तकवाला जो अच्छी परिस्थितियाँ मिला थी। साथ ही तब तक पहले सप्तक वाले भी काफी आगे बढ़ चुके थे। इसलिए जिन प्रश्नों को लेकर पहले सप्तक वाले आगे बढ़ उन प्रश्नों को लेकर दूसरे सप्तक वाले नहीं। पहले सप्तक वाले की समास भावना की जाय बहुत अशाम, छायावादी में ही गीत चुकी थी। वे अपनी छायावादी अवधि पार कर उमर विरह प्रतिज्ञा करने हुए प्रयोगवादी थे। तो दूसरे सप्तक वाले अपनी नवान रोमैटिक भावनाएँ लेकर प्रयोगवाद में आए। पहले सप्तक और दूसरे सप्तक में यह एक मौलिक भेद है। व्यक्ति के विकास की दृष्टि से पहला तार सप्तक अधिक मजबूत है दूसरा सप्तक रोमैटिक परिधान की दृष्टि से अधिक मनोरम। रोमैटिक भावनाएँ जीवन की यथाथता है। मनोपज्ञानिक यथाथवादी दृष्टि से वे अतएव प्रयोगवादी के लिए निषिद्ध नहीं ठहरती, बसतों कि उनकी ओर देखने की दृष्टि कुहिल न हा।

कोई भी नई साहित्यिक प्रवृत्ति अपना प्रारम्भिक अवस्था में अनगढ़ होती ही है। किन्तु हिन्दी में कबल उमक कमजोर उदाहरणा को लेकर ही उस पर आश्रय मण किया गया। उसकी शक्ति नहीं परखी गई। यह हम बात का सबूत है कि वर्तमान आलोचक जिनमें प्रगतिवादी और छायावादी शामिल है जीवन के नए मोड़ों की साहित्यिक अभिव्यक्ति का आनन्द नहीं कर सकने योग्य की बात ही नहीं उठती।

हम साहित्यिक मापजोख दो दृष्टियों से करनी चाहिए, एक—रूप की दृष्टि से दूसरे—वस्तुतत्त्व की दृष्टि से। वस्तुतत्त्व में इतनी शक्ति होती है कि वह स्वयं अपने रूप को लेकर आता है। अतएव मुख्यतः हमारे लिए वस्तुतत्त्व प्रधान ही

जाना है। प्रश्न यह है कि क्या प्रयोगवाद का आज तक का विकास ऐसा है कि जो हमारी जनता के मुख्य लक्ष्य को अप्रसर कर सके ? जयवा, क्या उमम यह आगा हा मवनी है ? मेरा अपना मत यह है कि अभी तक प्रयोगवादी कवियों म यह विज्ञान चेतना नहीं आ पाई है जिम हम महत्तर देत हैं। कुछ कवि तो मात्र मान कि प्रयाघाता का चित्रण करके ही चुप रह जात है। अया न कुछ मत्त्वपूण प्रयाग किए हैं। इनका नेखवर यह आगा हानी है कि आग चरकर नये कवि अपन विशाल उत्तरदायित्वा का निर्वाह अधिक सफरनापूवक कर सकेंगे।

आधुनिक हिन्दी कविता में यथार्थ

हिन्दी जिस रफ्तार से दिन दिन आगे बढ़ती जा रही है उसका साहित्य जिस गति के साथ विकसित हो रहा है उसको देखते हुए हम कहना पड़ना है कि आधुनिक काव्य-कान बहुत ज़ीरो तक रहेगा, क्या कि वह मानवा जीवन के ऐसे ऐसे अमरतत्त्वों से सजीवित हो उठा है जो हमें नित्य उसके प्रति (उस तत्त्व के प्रति) सयनिष्ठ और श्रद्धायुक्त बनाये रखता है। हम जीवन के प्रति अधिकाधिक पामाणिक होत जा रहे हैं। हमारी कल्पना हमें नीलगगन के अथाह शून्य में भटकती नहीं बरन् जीवन की उसके यथार्थ स्वरूप में ग्रहण कराते हुए उस ओर उठा ले जाती है।

एक दृष्टि में देखा जाए तो प्रवाद पत-महादेवी का बाल समाप्त हो चुका है। उनकी कल्पनाशक्ति और भावनाओं की गूढात्मा श्यामि वार्ते में घेरे घेरे स पुरानी हो गई है।

गुप्तजी अब शांत है और पुराने ढर्रे के कवि प्राचीन हो चुके हैं। आजकल हम एस कवियों की ज़रूरत महसूस होती है जो मानवा जीवन की एरता के साथ ही उसके विविध से भी अत्यंत निकटता में परिचित हो जो विविध का हवा में उड़ाकर जग्य एनना के जावाग में मुक्त न करें, किन्तु विविध के सघनात्मक समग्र से उत्पन्न मानवी मनोभावा की उत्कटता में जपन का तान करने हुए उसी एनना के जग्य करावें, अर्थात् वह मानवता के अधिक निकट रहे।

य न प्रवाद महादेवी का सौन्दर्य-जगत और उनकी मूल्य-मता तत्कालीन ब्रज भाषा की स्थूल सौन्दर्य-जन कविता की इष्ट प्रतिप्रिया थी। भारतीय साम्प्रतिक नवजागरण के प्रभाव से हिन्दी कविता नवीन शक्तियों में व्यक्तिकरण के नये ढंग के साथ प्राचीन दार्शनिक आत्मा को नवोत्प्लुत सौन्दर्य-दृष्टि से पहचानने हुए अधिक जालरिक्त होकर आधुनिक हो गई थी।

किन्तु फिर भी वह अपने का प्राचीन से मुक्त न कर सकी। वह अधिक स्वप्नशील थी और नीहारवन चरम मलय के पीछे स्वयं नीहारमय हो

गई थी। जीवन की यथाथता से स्वतंत्र होकर, एकांत म बला-साधक हाकर विश्व के साथ तमयत्व प्राप्त करना ही कविया का आत्मा हो गया। मानवी जीवन की ओर उनकी पहुँच कल्पना द्वारा हान मे उमके कल्याण की तडप के अभाव म, उहाने प्राचीन दार्शनिक जादग की सहायता लेकर कविता की। अलौकिक की जोर उनकी कल्पना का प्रयास लौकिक की उपेक्षा पर खडा था।

जवान ममय की आवाज उनके काना परन पहुँची। हिंदुस्तान की विस्तरण शील आत्मा को बुलाकर अपना एकाकी माग तय करना उहान अपना धम ममभा जोर अपन Superior ego की माया म स्वय का जगत् से अलग रखा।

मानवी मस्तिष्क की गति प्रतिश्रियाशील ह। छायावादी धूमिलता जोर जीवन का जोर कल्पना द्वारा पहुँच की भी प्रतिश्रिया शुरू है। पनस्वरूप 'नवीन', 'नपानी बच्चन', 'दिनकर' अनेय' इत्यादि कवि एक पवित्र म सडे हैं। नय कुछ एक जम प्रभाकर माचव वगरह, अपनी निश्चित शिक्षा लिय धीरे धीर श्रेणी म जा रह हैं।

नवीन' नय जोर पुरान दोना हैं। किंतु उनकी कविता की आत्मा की गति अत्याधुनिक ही ह। उनके प्रेम-गीत धूमिल शित्तज गीत की दूरागत अस्पष्टता स जलग हैं। जीवन के प्रति उनकी पहुँच अधिक मूत है अर्थात् कल्पना द्वारा प्रिय वस्तु को छायारूप-अपरम्पार न मानकर, उसे अपने दिल का आधार, अपने जीवन म हान वाले बई अनुभवा का कारण अर्थात् मनुष्य मानना ह। नवीन की प्रवृत्ति यथाथवाणी है। समय संस्कृति प्राप्त कर उहान भारतीय प्राति के गीत गाय।

जाज पान देत ही दत छलका नयनों म पानी।

दख तुम्हारी यह आकुलता मरी मति गति अबुलानी ॥

'दिनकर' नवीन' से कुछ अधिक चित्रकार है। प्राभीण या अय चित्रा के द्वारा ही उहान अपनी भावनाजा को प्रकट किया अर्थात् उनकी कायात्मान जीवन क कुछ विस्तृत कोना तक छू लिया। भारत क चित्र ही हम भारत स बद्ध करायेंगे। 'दिनकर' की न बवल प्रवृत्ति यथाथवाणी है परंतु कला भी वही ह। वीर-द्रुमाग भी इस सौंदर्यगत यथाथवाद मे जलग नहीं। के वास्तव म सौन्दर्य चित्रा मे ही जरूप भावना-लाक म परिभ्रमण कर रह हैं अर्थात् अत्याधुनिक कान क कविया न वास्तव की उपक्षा न की। नेपाली' की कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ह। 'जनय' भारत की विकसनशील मस्ति के मुख्य अगम स एक अग अर्थात् कमण्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिंदुस्तान की बलवान आत्मा यदि दान, कविता, विज्ञान की उपलब्धि के लिए पोषक समझनी ह तो कम को भी वह महत्व देती ह। आधुनिक सांस्कृतिक उत्थान के लिए कम भी उतना ही

अपरिहाय ह जितना कि बौद्धिक और भावात्मक पक्ष। सम्पूर्ण विवास को दृष्टि म रखने हुए हम 'जनय' की तेजस्विता सुन्दर परिणाम क लिए सहायक प्रतीत होती ह।

आधुनिक भारतीय जीवन विश्व-जीवन के भवोरा स सवेदित ह। राग नीतिक जागरण मासृतिक उत्थान का केवल एक पक्ष ह। आधुनिक भारतीय अपने आपको अन्य शीघ्र लोका म विलकुल भिन्न नहीं पाता। क्या बौद्धिक और क्या भावनात्मक पक्ष म हम गल बन्सवध शोधनहोर नीता बट हगत फिस्टे गमिग माकम प्रोपाकिक जनातो न फ्रास रोम्पारोला मेरिडिय हार्डी लम्ब स्टीहसन यीटस टगोर गाधी टाल्मटाय सयाम कालिदास स अलग अनुभव नहीं करत। हमने इही लोका से बहूत-बुछ स्वीकार किया है। विश्व-साहित्य इतना विस्तृत और अपार ह कि मानवी व्यक्तिकरण को कनात्मकता और उसक अध्यात्म की गहराई पर आन दाख्य होना ह। हि दुस्तान भी विश्व की ससृति का उत्तराधिकारी है। उसकी ससृति इसलिए विश्वात्मक होना चाह रही ह। हम प्रगति की ओर यत्नशील हैं। स्वभावत मानवीय जात्मा प्रगतिशील हानी है। हमारे पूर्वगामी कविगण का भी हमारी उन्नति म काफी हाथ ह। हम उनके कथो पर खड होतर विश्व देख रह हैं।

मैं आपस पहन कह चुका हूँ कि अत्याधुनिक वायधारा वास्तव को अत्यंत सानुभूति स देखनी है। लेकिन इसस यह समझना चाहिए कि वह गद्यात्मक (Prosaic) है। नही बान इसस विलकुल उल्टी ह। वह जयत मानवी ह। पत्र प्रमाण बमा का रोमांटिक युग समाप्त नहीं ह बवन उसकी निशा म् थोना सा परिवतन ह।

बच्चन' का निशा निमग्रण' अत्याधुनिक इगलित ह कि उगम जिानी उत्तमता म यथाव क प्रति भावनात्मक रिशत का निरूपन करया गया ह क साहित्य-साहित्य जगत म दुनभ ह। गात्रनाआ क लिए अत बरण और उगवी कल्पनात्ति वत्तिया ही काफी नहा ह बल्कि स्व-ब्राह्म समार और ग्रावी निज पर प्रतिप्रियाओं की सपर्यात्मक भिन्नता का विस्तृत और अधिक उन्नत जन करण म परिवतन कर देना इष्ट ह। यथाथवा का यही महत्त्व ह। फिर अपन स्व म और स्व-ब्राह्म जगत म वाड जनर नहीं र्ण जाना। बच्चन क निग स्व-ब्राह्म यन्तना म अधिक्त महत्वपूर्ण हैं। रमान कपना का आग्य न नर— निचार या तर को मा त्यागकर बच्चन की भावनाए बाह्य का आमगान करना चानी है। यथाथवा का आध्यात्मिक अप यही है और साहित्य यथाथवा नरन जीवन क प्रति अधिक उन्नत र्ण हैं।

बच्चन अपनी उन्नतता म कुछ अगा म जय गिरत हैं नव द्म साध्यात्मिक परातन उनर निग बुर अपय म अपना कुछ साधता है। जय विचार या तर

को नलाक देकर, कल्पना को रगीनपन में त्राज जाकर जम-तुष्ट भावनाएँ मत्ताप के लिए जामलीन होने के बजाय राहर दौड़ती फिरती हैं, तब निवा भाग्यवाद के कोई वाद आश्रय नहीं दे सकता। मैं एक जगह वही लिखा है—

‘मनुष्य साधारणतः मास के ऊपरी महत्तर पर रहता है। उमकी विविध इच्छाएँ अभिमान बौद्धिक पान भी इसी छिछल पानी में पनपन में उस बाह्य की ओर ले जाते हैं। बाह्य जगत् में मत्ताप नाम की चीज नहीं मिल सकती। अपन अन्तर मुख टटोलन के बजाय जब मानवी मन बाहर भटकता फिरता है तब निवा भाग्यवाद और निराशावाद के और दूरवा वाद आश्रय नहीं दे सकता, क्याकि आशावाद का दूरवा नाम है ‘आमचन’। मेरा दृष्टिकोण स्पष्ट है। बच्चन के भाग्यवाद में जात्मोन्नति का कोई सम्बन्ध नहीं। तारण बच्चन पतन-उत्थान में विश्वास कम रखते हैं। उनके लिए सब मानवी उत्तकरण समान है। इसलिए उनके साहित्य में जात्मा का प्रश्न ही नहीं उठता। उनके साहित्य की उपज आत्म चैतन्य (self consciousness) में नहीं है।

स्वातन्त्र्य और बाह्य जगत् की विरोधी स्थिति से उठकर उन दोनों की साम्यावस्था से जनित जो व्यापक दृष्टिकोण है वह यथायथा की जात्मा है। यथायथा की कला उस विरोधी स्थिति को मिटाने का प्रयत्न है जिसको मैं आध्यात्मिक कहता हूँ। यही जब किञ्चित् विकृत हो जाती है अर्थात् जब मानवी मन बाह्य का उसके स्वरूप में न लेकर अपनी संकुचित भावनाओं को उस पर बाधना चाहता है तब जसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ मनुष्य भाग्यवादी बनता है। कहने का कारण यह है कि भाग्यवाद मनुष्य की भावनाओं के विकार से उत्पन्न है। किन्तु बच्चन के साथ यनी विकार उनका कुछ उपकार भी कर गया। जब बच्चन की अतार्किक, कल्पना विगत, भावनापूर्ण दृष्टि ने बाह्य को देखा तब गुण मिटनेवाला शेषा जीर दुःख अगाध देखा। सगर की इस स्थिति से उनका कवि हृदय व्यापक हो गया। दुस्त्रियो के प्रति सहानुभूति की गहराई जिनकी अधिक मुझे बच्चन में लिखलाई दी उतनी मुझे खेद है छायावादी न लिखला सकते। वास्तव में ससार के दुःख के असाध्य रोग ने बच्चन के हृदय का अत्यन्त व्यापक और उदार बना लिया। ‘निशा निमग्नण’ इस दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर काव्य है। अपने दुःख में पीड़ित हाकर बच्चन ने ससार के दुःख के दगन किये। उनकी प्रिय पत्नी के निधन ने उनके हृदय का नयी आँखें दी। आइस्ट की जगत् के प्रति करणामयता की तुलना ‘बच्चन’ की इस आदरता से की जा सकती है।

बच्चन का भाग्यवाद भावना-त्रय है तब जय नहीं। उनकी किनामपी के लिए उनका हृदय टटाला जाएगा। महादवी बर्मा के आँसू हमारे हृदय का कला नहीं सकते, किन्तु ‘बच्चन’ का निशा निमग्नण पन्ते समय बरबस आँखें तब

हा जाती है कारण यह कि महादेवी वर्मा ने दुस्ववाद का धम (Cult) बना लिया जो उनकी कल्पना से उत्पन्न है। इसके विपरीत 'वचन' स्वयं रोया है तब तब वह दूसरा को हला सका।

वचन का वास्तव वाद अत्यंत मानवीय है। उसमें हमारा दिल हिला देने की शक्ति है। भावनात्मक दृष्टि से जीवन का मूल्य पहचानने का यह प्रयास है। अत्याधुनिक काल की प्रमुख धारा का इससे अधिक सुंदर दशन आपको और कहीं नहीं हो सकता।

यही वास्तव वाद दूसरे स्वरूप में आपको अन्य कवियों में मिलेगा। नवीन में वह ओज और स्फूर्ति से युक्त मिलेगा 'अनेक' में कम की जयक तानत के स्वरूप में और 'निर्जर' में कभी कभी वेवसी और कभी युद्ध भावावेग के स्वरूप में मिलताई दगा।

हमारा प्रयत्न जीवन को उमक विविध और समग्र रूप में एक ही गाय लकर मानवी-आत्मा को दिशा निर्देश करने में होना चाहिए। ऐसा कवि मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा उन्नायक होगा। पर अभी हमने पाया बहुत कम है। प्राउनिंग कहता है—

Grow old along with me
The best is yet to be
The last of life for which the first was made

प्रश्न यह है कि आखिर रचना क्यों ?

प्रश्न यह है कि आखिर रचना प्रक्रिया में इतनी दिलचस्पी क्यों ? मेरे खयाल से इसका एक उत्तर तो यह है कि उसके अंततत्त्वों के विश्लेषण से सौंदर्य-सम्बन्धी किसी सामान्य सिद्धांत पर आया जा सकता है। दूसरे भी उत्तर हो सकते हैं। उदाहरणतः जीवन के विस्तृत क्षेत्र को साहित्य में लाने के लिए अर्थात् उनके प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करने के लिए हम प्रभावोत्पादकता के रहस्य को समझें। इसके अतिरिक्त और भी उत्तर हो सकते हैं जैसे—अपनी विनोद काव्य प्रवृत्ति का औचित्य सिद्ध करने के लिए रचना प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाए।

कोई भी देश व्यक्ति या प्रवृत्ति अपने-अपने इतिहास से जुड़ा नहीं हो सकती। हिन्दी में रचना प्रक्रिया का जो विश्लेषण शुरू हुआ वह मुख्यतः नयी कविता को (या कहिये नई काव्य प्रवृत्तियों) ध्यान में रखकर ही। कभी जाधु निक्ता के नाम पर तो कभी सौंदर्य के नाम पर, यह काम हाथ में लिया गया। किंतु रचना प्रक्रिया का कोई तत्परक (ऑब्जेक्टिव) विश्लेषण सामन नहीं आया। विश्लेषक का सबेदनात्मक उद्देश्य रचना प्रक्रिया का कोई तत्परक अवयव-मम अवयव करना विश्लेषण करना नहीं था, बल्कि एक विनोद प्रवृत्ति की स्थापना करना रहे आया। परिणाम यह हुआ कि ऐसे प्रयत्न से सम्भवतः, काव्य-क्षेत्र को बला क्षेत्र का विशेष लाभ नहीं हुआ। दूसरे शब्दों में, जीवन के सुविस्तृत विविध और मूलभूत एवता के कोई विशिष्ट और सबेदनात्मक चिन्मूण का भाग ऐसे विश्लेषण ने प्रस्तुत नहीं किया। रचनात्मक प्रक्रिया के विश्लेषण में यदि सृजन और साहित्य का भाग अधिकाधिक प्रशस्त हो तो कहना ही क्या है।

रचना प्रक्रिया का उत्परक विश्लेषण मेरे खयाल से अत्यंत कठिन है दुष्कर है। इसके कई कारण हैं एक तो यह है कि रचना प्रक्रिया एक नहीं जनक है विविध है, और उनकी विभिन्नता अत्यधिक है। रचना प्रक्रिया सृजन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। कवि-स्वभाव कवि-दृष्टि और विषय-वस्तु (या बहिर्गत तथ्य) के अनुसार वह बनती-बनती है।

प्रगतिशील काव्य की दृष्टि के विराध म, अथवा उसकी प्रतिकूल स्थिति म नयी काव्य प्रवृत्ति म प्रकट स्व' के महत्व को स्थापित करने के लिए रचना प्रक्रिया की स्वात्मकता को उठाकर उभारदार बनाने के लिए जिससे कि अन्य जना का ध्यान उसकी स्वात्मकता पर खींचे रचना प्रक्रिया के विशेषण की ओर प्रवृत्ति हुई। किन्तु जाग चलकर ज्याही प्रगतिशील पटन और प्रवृत्तिशील होकर निराहित हान लगी रचना प्रक्रिया के वास्तविक विशेषण से विमुक्त होन लगी। यह विमुक्तता लाभकर नहीं हानियर ह।

उत्तका कारण ह। रचना प्रक्रिया पर प्रकाश पडत ही हमार सामन कई समस्याएँ और कतय छडे हो जात हैं। कोई कवि अच्छा या बुरा नहीं हाता वह कवि या कवि ही हो सकता ह अर्थात् उसम चतना या जडता हो सकती ह। एक विषय रूप-स्वरूप और प्रवृत्ति स पूण जो चतना है वह कवि की चेतना ह।

इम बात को हम यो कहूँगे। कवि की मनोवैज्ञानिक स्थिति और स्तर, जो उसका काव्य म प्रकट होना ह कसा ह ? किस प्रकार का ह ? प्रभावशील काव्य के मन्तोपन पर या या कटिए कि सतही प्रगतिशील काव्य पर विचार करत समय उगव मनोवैज्ञानिक स्तर और स्थिति को देखा गया। आज भी रचना प्रक्रिया पर विचार करत समय हम नई कविता के सन्तोपन पर या या कटिए कि मता। नई कविता पर प्रकाश डालकर इम बात पर साचना हागा कि क्या रिया जाय किम नई कविता जीवन के सुविस्मृत क्षण के विविध रंग से दीपित हाकर एत और बरिष्णपूण जीवन-क्षणका प्रतिनिधित्व कर सक, ता दूररी जार स्वात्मकता के घर और भर रंग उमम स्थित मनें।

दूसरा तम प्रश्न यह है कि जो है उत्तका जीवन मानकर उगका जाधुनिर ककर ता चारिए इमकी भावना का निरस्तृत करें उस मन्म जोन मान तात रे या क्या ?

एत बात का तम दूसरा मन्म कटग। क्या हम कए कि नई कविता कवल मानसिक तित्तु तीव्रमवन्तामम प्रतिनिधिता ह क्षण विशेषण प्रतिनिधिता—और उम थगा जाना ता तात ए नगा तो कए नई कविता नहीं ह अथवा बह ऐसी काव्य प्रवृत्ति ह किमम टातन परमनिकी स्तरवन्ड ह (मन्मपूण व्यक्तिगत मन्मिन्ति है) जोर फिर कए मन्मपूण व्यक्तिगत विंग प्रकार म मन्मिन्ति ह अथवा विंग प्रकार म उम मन्मिन्ति हाता चारिए ?

निःसंदह कृति की जालोचना अथवा कृति का प्रभाव ग्रहण, कवि के व्यक्तित्व का भी प्रभाव ग्रहण है ।

इसी बात का हम दूसरे शब्दों में कहेंगे । क्या हम यह कहें कि नई कविता बसल गद्य भाषावित, मानसिक किन्तु तीव्र संवेदनात्मक प्रतिप्रिया है या उसमें 'सम्पूर्ण 'व्यक्तित्व' (टोटल पर्सनलिटी) लिपटी हुई (इनबाल्ड) होनी चाहिए ? यह नहीं है कि टोटल पर्सनलिटी जैसे शब्दों की व्याख्या के लिए फिर प्रश्न पूछे जाएंगे लेकिन मतलब साफ है ।

प्रगतिशीलता और यातनाग्रस्त मानवता

इस नयी काज म कही ओर कीमे हुआ यह कहना मुशिन है। भूगभ शास्त्रिया का मन है कि इस हिमयुग म (पह शायत चौथा हिमयुग है) हजारो माना स एकत्र प्राचीन हिम-गण्डा का भार जब अधिकाधिक असतुलित होने लगा, तब एकाएक उनक कुछ हिस्सा अपनी-अपनी जगहा पर हिलने लग। ज्या ज्या भार बरना गया त्वा-त्या हिम-गण्डा क पर उगडत गए और आधिर बह समस भी जाया जब वे हिम नही या स्वगियम बनकर अनेका महागरिलाआ क आदि गान बन बड।

नहियाँ हमार सामन हैं। उनका मूलगान अमुक हिमनही है यन कहना मुशिन है। किन्तु यन पक्की बात है कि उनका आदि—हिम यन पुरगा है।

यह आदि हिम क्या है इसका पना नया है एमी बात रगी। रात्र की जि रगी म यी शुरु हम सिघार्द नव है वा महाभारत कात म य। नंतर दारा ही है कि मुग्दाग क प्रागम म आपुनिक कोरव और पाण्डव—गाता तारीम वा र है। माना य म आदि रर उद्देश्या और स्वभारों क भन क माय हा माय एक बात गामाय है और यन म है कि ममात्र की ह्यामराचीन गियवि और ध्यनितर का

हमारा साला के महाभारत में और आज के महाभारत में उतना ही अंतर है जितना कि प्रथम हिमयुग और चौथे हिमयुग के बीच। भूगर्भशास्त्रिया का कहना है कि अति प्राचीनकाल में सिंधु, सतलज सरस्वती, यमुना और गंगा एक ही घाटी में बहती थी यानी उस काल में भौगोलिक स्थिति कुछ दूसरी ही थी और य विभिन्न नदियाँ न थी वरन् एक ही सरिता थी जो पश्चिम से पूव की ओर बहती थी। आज उन प्राचीन स्थिति को सूचित करने वाली सिर्फ पुरानी घाटी के शिला प्रमार हैं जो आज भी सिंधु की तलहटी से चलकर गंगा के मुहाने तक घाटी के चिह्नों के रूप में विराजमान हैं और भूगर्भशास्त्रिया के मान के उपकरण बने हुए हैं। तात्पर्य यह कि जल के मूलतत्त्वा में परिवर्तन न होने हुए भी, वर्तमान नदिया की दिशाओं में परिवर्तन हो गया है। परिवर्तित दिशा काण वाली इन नदिया का महत्त्व कौन न स्वीकारेगा जबकि आज उनका मधुर जन पीकर प्रगल्भ सम्य शक्तियाँ स्वयं का पुष्ट करती जा रही हैं और जिनके तट पर से बहती हुई हवा अनेक मानसिक और शारीरिक व्याधियों की रूपा बन बठी हैं।

यह दिशा परिवर्तन बौद्धिक मत्स्य की अपथा जीवन का एक जीता जागता तथ्य है। यह अलग बात है कि कुछ लोग इस तथ्य का पौराणिक विश्लेषण करें और कुछ लोग वनानिक। हर समय, हर युग में एसी शक्तियाँ रही हैं जो पहले 'नवीन का विरोध करती हैं किन्तु जब वे उन नवीन को वल नहीं सक्ती तो उनकी इस प्रवार से व्याख्या करती हैं कि जिससे वह 'नवीन पुरातन का जारज मानसिक पुत्र बनकर उनके घर सेवा चाकरी करता रहे। नवीन मत्स्या के जाधु निक पौराणिक व्याख्याकार हमारे बीच में अनगिनत हैं और यह पर्याप्त सम्भव है कि नये साहित्यिक युवक सामाजिक और साहित्यिक महत्त्व प्राप्ति की खाज में पुराणप्रथिया के दत्तक पुत्र बनने में ही अपना अन्तोभाष्य ममज्ञें।

आज का युग ही एसा है कि पुराणप्रथिया में से बहुतरो ने अपना अपना जामा बदल दिया है अपने मृत्युपर और अदाज भी बदल दिए हैं। पुराणप्रथी से हमारा तात्पर्य उन सभी मजना में है जिनका मौजय जनता की बौद्धिक सामाजिक शानतिक मुक्ति के जाने आना है। जनता शब्द के प्रयोग से घररान की जन्म नगी (यद्यपि तरह-तरह के अवमन्वादिया द्वारा इस शब्द का खूब दुस्प्रयोग किया गया है) मध्यवर्ग के गरीब बुद्धिजीवी लोग भी जनता में शामिल हैं याने कि वे समाज की धलीशाही ममृति के भागू न बनें। हा मक्ता है कि शरीर बुद्धिजीवी और लेखक मटका हुआ है किन्तु उनकी स्वयं की स्थिति काइ उमन छीन नगी नता। और जामतीर पर उनकी स्थिति ही एसी है कि यह जनता जनता में है। चणैयाम का वह पन्—

गुनह मानुष भाई
शावार ऊपर मानुष मत्स्य

साह्यार ऊपर गई

जिग मनुष्य-मत्य की घोषणा करना है उगना मून अधिपान जनता म है । इग जाता वा जीना स आसन कर्क देशभक्ति तही हो मकती ।

मय तो यह है कि स्वयं क मनाभावा की कविता प्रत्यक्ष व्यक्ति की हान म जा विरोधी तही हा जानी यशतें कि ये मनोभाय जनता क बीच म रक्कर स्वाभाविक हूए हा । जन-मन की मय-माधारण मन स्थिति व्यक्ति वा मनोपनाआ द्वारा प्रवट हा तो फिर क्या कटना । य मनाभाय ती गरीब यगों की साधारण मनस्थिति क ही घोषक है । अपनी धिक्की हुई महनन ये-महाग जिन्गी की आका क्षाएँ सामाजिक उन्नतना म हान वा मानमिक तनाव स्थिति-परिस्थिति की प्रिया प्रतिप्रियात्मक सम्बेदनाएँ आत्मी को अपन म सम्मिलित करन वाला विचार कटना मडन जय लाक-मुक्ति की नयी प्राति तवारी विचारधारा स जीर भी मशकत जीर भी मम्बेदनमय हो जाता है तय जिस साहित्य का आविर्भाव होता है उसम महान् मनुष्य सत्य होता है । इस मनुष्य-मत्य का अनात्न करन वाल साधारण रूप म दो परम्पर विरोधी क्षत्रा म आत हैं । एक क जो मात्र प्राति तवारी शब्दा का गार मडा करन वाला क हिमायती क रूप म अपन मिद्धता की यात्रिक चौखट तयार रपत हैं —जा उसम फिट हो जाए वह प्रगतिशील और जो उसम कमा न जा सक वह प्रगति विरोधी—य उनका प्रत्यक्ष पराक्ष प्रस्तुत और अप्रस्तुत मुगर जीर मापनीय निणय होने है । य लोग गरीब मध्यवग क जीवन क तत्त्वा से दूर आग-वसग हात है । भल ही य लोग शास्त्रिक रूप स गरीबा के कितन ही हिमायती गया न हा इनका व्यक्तित्व स्वयं आत्म-बद्ध जह प्रस्त महत्त्वावाक्षाआ का शिक्वार और रागद्वप की बहुमुपी प्रवृत्तियो स निपीडित होता है बोध हीन बौद्धिकता का शिक्वार यह वग जिस सबेदनमय कविता की आलोचना करता है उनकी सबेदनाआ की मूल आधार भूमि को वह हृदयगम नहीं कर सकता ।

हमार गरीब मध्यवर्गीय सचेत युवका क कष्टा का इतिहास केवल ता-कालिक यक्तिगत जायिक कारणों से ही नहीं है करन वग क अनेक रूप पुराणपथी सस्कारा जीर अविचारा स सघष की खताल वेदनाओ म जाच्छेन है । अपनी सामाजिक पतिष्ठा की आराम कुरसी पर बठे हुए ये मसीहा निणय द सकते हैं लकिन नवयुवक-नयक का बाह पकड रर सहारा नहीं दे सकते उसकी कायी मुक्ती मनोदशाआ को नहीं समथ सकत । उसके व्यक्त-कष्टो म उह कोई मनुष्य-मत्य नहीं प्रियायी देता । वे तो इस कविता का अपना प्रमाण पत्र देंग जिसम उनकी अभिरुचि की जिद पूरी होती हा । यही कारण है कि सौ प्रगति शील शब्दा पर अधिकार करके कोई भी टट-मूजिया लेखक 'इसकस' जसी मास्त्रुतिक पत्रिका क किसी लेख म अपन नाम को प्रकाशितपात है । असलियत

यह है कि य आलाचक गण उस जीवन भूमि को ही नहीं समझत (अथवा उनमें इतनी संवेदन-शक्तता नहीं है कि वे समझ सकें) जिसमें गरीब नवयुवक-रागव की प्रतिभा का जन्म हुआ है। इसलिए य लाग व्यवहार और विचार में भद्र रग्न वाले लोग की प्रतिष्ठा में चार चीजें लगाने ह या फिर ऐसे लोग को ही 'प्रगतिवादी' समझने है जो उनकी राजनतिक शक्तियों वाली परिभाषाओं का कविता करत ह। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि नवीन कष्ट ग्रस्त प्रतिभा की लेखन प्रोत्साहन और प्रेरणा के लिए उनकी तरफ नहीं देखा। इसलिए कि हमारे ये साहित्यिक नेता हृदय और बुद्धि के क्षेत्र में कठोर अहवादी हैं कष्ट ग्रस्त मनुष्य-जीवन के समर्थ होने के पहले वे आलाचक और मसीहा हैं। मनुष्य-जीवन के भव्य संवेदना-मत्ता के प्रति उनमें आवश्यक नम्रता भी नहीं है। त इतनी आस्था है कि वे य मानें कि युग-मत्त विभिन्न रूपा और विविध आलोका में विविध विचारा और भावनाओं में विलयित होकर आज की सघनशील मानवता के हृदय में अधिष्ठित है। इस आस्था हीनता के कारण ही, उनके द्वारा समर्थित कविता सम्पूर्ण मनुष्य की गौरवपूर्ण नीतिमता सर्वांगीण मानवी पक्षों का भव्य दृश्य, सुकुमार भावनाओं की मनुष्योचित गरिमा दिखायी नहीं देती बरन् पिटी पिटाई का तकारिता का सभामन्त्री आत्म प्रदर्शन दिखायी देता है।

कहने का तात्पर्य किसी व्यक्ति को नीचे दिखाना नहीं है अथवा हिन्दी में प्रगतिशील जा दोनन की महत्त्वपूर्ण सफलताओं का नजर-अन्दाज करना भी नहीं है। इन सफलताओं का एक महत्त्वपूर्ण कारण य नेता भी हैं इसमें कोई शक नहीं। और जो लोग उनका प्रति राग-द्वेष की जहूँ ग्रस्त भावना से आश्रमण करने हैं उनके प्रधान निन्दका में से हम स्वयं ह। किन्तु यह भी निश्चित है कि इस नतत्व की कमजारी न हिन्दी के वास्तविक प्रगतिशील साहित्य के और जागृक विद्रोह में बाधा उपस्थित की है और उनका व्यक्तिगत दुराग्रहान (जिस पर मार्क्सवाद का मुलम्मा चलाया जाता है) उसका गला घाटन में कोई कसर नहीं रखी है। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता अधिक उत्पत्ति न कर सकी और विपक्षियों का यह कहन का मौका मिला कि प्रगतिशील कविता मर गयी है कि उसका युग समाप्त हो गया है। जसमें यह है कि अत्यन्त मजबूत प्रगतिशील कविता का ज म मैं अपनी इन आँखों से इन्ही दिना मध्यप्रदर्शन में हागे देखा है। मजा यह है कि उसका जनक वही कष्ट ग्रस्त मनुष्यता है जिसकी चारा ओर में उपेक्षा है। मह बात बिलकुल अलग है कि इस प्रगतिशील कविता का रूप जलम जलम ह। मानव-जीवन विविधता के अनुसार है उसके विविध रूप आर विविध गुण ह। विविध विषय विविध कल्पनाएँ और विविध ऊँचाइयाँ ह। यह ठीक है कि इस नयी पौध में से उहुतेरा में हाथ की मफाई और बात की मफाई अभी नहीं आयी हैं।

नवीन कष्ट ग्रस्त प्रतिभा का विराध एक दूसरे क्षेत्र से भी होता है। इस क्षेत्र के प्रतिनिधि कष्ट ग्रस्त जीवन के कारण कवि में उत्पन्न हुई जनमुखता का उपयोग अपने लिए करना चाहते हैं। वे उम्र अतिसुखता के मूल उद्देश्य के त्रातिकारी अभिप्रायों का दवाकर उस अतिसुखता को इस प्रकार से प्रोत्साहन देते हैं कि वह जनमुखता अपने प्रधान विद्रोह से छूट कर जलजल हट जाय। जनमुखता में वे व्यक्ति को ही प्रधान मानकर उम्र व्यक्ति को प्रगतिशील सामाजिक शक्तियाँ में जनग हटाते हुए व्यक्ति-स्वातंत्र्य की जड़ की घोषणा करते हैं। वस्तुतः यह जन उनका है जिन्होंने या तो अपनी जड़ें कष्ट ग्रस्त मानवता की धरती में बतती हुई देसी नहीं है या वे जड़ें ही नहीं। असलियत यह है कि जिस मन की जन मुखता जन मन की भावनाओं में भीगी हुई है उसका क्षोभा और द्रोह में सबन हुई है पीड़ित मानवता का ममथ वह हृदय जनता से छिटक कर व्यक्ति स्वातंत्र्य और जन के काफ़े-हाउस में योरोपीय और भारतीय संस्कृति की गण्य नहीं लडा सकता। जाराम पसंद अध-सामंती उच्च मध्यवर्ग की लानसाया में जकड़े हुआ न उस लालमा का अध्यात्मीकरण किया है। उनकी महत्वाकांक्षा वतमान समाज में शासन करने की है—अपने विचारों द्वारा और अपनी भावनाओं द्वारा। ध्यान में रखने की बात है कि आज उच्च मध्यवर्ग और गरीब निम्न मध्यवर्ग में खाई गड़ी हुई है भेद की दीवार सड़ी हुई है।

हमारे गरीब मध्यवर्गीय युवक को इन नखरों से सावधान रहना होगा। अपनी कविता की पुष्टि के लिए उस अपने मूल उद्देश्य की स्थिति-परिस्थितिगत स्थान का पता लगाना होगा और उन परिस्थितियों को दूर करने के लिए उस सही और निर्णायक कदम चलाने होंगे उस अपने माता पिता की याद करनी होगी जिन्होंने शक्ति दी किन्तु सुख नहीं दिया। अपने कष्टग्रस्त माता पिता भाई-बहन सगी-भायियाँ के सजल आंतरिक आशीर्वाद में पुष्ट इस गरीब मध्यवर्गीय कविता का प्रधान सेंटिमेंट जनताधिक ही रहना चाह उसका विषय शृंगार ही क्या न हो। उमका शृंगार गीत-भाविक हयून रामायण जादि का शृंगार नहीं होगा बरन होरी और धनिया तथा सिलिया का शृंगार होगा। उमकी कर्णा ल्या और प्रेम में यही नावजनिक मानवायता काम करगी। पयकशायी अध्यात्म की जनमुखता में बजाय उममें मूर और मीरा की नमयता और कबीर का फनडपन होगा।

जनता का साहित्य किसे कहते हैं ?

जिन्दगी के दौरान मैं जो तजुबों हासिल हूँ उनसे नमीहें लेना का सबकुछ तो हमारे यहाँ सकुड़ा बर पनाया गया है। होशियार और बबकूफ मैं सब बताते हुए एक बहुत बड़ विचारक ने यह कहा 'गलतियाँ सब करने हैं लेकिन हाशियार वह है जो कम से कम गलतियाँ करे और गलती कहा हुई यह जान ले और यह सावधानी बरत कि कही बसी गलती तो फिर नहीं हो रही है।' जो जादमी अपनी गलतियाँ से पक्षपात करता है उसका जिमाग माफ नहीं रह सकता।

गलतियाँ के पीछे एक मनोविज्ञान होता है। या यूँ कहिए कि गलतियों का स्वयं एक अपना मनोविज्ञान है। तजुबों में नसीहतें नेत बकल अपने गलतियाँ वाले मनाविज्ञान के कुहरे को भेजना पड़ता है। जो जितना भेदेगा, उतना पाएगा। लेकिन पाने की यह जो प्रक्रिया है वह हम कुछ सिद्धान्तों के बिना तन ले जानी है कुछ सामायीकरण को जन्म देती है। याना तजुबों की कोश में सिद्धान्तों का जन्म होता है।

मैं अपने तजुबों में कौन सा निष्कर्ष निकालूँ यह एक सवाल है और तजुबों यह है।

एक उमाही मज्जन को जे मैंने यह कहा कि फना पार्टी छईयतान गानी वापस पर इननी शेर में बरा बकनव्य निकाल रही है। तो उसका जवाब दन हुए उहान यह कहा कि बकनव्य मैंने लिखा (व उम पार्टी के हैं) और पार्टी उम पाम करन जा रही है। आपका भी यह काम था कि आप उन बकनव्य का जल्दी में जल्दी लिपने और पाम करवा लेत।

मैंने हमका जवाब यह दिया कि वह मग काम नहीं है मेरे काम में हिम्मा बटान के लिए क्या के लोग जाने हैं। (मेरे काम में मेरा मतनव साहित्यिक काय में था) उतने उनका जवाब यह कह कर लिया कि यह आपका बकनव्य काय है और वह मामूहिक।

इसका यह मतनव हुआ कि साहित्य एक व्यक्तिगत काय है और राजनीति मामूहिक काय और मामूहिक काय में व्यक्तिगत स्वाथ की बाई महता नहीं।

लेकिन क्या यह सच है ? क्या कविकल्प मान व्यक्तिगत है ? क्या साहित्यक
 काय की मूल प्रेरणा जीर क्षेत्र गुद्ध व्यक्तिगत है ?
 मजेदार बात यह है कि साहित्य को मात्र व्यक्तिगत काय कह कर व्यक्ति
 गत उत्तरदायित्व पढ़ कर अपने हाथ भाड़ पाछ कर साफ करने वाल ठीक वे ही
 लोग है जो जनता के लिए साहित्य का नारा बुलंद करते हैं। ग उह यह
 मानूम नही कि जिन शास्त्र को व बार बार हुंरा रह है उनका मतलब क्या है।
 यह छोटी सी बात हमारे हि दुस्तान के पिछ्णपन को ही सूचित करती है।
 स्वतंत्र होने पर भी हमारा देश आर्थिक दृष्टि स अभी गुलाम है। औपनिवेशिक
 देश के बुद्धिजीवी निश्चित ही उतन ही पिछड़े हुए है जितना कि उनका जय
 तंत्र।

यूरोप म एक एक विचार की प्रस्थापना के लिए बड़ी बड़ी कुरवानियाँ देनी
 पडी हैं। लेकिन हि दुस्तान को पका पकाया मिल रहा है। लेकिन चूकि उसक
 पीछे स्पन उद्योग नही है इसलिए बहुत से विचार लज्जम नही हो पात। शरीर म
 उनका खून नही बन पाता। आखी म उनकी ली नही जल पाती। मस्तिष्क म
 उनका प्रकाश नही फल पाता। इसलिए विचारो म बचवानापन रहता है। जीर
 काय विचारो का अनुसरण नही कर पाते। यह बात हि दुस्तान के औपनिवेशिक
 रूप पर ही हमारी दृष्टि ल जाती है।

हम अपने मूल प्रश्न पर जाए। क्या साहित्य काय मात्र व्यक्तिगत काय है
 मात्र व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है ?

इसका जवाब यो है

१ साहित्य का सम्बध जापकी सस्विति स है जापकी भूख-प्यास स है
 मानसिक जीर सामाजिक। अतएव किमी प्रकार का भी आदशात्मिक साहित्य
 जनता से असम्बद्ध नही।

२ जनता का साहित्य का जय जनता को तुरंत ही समझ म आन वात
 साहित्य स हरगिज नही। अगर ऐसा होना ता विस्ता तोना मना जीर नौटकी ही
 साहित्य क प्रधान रूप होने। साहित्य के अन्दर सांस्कृतिक भाव होते है। सांस्कृ
 तिक भावा का ग्रहण करन के लिए बुनती यारीकी जीर पूर्वमूर्खी को पहचान
 क लिए उम असलियत का पान क लिए त्रिमका नकशा साहित्य म रहना है मुनन
 या पढा वात की कुछ स्थिति अपभित हानी है। वह स्थिति है उनकी शिक्षा
 उनक मन का सांस्कृतिक परिष्कार। साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक परिष्कार है
 मानसिक परिष्कार है। कि तु यह परिष्कार साहित्य क माध्यम द्वारा तभी सम्भव
 है जब मुनन बाल या पढ़न बाने की अवस्था स्वय निश्चित हा। यही कारण है कि
 मानक का डाग कपिटन लनिन क द्रय रोम्पाँ रोलाँ क टालम्याय जीर गोर्की
 के उपयाम एकत्रम जगिभिन और असंस्कृता क न समझ म ता मकत है न वे

उनके पत्रों के लिए होने ही है। 'जनता का साहित्य का जय जनता के लिए साहित्य में है' और वह जनता ऐसी हो जो शिक्षा और मस्कृति द्वारा कुछ स्टैंड प्राप्त कर चुकी हो। ध्यान रहे कि राजनीति के मूलग्रन्थ बहुत बार बुद्धिजीवियों के भी समझ में नहीं आते जनता का तो कहना ही क्या। लेकिन वे हमारी मास्कृतिक विरामत हैं। इस राजनीतिप्रिया के मूल भाव हमारी राजनीतिक पार्टियाँ और सामाजिक कार्यकर्ता अपना भाषणा और आसान जवान स लिगी कितनावा द्वारा प्रमाणित करते रहते हैं। चूंकि ऐसी ग्रन्थ जनता के एकदम समझ में नहीं आती (बहुत बार बुद्धिजीवियों की समझ में भी नहीं आते) इसलिए वे ग्रन्थ जनता के लिए नहीं यह समझना गलत है। अपना और शिक्षा में अपने उद्धार के लिए जनता का इस ग्रन्थ की ज़रूरत है। जो नाम जनता का साहित्य' स यत् मतलब अतः है कि वह साहित्य जनता के तुरंत समझ में आए जाना उनका मम पा सके यही उसकी पहली कसौटी है—वे लाग यह भूल जाते हैं कि जनता का पहले सुशिक्षित और सुसंस्कृत करना है। वह किताबाल अधकार में है। जनता का अज्ञान से उठाने के लिए हम पहले उसका शिक्षा देनी होगी। शिक्षित करने के लिए जैसे ग्रन्थों की आवश्यकता होगी वैसे ग्रन्थ निकाल जाएँगे और निकाले जान चाहिए—लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि उसका प्रारम्भिक शिक्षा देना बाल ग्रन्थ तो श्रेष्ठ है और सर्वोच्च शिक्षा देने वाले ग्रन्थ श्रेष्ठ नहीं हैं। ठीक यहाँ भेद साहित्य में भी है। कुछ साहित्य तो निश्चित ही प्रारम्भिक शिक्षा के अनुकूल होगा तो कुछ सर्वोच्च शिक्षा के लिए। प्रारम्भिक श्रेणी के लिए। उपयुक्त साहित्य तो साहित्य है और सर्वोच्च श्रेणी के लिए उपयुक्त साहित्य जनता का साहित्य नहीं है यह कहना जनता से गद्दारी करना है।

तो फिर जनता का साहित्य' का अर्थ क्या है ? जनता के साहित्य स अर्थ है ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन मूल्यों का जनता के जीवनानुशासनों को प्रतिष्ठा पित करना हो उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता है। इस मुक्तिपथ का अर्थ राजनीतिक मुक्ति में लगाकर अज्ञान से मुक्ति तक है। अतः इसमें प्रत्येक प्रकार का साहित्य सम्मिलित है बशर्ते कि वह मंचमुच उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करे।

जनता के मानसिक परिष्कार उनके जादस मनोरंजन से लगाकर तात्राति पथ पर मोड़ने वाला साहित्य मानवीय भावनाओं का उगाते बानावरण उपस्थित करने वाला साहित्य जनता का जीवन चित्रण करने वाला साहित्य मन को मानवीय और जन को जन-जन करनेवाला साहित्य—भाषण और सत्ता के धमड का चूर करनेवाले स्वातंत्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य—प्राकृतिक शोभा और स्नेह के सुकुमार दृश्यों वाला साहित्य—सभी प्रकार का साहित्य सम्मिलित है—अर्थात् कि वह मन को मानवीय जन को जन जन बना सके और जनता का मुक्तिपथ पर अग्रसर कर सके। साहित्य के सम्बन्ध में यही दृष्टिकोण जनता का

दृष्टिकोण है। फ्रांस के लुई एरगान द्वितीय विश्व युद्ध में जनता के बीच काम किया। जोर युद्ध समाप्ति पर रोमैटिक उपयोग किया। शाब्द उद्घोषण समय के दौरान में दुश्मता में लड़ते लड़ते रोमैटिक अनुभव भी हुए हैं। उन अनुभवों के आधार पर उन्होंने रोमैटिक उपयोग लिखे। किंतु तुरंत बाद ही वे ऐसे उपयोग के लिए जिम्मेदार अलावा एक रोमैटिक धारा के जनता के सघर्ष का सौन्दर्यात्मक चित्रण था। यही हास इत्यादि एहेरतवग आदि का है। उनका उपयोग स्टाम (तूफान—मका हिंसा में अनुवाद हो चुका है) भी जन-सघर्ष के दौरान का चित्रण करता है जिसे कई मानवचित्त रोमैटिक घटनाओं और उपयोग का संनिवेश है। उसी तरह साहित्यिक साहित्य के अन्तर्गत द्वितीय विश्व युद्ध के विशाल साहित्य चित्रण में मानवचित्त मुकुमार रोमैटिक कथाओं और प्राकृतिक सौन्दर्य दृश्यों का अंकन किया गया है।

जा जाति जा राष्ट्र जिनका ही स्वाधीन होता है यानी जहाँ की जनता शासन और ज्ञान में जितनी अज्ञानता तक मुक्ति प्राप्त कर चुकी होती है उतनी ही जहाँ तक वह सचिन् और सौन्दर्य तथा मानवता के समीप पहुँचनी हुई होती है। आज की दुनिया में जिस हद तक शोषण बना हुआ है जिस हद तक भ्रष्ट और व्याप्त बनी हुई है उसी हद तक मुक्ति-सघर्ष भी बढ़ा हुआ है और उसी हद तक दुर्द्धि तथा ह्रास की भ्रष्ट-व्याप्त भी बढ़ी हुई है।

आज के युग में साहित्य का यह काम है कि वह जनता के दुर्द्धि तथा ह्रास की इन भ्रष्ट-व्याप्त का निरोध करे और उसे मुक्तिपथ पर जयगम कराने के लिए लगी कथा का विकास कर जिसमें जनता प्रेरणा प्राप्त कर सके और जा स्वयं जात में प्रेरणा लगे। अतएव निरन्तर यह निरन्तर ही जनता के साहित्य के अन्तर्गत निरन्तर ही प्रकार के साहित्य नयी-नयी प्रेरणा के साहित्य है। यद्यपि अन्तर्गत है कि साहित्य में कभी-कभी जनता के अन्तर्गत एक दिग्गम पात्र का ही प्रभाव है—जिस परलौकिक साहित्य में किमान मजदूरी की बरिदा कर।

भय ही न जाए, किन्तु वह लखवा जोर जालाचरन के लिए जम्गी ह—वे लेखक आर वे आलाचक जो जनता के जीवनांशों और जीवा मूल्या को अपने सामने रखत है। यह वान एमे साहित्य क लिए भी सच ह जिमम मनोभावा के चित्रण म वारीकी स काम लिया गया ह और अयाधुनिक विचारधाराजा के अद्यतन रूप का जवन किया गया है।

वास्तविक वान यह है कि शापण के खिलाफ सघष, तदन्तर शापण स छुट कारा और फिर उसक वास्तविक जीवन के उदर निर्वाह मन्व वी व्यवसाय म कम म कम समय खच हान की स्थिति और अपनी मानसिक साम्प्रतिक उन्नति क लिए समय और विश्राम की सुविधा-स्थवस्था की स्थापना जब तक नही जाती तब तक शन प्रतिशत जनता साहित्य और मस्मृति का पूण उपयोग नही कर सकती न उसम अपना पूण रान ही कर सकती है।

इस सम्पूण मनुष्य-मन्ना का निर्माण करने का एक मात्र माय राजनीति है जिसका महायक साहित्य है। तो वह राजनीतिक पार्टी जनता क प्रति अपना कतव्य नही पूरा करती जा कि लेखक के साहित्य निर्माण का व्यक्तिगत उत्तर दायित्व कह कर टान देती है।

काव्य की रचना-प्रक्रिया

रचना प्रक्रिया का सम्बन्ध मन्त्रों की रचना से सम्बन्धित है। इसका एक कारण तो यह है कि रचना प्रक्रिया का स्वयं भी भिन्न भिन्न है। यद्यपि कवि-सम्प्रदाय कवि-दृष्टि और विषय यन्त्रु का अनुसार रचना-सम्बन्धिता रहती है। रचना प्रक्रिया का जो विविशिष्ट सामाजिक रूप होता है यद्यपि वह मन्त्र है कि उक्त प्रक्रिया का मूल तत्त्व सत्य सामाजिक है।

एक बात को हम या गम्यें। मन्त्रनात्मक उद्देश्य रहित भावना बुद्धि तत्त्व सब सामाजिक है। उक्त बात के बिना रचना प्रक्रिया सम्भव नहीं है। किन्तु इन तत्त्वों का विभिन्न मापदण्ड विभिन्न अनुष्ठान और विभिन्न प्रकार के योगों से विभिन्न विशिष्ट रूप प्राप्त होता है। यद्यपि विभिन्न सवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार घटित होते हैं। यद्यपि मन्त्रनात्मक उद्देश्य रचनाशील मन की अपनी विधि है और उस पूरे अन्तर्जगत का अर्थ है कि जो अन्तर्जगत कवि ने पाया और विवक्षित किया है। यह अन्तर्जगत बाह्य जगत् का अन्तर्गत मन्त्रादि-गन्धादि अन्तःसंस्कृत रूप है और उस विधा प्रतिविधा की गतिमान परम्परा की उपज है कि जो विधा प्रक्रिया सरल वास्तविकता से बाह्य के प्रति करता आया है। सद्यः मन्त्र रचना प्रक्रिया के भीतर न केवल भावना कापना बुद्धि और सवेदनात्मक उद्देश्य हीन है वरन् वह जीवनानुभव होता है जो अन्तर्गत अन्तर्जगत का अर्थ है, वह व्यक्तित्व होता है जो अन्तर्गत अन्तर्गत है यद्यपि इतिहास होता है जो अन्तर्गत अन्तर्गत सवेदनात्मक इतिहास है। और अन्तर्गत नहीं होता।

बाह्य से प्राप्त ज्ञान निधि और भाव परम्परा अन्तर्गत के अन्तर्गत मन्त्रानुसार उसके (अन्तर्गत के) व्यक्तित्व की अन्तर्गत आवश्यकताओं की पूर्ति की निशा मन्त्र, अपने विभिन्न रूप (अन्तर्गत हृदय में) गठित करती हुई उमंगी अपनी ज्ञान निधि और भाव परम्परा बन जाती है। बाह्य से प्राप्त ज्ञान और भाव अन्तर्गत के अन्तर्गत मन्त्र में एक धूल मिल जाते हैं कि वे उमंगी विधा हो जाते हैं। इतिहास की ही लक्ष्य अपने युग से अन्तर्गत अन्तर्गत नहीं होता, वह अपने युग का अर्थ होता है।

काव्यकला सम्बन्धी जितनी भी समस्याएँ हैं व इस पूरी की पूरी प्रक्रिया के किसी स्तर विशेष से सम्बन्धित होती हैं। उदाहरण के लिए, ऐसी समस्याएँ लीजिए जिनको पुराने प्रगतिवाद न उठाया। कहा गया कि लेखक को अपने युग का सही मही प्रतिनिधित्व करना चाहिए, इस प्रकार में कि वह युग की ह्रास शील दशा के विरुद्ध प्रगतिशील प्रवृत्तियों को उभारे, समाज में जो शक्तियाँ विषमता, अनाचार और उत्पीड़न का कायम रखना चाहती हैं उनके विरुद्ध वह साम्य मूलक समाज के आदेश की स्थापना करे और पाठक को वसी प्रेरणा प्रदान करे।

इस प्रकार के आग्रह के विरोध में जो कहा गया वह मन्त्रको विदित है, यह कि लेखक स्वतन्त्र है और नताशा तथा शामका के आदेश को मानने के लिए वह वाय नहीं है कि इस प्रकार के आग्रहों से, साहित्य में रजिमेंटेशन होता है।

यह मन्त्र विवाद हिन्दी साहित्य के इतिहास की वस्तु है। किन्तु इस विवाद के मूल कारण अतः भन्ने ही आँखा से आभूत हो जाँके सुप्त और नष्ट नहीं हुए हैं। आज भी लेखक के दायित्व की बात की जाती है। यही क्या? एक व देखा दखी दूसरा भी एक ही प्रकार के भाव और शब्दों का प्रयोग करता है एक ही प्रकार की परम्परा और प्रणाली को अपनाता है और इस प्रकार एक विशेष प्रकार के काव्य की विशिष्ट धारा और रूढ़ि बन जाती है—भाव रूढ़ि रूप रूढ़ि शली रूढ़ि। हा, यह सही है कि कवि स्वभाव के अनुसार, किञ्चित् भेद यत्न-तन्त्र निर्याई देता है। फिर भी, वह काव्य प्रवृत्ति प्रणाली और रूढ़ि का रूपता धारण कर ही लेती है भले ही विशिष्ट कवियों में हम विशिष्ट भिन्नताएँ भी दिखाई दें, जस प्रसाद और महादेवी के काव्य में या शमशेर तथा उसी शली के विसी दूसरे कवि में। तो क्या युग स्वयं रजिमेंटेशन नहीं करता? रीतिराल में विशिष्ट शली और विशिष्ट भाव प्रणाली की कविता ही क्या हुई? क्या वह रजिमेंटेशन नहीं था? और हम अपने युग की शृंखलालाशा को भी क्या स्वीकार करें? यह सही है कि कोई भी लेखक अपने यत्नित्व में अपने इतिहास से अर्थात् अपने दश-काल से स्वतन्त्र नहीं है। किन्तु जब वह मन्त्रमुच स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करता है तो इसका अर्थ यह है कि युग बदलने का लक्षण सामने आ रहा है ता दूसरा घोर यह भी कि लेखक आदेश अनुगमन करने के लिए नीतर में बाध्य हो उठा है, क्योंकि (उपयुक्त अर्थ में) स्वतन्त्रता वस्तुतः एक आदेश है वह यास्तविषयता नहीं है। अपने युग की सीमाओं के पर देखकर पर जाकर आगे के माग का देना महत्वपूर्ण घटा है। इस बात का हम से भूत मन्त्र है।

आज भी हम (नये कवियों को) भारतीय मस्त्रुतिधानी पुराहित पाठ पना रहत हैं कि कवियों को यह करना चाहिए क्या जाना चाहिए। और हम प्रकार के आग्रह और प्रशा आग भी उठने रहेंगे।

इन सारे प्रश्नों का सम्बन्ध कवि के अन्तर्जगत से है। कवि से ज्ञान हमें यह पता चलता है कि उसे ऐसा करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। ता वस्तुतः हम उसके अन्तर्जगत (और उसके अन्तर्गत में स्थित जीवन मूल्य पद्धति) पर आश्रय कर रहे हैं। इस प्रकार के आग्रह उसके अन्तर्जगत में सशोचन करने के आग्रह हैं।

य आग्रह गलत है या सही है यह मैं नहीं कह रहा हूँ। इस प्रकार के बाह्य में उदगत आग्रह स्वयं लेकर मान सकता है। ठीक यहाँ लेखक की सिनसियारिटी का प्रश्न उठता है। बाह्य से उदगत आग्रहों को मानने वाले हमें बहुतेरे संलक्ष्य हो सकते हैं जो अक्सरवादी प्रेरणाओं से बसा मानने के लिए तयार हैं और बाह्य से उदगत आग्रहों को स्वीकार कर लें। किन्तु कुछ लेखक निःसन्देह ऐसे भी हो सकते हैं जो स्वेच्छापूर्वक और आत्म प्रेरणापूर्वक इन बाह्योदगत आग्रहों को मानें और उन आग्रहों में प्रवृत्त जावन दुष्टियों का आत्मसात करके उन दुष्टियों को ही अपने अन्तर्जगत का अंग बना लें। लेखक की सिनसियारिटी का प्रश्न वस्तुतः, उस अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है। यदि वह अभिव्यक्ति कृत्रिम है तो निःसन्देह वहाँ सिनसियारिटी नहीं है। किन्तु कृत्रिमता केवल इन सिनसियारिटी को ही उपज नहीं देती वह अकस्मिक की उपज होती है अर्थात् अन्तर्जगत की निर्जीवता और जड़ता का प्रमाण हो सकती है।

इसी प्रकार का प्रश्न कवि की निःसंगता का प्रश्न है। जब बाह्य से आग्रह बनवाने होते हैं और कवि उनके दबाव का सह नहीं पाता तो वह अपनी मूल्यव्यक्ति निःसंगता का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए कहता है कि मृगान अकाले म हाता है साहित्य व्यक्ति की उपज है जो व्यक्ति के लिए है (बाह्य आग्रहों के दबाव और प्रभाव के निरोध के लिए प्रतिरोध के लिए उपयुक्त तब प्रस्तुत किया जाता है।)

यह सही है कि मृगान अकाले म होता है। ऐसी बहुत-सी बातें हाती हैं जो निराकुल अकाले म होती हैं। कहा जा सकता है कि वे भी सग होना है। किन्तु फिर भी वह एकांतिक सग समाज स्वीकृत या समाज निर्दिष्ट होता है। सक्षय में मनुष्य की एकांतिक दशा भी समाज के लिए विचारणीय होना है बशर्ते कि उसका कोई सामाजिक परिणाम हो या सामाजिक प्रभाव हो। ठीक इसी प्रकार मृगान की एकांतिकता में भी सत्त्वरत्न होना है सग होना है। इस सग या सत्त्व के बिना मृगान सम्भव नहीं है। इस मृगान का परिणाम अर्थात् कलाकृति पाठकों के हाथ में जान पर समाज में प्रवेश करना है और समाज में अपना प्रभाव उत्पन्न करनी है इसलिए समाज उन पर मातृता निचारता है और जिम कलाकृति का अष्टनम प्रभाव उत्पन्न होता है उसका रचयिता समाज द्वारा पूज्य होता है।

सक्षय में इस प्रकार के जिनमें भी प्रश्न हैं वे कलाकार द्वारा आत्मन्तर

वृत्त जगत में सम्बन्ध रखते हैं अथवा आभ्यन्तरीकरण का प्रक्रिया में सम्बन्ध रखते हैं या कलाकार की उम्र स्थिति में सम्बन्ध रखते हैं कि जय कलाकार स्वयं संस्कृत आभ्यन्तरीकृत जगत की अभिव्यक्ति करता है अर्थात् सृजन करता है। इसीलिए कलाकृति में व्यक्त व्यक्तित्व को भी आलोचना की जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि अमुक कवि की अतिभावुकता अवाछनीय है। अथवा उमकी भाव दृष्टि में दाप है अथवा लयक साम्प्रदायिक (धार्मिक अथ म नहा) दृष्टि में जीवन जगत की व्याख्या करता है अपनी कलाकृति में इत्यादि इत्यादि। दूसरे शब्दों में, कलाकृति में प्रकट अन्तर्जगत और कवि के व्यक्तित्व की समीक्षा और उमका मूल्यांकन किया जाता है कहा जाता है कि यह भाव कृत्रिम है, या इसमें लय की ईमानदारी है या उमन जीवन का खूब दिया परगा है।

आलोचना की दृष्टि से जो बात सबसे पहले सामने आती है कवि का और रचना प्रक्रिया का दृष्टि से वह सबसे अंतिम है। रचना प्रक्रिया का प्रवाह में रह कर लयक अपने भावा की शब्दों से तुलना करता है जो शब्द सर्वाधिक प्रातिनिधिक हैं उनकी याचना करता है वह शब्द-माधना करता है साथ ही सगति और निर्वाह को माधना चलता है, वह अपने ही भावा के उत्स को मयमित कर उनका सम्पादन संशोधन करता है—सगति और निर्वाह के हेतु। जब उसकी शब्दाभिव्यक्ति उसी के लिए समशील हो जाता है तब वह सतुष्ट हो जाता है तब ही आगे चलकर वह उसमें, तब ही प्राप्त सूक्ष्म दृष्टि के अनुसार फिर से संशोधन कर।

किन्तु पाठक और आलोचक किसी कलात्मक अभिव्यक्ति के सिद्धांत से साध अन्तर्जगत में प्रवेश करते हैं वह अन्तर्जगत जो किसी कलाकृति में उद्घाटित हुआ है वह अन्तर्जगत जिसमें कलाकार का व्यक्तित्व उसके जीवनानुभव, उमकी भाव-दृष्टि समायी हुई है। पाठक आलोचक का मन उम अन्तर्जगत में रमता है उसका मन जाता है उममें विचरण करता है और यदि उस अन्तर्जगत में उस कवि (अपने लिए) बाधा निम्नादि तो वह बर्ण ठहर जाता है और सोचने लगता है। उसे कलाकार का अन्तर्जगत उममें समाया हुआ व्यक्तित्व और भाव-दृष्टि आकर्षित करती है और वह यह दूटने लगता है और पा जाता है कि वह भाव दृष्टि उसके लिए (और सभी के लिए) क्या महत्त्वपूर्ण है या नहीं है।

संक्षेप में रचना प्रक्रिया का जो सर्वाधिक मूल स्थित सर्वाधिक प्रच्छन्न किन्तु अमश प्रकट होना वाला जो अंश है वह पाठक और आलोचक के लिए सर्वप्रथम है। कलाकार रचना के समय शब्दाभिव्यक्ति के संघर्ष में, सगति और निर्वाह के संघर्ष में भावा के उत्स को प्रातिनिधिक रूप में के यत्न में लीन होता है। यह उमका तात्कालिक संघर्ष है। पाठक आलोचक का यह तात्कालिक यत्न नहीं है। कलात्मक अभिव्यक्ति उमके लिए कलाकृति का केवल मिहान है जिसमें

से गुजरकर वह अन्तजगत के क्षेत्र में विचरण करता है। इसलिए मैं कहता कि पाठक आलोचक के ध्यान का जो प्राथमिक केन्द्र है वह अन्तजगत् है और रचयिता के ध्यान का जो प्राथमिक केन्द्र है वह है अन्तजगत की प्रातिनिधिक शब्दाभिधक्ति और कलात्मक सगति और निर्वाह।

कलात्मक अभिव्यक्ति के मिश्रद्वार में से गुजरकर अन्तजगत् में विचरण कर चुकने के बाद चुकने व्यक्तित्व और भाव दृष्टि का प्रभाव गहण कर चुकने के उपरान्त पाठक आलोचक, अन्तजगत के प्रभाव के परिणामस्वरूप ही महत्मा साधन लागता है कि प्रभाव उत्पन्न करने के वे उपादान कौन कौनसे हैं जिन्होंने सफल अभिव्यक्ति का त्याग की अथवा सफलता के भाग पर चलने चलने लकने न कौन सा बाधाएं उत्पन्न कर दी। सक्षम में अब वह रूप और शिल्प के सम्बन्ध में सोचने लगता है। सम्बन्ध में किसी कलाकृति का लेकर, पाठक आलोचक की यात्रा भिन्न दिशा की ओर जाती है मृज्जन करते समय कलाकार की यात्रा उसके विपरीत दिशा की ओर जाता है। इस तथ्य को हृदयगत करना आवश्यक है।

तब सम्बन्ध में आयोग कि जीवन जगत के आत्म्यतरावृत्त का प्रशिया कलाकार के लिए क्या महत्त्वपूर्ण है। यह प्रशिया कलाकार के वास्तविक जीवन में चलती रहता है कि तु क्या वह समुचित रूप में और प्रबुद्ध दृष्टि से मुक्त होकर चलता रहता है? यदि कलाकार का जीवन उसका बाह्य और मानसिक जीवन तुच्छ है अर्थात् नव तबान सबदनात्मक पान और जानात्मक संवेदनाया से ज्ञान है यदि उसमें उच्च महानुभूतिया का विस्तार नहीं है यदि उसमें नितांत आत्मबद्धता है तो फिर एसा अन्तजगत कलाभिधक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण है। सक्षम में उम अन्तजगत में महत्त्व का मूकनाएँ चाहिए। [यही महत्त्व का अर्थ है जो महत्त्वपूर्ण है वह]

यह कारण है कि आदिमान स कवि का महान माना गया है उमक अन्तजगत में महत्त्व को स्थापना का दायर। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि कवि का अन्तजगत आदिशवादा अनुभव-समुच्चयानी होना चाहिए। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि कवि के अन्तजगत् का अन्त आन्तिकाल से ध्यान गया है, और उसका महत्त्व की स्थापना की गई है।

किन्तु आधुनिक युग में अन्तजगत पर तर-तरक दबाव है उनमें एक दबाव समाज का भा होना है। उमा प्रकार कलाकार पर भा समाज का दबाव होना है। समाज के दबाव के माध्यम भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। परन्तु वे समाज का दबाव न होता क्या है। उमा प्रकार प्रशिया काव्य प्रणाम्य संश्रयना मगनि एक अर्थ प्रकार का सामाजिक दबाव ही है। ही महत्त्व है कि ये दबाव प्रत्यक्ष नहीं बरन अप्रत्यक्ष होते हैं। जिस प्रकार इनकाय रक्त दबमशन (अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था) उपभाता का नया चलता उमा प्रकार

ममाज क अग्रत्यक्ष दबाव भी सामन नही आत, किन्तु बराबर सत्रिय रहत है ।

उसी प्रकार, वचारिक आन्दोलन के रूप म भी कई सामाजिक दबाव होत हैं । य विघ्नप आग्रहा, अनुरोधा का रूप धारण करत हैं । इस प्रकार क विशेष आग्रह अनुराध कभी केवल कलात्मक शब्दावला का रूप भी धारण करत है । कला के एक विशेष पटन के आग्रह कला-सम्बन्धी एक विशेष भाव दृष्टि के आग्रह काई वचारिक दृष्टि अपनाने क आग्रह लाकोपयोगी कला मृजन करने क आग्रह सब वस्तुत सामाजिक दबाव ही हैं किसी म किसी भाव दृष्टि का आग्रह है तो किसी म किसी पटन का आग्रह ।

य सब दबाव या आग्रह उचित हान हैं यह कहना गलत ह उसी प्रकार य सब अनुचित हान हैं यह कहना भी उतना ही गलत है । जन्म से घट्ट ने आग्रह न केन मही वरन पुरात उचित हो सकत है ।

किन्तु आग्रह कर्ता जन्म एक वातावरण निर्मित करके कलाकार पर दबाव लाना चाहत है ता के यह नही देखते कि दबाव का वस्तुत क्या प्रभाव होगा । हाँ यह सही ह कि एस घट्टतर निकल आत है जा अपनी अपरिपक्वावस्था के कारण, अथवा किगुद्ध अवसरवादी दृष्टि से प्रेरित हाकर दबाव ग्रहण करके, उम दबाव क अनुसार कलाकृति प्रस्तुत करते ह चाहे घट्टिया ही क्या न सहा । जेप, जा दबाव स्वीकार करना नहा चाहत, और चाहत हण भी नही की कर मन्म क चुप बठ जात हैं अलग हट जान है और तिरोहित हान मे ही अपना कल्याण समभत हैं । मेरे ग्याल म य दाना परस्पर विपरीत प्रतिन्रियाएँ या परस्पर वपरीत्य सही भी हा सकता है गलत भी । यह विशेष परिस्थिति पर निभर है कि कौन सा गलत है नोन सा सही ।

किन्तु इन आग्रहा की आधार भूमि इन आग्रहा क मूल खान यदि 'यापन' मानवीय सन्तानुभूति और कारण से समबिन है यदि किसी 'यापन' मानवीय आदश से प्रेरित है ता यह अनुमान करना गलत नही कि उही व्यापक सहानुभूतिया और व्यापक मानवाय आदर्शों का कुञ्ज-कुञ्ज तत्व या कुञ्ज न कुञ्ज अश लेखक भा अपन म आत्मसात किय हण है । अतएव किसी सामान्य भूमि पर आग्रह कर्ता और लेखक दाना एकत्र हो सकत हैं बशर्ते कि (और यह बडी शत है) आग्रह कर्ता महादय रचना प्रक्रिया म भी सूक्ष्म दृष्टि रखत हा, और उम रचना प्रक्रिया का एक सिरा अथवा लेखक के हृदय म तडपने हण जीवनानुभव जीवनानुभवा क सामायीकरण (ज्ञान) और भाव दृष्टि का मूल समभत हा । पण्डित रामचन्द्र गुक्न छायावादी रचना प्रक्रिया को नही समभत थ इसलिए उमका विरोध करते रह । अथिक् से अथिक् छायावाद को उहाने 'अभिव्यक्ति' का लाक्षणिक प्रणाली ही माना । डॉ० रामविलास शर्मा को प्रयागवादी या नई कर्ता म 'असुन्दर और विद्रुप' म अथिक् कुञ्ज नही दिखता । शिवदानगिह

शौच का इस बात का मत है कि आज की कला में नवानव तत्त्व का साथ ही रहा है। अतएव, नव आलोचना के आग्रह रचना प्रक्रिया में गूम्स दृष्टि का अभाव में लादे जा रहा और नवानव आलूम हाथ है। कारण यह कि नई प्रकृतियाँ और प्रवृत्तियाँ का रचना प्रक्रिया में गूम्स-दृष्टि रचने के लिए आनाया का समानात्मक जायन जान आवश्यक है—नव जायन का नाम जो नवानव प्रवृत्ति रूप में सामने आया हो। इसका अर्थ यह भी है कि उनके आग्रह उनके अर्थ मायता रूप में स्वभावों गलत है नही व सच्चा भी हो गलत है। किन्तु जब तक वे लादे जाएंगे रचना प्रक्रिया में गूम्स दृष्टि का अभाव में व गलत और निरपयोगी ही साबित होगे और अर्थ आग्रह उनके गीपा का बावजूद उनका विरोध होता ही रहेगा।

दूसरी ओर भल ही कोई अलग वैचारिक दृष्टि में वाद वाच्य आग्रह स्वीकार कर लें, जब तक उस आग्रह का तत्त्वा का आम्बन्तरीकरण नही होता जब तक अतन्त्रगत के तत्त्वा में उसका रंग नही चले जाता जब तक वह हृदय में तड़पत हुए जावनानुभवा का एक भाग नही बन जाता तब तक उस आग्रह का अनुरूप रचित साहित्य निष्प्राण और कृत्रिम ही रहेगा। लगन के लिए मुख्य बात आम्बन्तरीकरण की है। आम्बन्तरीकरण की प्रक्रिया तबल विचार तब सामित नही है बल्कि उससे ज्यादा गहरा व्यापक और मार्गदर्शक है। तब तक लेखक अपने स्वयं के जावनानुभवा से प्राप्त दृष्टि का रूप में उन्हें नही पाता तब तक आम्बन्तरीकरण का प्रक्रिया पूरा नही हुई यह समझना चाहिए। सच्चा आम्बन्तरीकरण ना तब होता है जबकि लेखक जिन्गी में गहरा हिस्सा तब हुए सवेदनात्मक जावन जान प्राप्त करके उसी भाव दृष्टि तब स्वयं अपने आप पहुँचता है कि जो भाव दृष्टि आग्रह रूप में बाहर से उपस्थित की गई है।

आग्रह कई प्रकार से उपस्थित होते हैं। कुछ कला के नाम पर, कला का शब्दावली में प्रस्तुत होकर साहित्य जगत का शासन भी करने लगते हैं। कुछ समय तक इनका शासन चलता भी है लेकिन समाज और राष्ट्र की भिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न पीडा कला की शब्दावली में छिपे आग्रहों की निष्पन्न करता है। उदाहरणतः सन १९६० का सट्टरडे रिप्यूट टा० ए० इलियट के निरुद्ध अवस्था आग्रहण का रूप में लिखा हुआ बाल शविरो का लय। महत्त्व की बात यह है कि जावन-परिस्थिति में परिवर्तन के साथ साथ भाव दृष्टि बदलने लगती है और मथाथ का नय-नय पन्तू सामने आने ही जिन् कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए उपयुक्त शब्द सम्पदा और परम्परा नही होती। लेखक को नय सिरे में प्रयत्न करना पडता है। भल ही पुरानी पीढी को नई पीढी का काय में बाई मौल्य न दिखाई दे किन्तु नई पीढी का उसमें ही अपना आत्म प्रकाश अतः अद्य दिखाई देना है। पुराने लगने आग्रह रूपी अस्त्रा से नया का बंध करन

का प्रयत्न करते ही रहते हैं। मजा यह है कि आग्रह कला और सौंदर्य के नाम पर होते हैं, फिर भी नवीन प्रवृत्ति वालों को वे स्वीकारणीय नहीं हो पाते।

सक्षेप में यथाथ परिवर्तनशील होता है। अतएव, आग्रह भी दो प्रकार के होते हैं—एक वे जा कला या दृष्टि के नाम पर, परिवर्तन क्रम की पिछली अर्थान्तर विगत बड़ी या सीढ़ी की ओर खींचते हैं और वे जा परिवर्तन क्रम की अगली बड़ी या सीढ़ी की ओर खींचते हैं। यह अगला या पिछलापन यथाथ के परिवर्तन क्रम को देखकर पहचाना जाना चाहिए न कि वचारिक दृष्टि से उच्चतरता या निम्नतरता की दृष्टि से। ऐसा मैं क्या कह रहा हूँ ?

यह करना इसलिए आवश्यक है कि जीवन परिस्थिति में परिवर्तन में और यथाथ के नय-नय पहलुआ के खूबन स उनका आभ्यन्तरीकरण के द्वारा लेखक का जो संवेदनात्मक व्यक्तिक इतिहास बनता है वह इतिहास पूर्ववर्ती प्रवृत्ति के कवियों से सवथा भिन्न होता है अतएव इस नवीन प्रवृत्ति वाले की रचना प्रक्रिया भी बदल जाया करती है और तदनुसार अभिव्यक्ति शाली भी। अमरीका में आज नवीन काव्य शाली का जो प्रचलन है उसके विरुद्ध पुराने कवियों का आक्रोश सवथा स्वाभाविक है। उसी प्रकार नवीन काव्य शाली वालों को अपने अस्तित्व के लिए पुराना का प्रतिरोध करना पड़ता है। यह विरोध वचारिक दृष्टि से उच्चतरता या निम्नतरता का परिणाम नहीं है बरन एक काव्य प्रवृत्ति की विशेष पटन की और उसके साथ उसके अतगत समाथ (विगत) जीवन-तत्त्वों को समेटे रखने और स्थायी बनाने का प्रयत्न है। इसके विरुद्ध नय का विद्रोह होना स्वाभाविक है। दूसरे शब्दों में, पुरानी पीढ़ी के लोग, नयी पीढ़ी के लोगों द्वारा आभ्यन्तरीकृत जगत और आभ्यन्तरीकरण प्रक्रिया में विकसित भाव दृष्टि और उन दोनों से उत्पन्न अभिव्यक्ति प्रक्रिया, इन सबको असुंदर, निपिद्ध और बकार टहराने का प्रयत्न करते रहते हैं कला कला और सौंदर्य के नाम पर कभी आध्यात्मिक आदर्श के नाम पर कभी सामाजिक प्रगति के नाम पर।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सखक, वचारिक अथवा भावना की दृष्टि से जन विरोधी लोक विरोधी, प्रगति विरोधी हो नहीं सकता। वह बराबर हो सकता है और उसका बसा होना दिव्याई भी देता है। किन्तु किसी लेखक की विचार धारा पर आक्रमण करना एक बात है आभ्यन्तरीकृत यथाथ की कविकृत 'याख्या पर आघात करना एक बात है किन्तु उस पूरी काव्य प्रणाली पर चोट करना एक अलग बात है उस पूरी रचना प्रक्रिया और अभिव्यक्ति शला पर आघात करना बात ही दूसरा है। निम्न प्रकार आदर्श के शब्द व्यापार में निरान्त अवसरवाद और बेईमानी निखाई देती है उसा प्रकार, यथाथ के उद्घाटन के नाम पर भी अयथाथ और कृत्रिमता भी सामने आती है। यह तो विशिष्ट विशिष्ट

लेखक को विशिष्ट विशिष्ट रचनाओं को सामने रखकर ही तय किया जा सकता है।

सक्षप में लेखक की रचना प्रक्रिया के प्राथमिक और निगूढ स्तर अर्थात् लेखक का अज्ञात जगत लेखक के अन्तर्जगत का सवेदनात्मक पुञ्ज, लेखक का समग्र व्यक्तित्व पाठक और आलोचक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है और उसके आवन्तन के माध्यम से रम ग्रहण होता है। अतएव सख अधिक वा विवाद सबसे ज्यादा महत्त्व इसी का लेकर जानी है।

क्यों जानती है? इसलिए कि सवेदनात्मक अन्तर्जगत अर्थात् जीवनानुभव रचना प्रक्रिया के दौरान में अपने विषय सवेदनात्मक उद्देश्य को लेकर अवतीरण होने है। य सवेदनात्मक उद्देश्य एक और लेखक के अंतर्ब्यक्तित्व का एक भाग है उसके अनुभवात्मक इतिहास से सम्बंध रखते हैं उसने जो कुछ आत्म सात किया है जो कुछ पाया और रोजा है उससे नाता रखत है उसकी विद्यमान जावन स्थिति और मनो-शाओ से सम्बन्धित रहते हैं। इन सवेदनात्मक उद्देश्यो से प्रेरित होकर ही कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। रचनाओं में प्रवृत्त इन सवेदनात्मक उद्देश्यो को ध्यान में रखकर ही कवि के अंतर्ब्यक्तित्व का उसके अनुभवात्मक जीवन का उसकी भाव-शक्ति का हम अनुमान होता है। इस प्रकार व एक और अंतर्ब्यक्तित्व को ता दूसरी ओर रचना को एक दूसरे से जोड़ देने हैं।

जीवन में जो कुछ अजित है जो कुछ सवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक सवेदना के रूप में प्राप्त है अर्थात् जो कुछ विशिष्ट अनुभव हैं और जीवन जगत सम्बन्धा जो कुछ आत्मकृत सामायीकरण हैं जो भी जीवन मूल्य आत्ममात किय है, और जिसे लिए सक्षप किया है जो सत्कार जो आदेश, जो यथाय हृदय का अनुभव भग जा गया है वह सखवा मय स्थिर रूप में व्यक्तित्व का अंग होना है। दैनिक जीवन के दैनिक कार्यों में व्यस्त रहने से हम उस सौंदर्य क्षण से दूर रहने हैं जब मन द्रवित हो जाता है कल्पना सक्रिय होकर चित्र उपस्थित करते हुए हम जीवन के रम में डुबने में लगता है जो हम गहन होकर विस्तृत होने लगते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हमें क्षण हम अपने अकेले में विगा बमर में किसी टूल के पास मिलें और लगना लगे बैठने के लिए मजबूर करें। विलम्ब नहीं। होकर फतेह के य निजा शग राग घनन वान करन या कमा-कमा बिन्दुल भीड़ में या एकान में भा मित गान हैं यह भा आवश्यक नहीं है कि य क्षण हम अभिव्यक्ति के लिए मजबूर करें। फिर ना य अद्वितीय क्षण है प्रतीति के क्षण है कविति य सौन्दर्य के क्षण है रगात्मक क्षण है सौन्दर्य-क्षण है। य क्षण केवल कलाकार का ही प्राप्त नहीं है। य सामाय जन का भी प्राप्त होत रहते हैं इसी क्षण से ममूढ पाठक, आभाभिव्यक्ति से दूर

रहकर भी, अर्थ द्वारा रचित कलाकृति में अपनी अभिव्यक्ति दायता है। ये क्षण मानवता के लक्षण हैं, उस मानवता के—जो व्यक्ति और देश से ऊपर रहते हुए भी प्रत्येक हृदय में समायी हुई है।

स्व से ऊपर उठना, खुद की धरेबन्धी तोड़कर कल्पना-संज्ञित महानुभूति के द्वारा अर्थ के मर्म में प्रवेश करना मनुष्यता का सबसे बड़ा लक्षण है। इस प्रकार की व्यापक और उदार महानुभूति—कल्पनाशील महानुभूति मानवता के पिछले इतिहास में, साहित्य और धर्म में कला और सृष्टि में, सम्कार रूप में हम प्रदान का है। यही नहीं, बुद्धि स्वयं अनुभूत विशिष्टों का सामायीकरण करती हुई हम जो जान प्रस्तुत करती है उस जान में निबद्ध स्व से ऊपर उठने, अपने से तटस्थ रहने, जो है उसे अनुमान के आधार पर और भी विस्तृत करने की प्रवृत्ति होती है। भाषा स्वयं सामायीकरण से उत्पन्न है। इस प्रकार एक और तटस्थ रहकर तो दूसरी और अपने से ऊपर उठकर अपने में परे जाकर विस्तार करने की प्रवृत्ति हममें पहले ही से विराजमान रहती है। भावना हम दुबो देती है और परिचायित करता है संचलित करती है। सवेदनात्मक ज्ञान के आधार पर और नानात्मक सवेदनाओं के आधार पर हम एक साथ तटस्थ और तमय, अपने से परे और निमग्न, अपने से बाहर और अपने अंदर एक साथ रहते हैं। महानुभूतिशील कल्पना और कल्पनाशील महानुभूति हम आत्म विस्तार के लिए उद्यत कर देती है। संक्षेप में बाह्य और अन्तर का भेद उस समय लुप्त सा हो जाता है।

ऐसे क्षणों पर केवल कलाकार का अधिकार नहीं होता, वे सामान्य जनो का भी निरंतर प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि साहित्य रचा और समझा जाता है। जिस प्रकार बुद्धि विशिष्टों का सामायीकरण करता है उसी प्रकार कल्पना भी विशिष्टों का इस प्रकार मनश्चित्र बनाती है कि वह मनश्चित्र सार तत्त्वमान विशिष्टों का प्रतिनिधि हो जाता है ऐसे मनश्चित्र की प्रातिनिधिकता एक प्रकार का सामायीकरण नहीं तो क्या है।

किंतु ये मारी मनोवचनिक प्रक्रियाएँ हमारे सामान्य जीवन में ही चलती रहती हैं। उन्हीं से हमारी भाव सम्पत्ति बनती है। हृदय में जावन मूल्यों की सवेदनात्मक स्थिति उन्हीं के कारण है। संक्षेप में निमग्नता और तटस्थता के योग से उत्पन्न आत्म विस्तार हमारे न देख जाने पहचान जाने सामान्य जीवन का ही अंग है।

यह सही है कि व्यक्तियों के आत्म वचन की कोटियाँ हाता हैं। कोई आदमी बहुत पढ़ा लिखा होकर भी जड़ हो सकता है और कोई डिग्रीधारी न होकर अत्यन्त परिष्कृत हो सकता है। कोई विख्यात पण्डित वाक्य और कला के प्रति निःसंश और जग्न हो सकता है लेकिन कोई बहुत मामूली पढ़ा लिखा उसके प्रति

सहज सवदनशील ही सत्वता है। यह आवश्यक नहीं है कि 'मनान्' आलोचक सवदनशील हो। मूनिवसिष्ठिया के डाक्टरों का जड़ता दशमीय और प्रश्रुतनाय है। ज्ञान व अहंकार में अज्ञान के अहंकार का बुद्ध ऐसा शुद्ध रूप हम उनमें मिलता है कि लगता है कला और साहित्य की छाती पर बड़े हुए य टाल है।

एसे सौन्दर्य क्षणों, एम मनाप्रज्ञानिक क्षणों से वचन अथवा अल्प-समृद्ध दरिद्र जा आलाचक है वह अपने को चाह जितना बड़ा समझ—साहित्य क्षेत्र का अनुशासन समझ—वह, वस्तुतः साहित्य विषयपरण व असाध्य है कला प्रक्रिया के वायु में अक्षय है भाँहा वह साहित्य का 'शिखर' बना का स्वयं रच मसीहा बने।

आलोचक व त्रिण राज प्रथम आशय है अनुभवामय जीवन का जो निरंतर आत्म विस्तार से अर्जित होता है। गुद की घरेबती में रहने वाले कुर्सी लीड मसीहाओं व बूने की यह बात नहीं। मतलब यह कि कला की बहुत सा समस्याएँ केवल अज्ञान व कारण, पदा की जाती हैं जयकि असल में वे हाती नहीं, हो नहा मक्ती।

ऐसे लोगो के जा भी विश्लेषण और निगम होने हैं वे कलाकार की रचना प्रक्रिया को बिना देखे समझे होते हैं। वह आलोचना जो रचना प्रक्रिया को देख बिना की जाती है आलोचक के अहंकार से निष्पन्न होती है भले ही वह अहंकार आध्यात्मिक शब्दावली में प्रकट हो चाहे कलावादी शब्दावली में चाहे प्रगतिवादी शब्दावली में।

उपयुक्त जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया बताई गई वह सामान्य जीवन में ही होती है। वह हमारे अतर्जोवन को समृद्ध करती है और उसी समृद्धि का एक भाग बन जाती है। कलाकार के अतर्जोवन का भा वह एक भाग हाती है।

सवेत्नात्मक उद्देश्य इसी भाव समृद्धि का एक अंग हैं और उसी से उदगत हाते हैं। लखक के पूर व्यक्तित्व से समुद्गत ये सवेत्नात्मक उद्देश्य उसके अनुभवा का विशेष रूप से सन्तलन करते हुए उठे अपनी पूर्ति की दिशा में प्रवाहित कर दत हैं। यह पूर्ति (लगव कलाकार के लिए) अभिव्यक्ति में होती है। साधारण जन की आत्मपूर्ति की दिशा भिन्न होती है उनके लिए वह सूक्ष्म दृष्टि या मम दृष्टि के रूप में अवतरित हाती है। और वह उसके सवेदनात्मक जावन ज्ञान या जीवनानुभूति का अंग बन जाता है।

सवेदनात्मक उद्देश्या द्वारा परिचरित और आत्मपूर्ति का विशेष दशा में प्रवाहित यह अनुभव पुज, कल्पना द्वारा विस्तृत और मूर्तिमान हो उठता है किन्तु साथ ही प्रकाशाल भी। अनुभव प्रवाह चित्र प्रवाह में परिणत हो जाता है। सवेदनात्मक उद्देश्या की प्रक्रिया सवेदना और ज्ञान के माग से कल्पना चित्रा का विभिन्न विधान करती हुई एक ओर बहा देती है। अथवा यो कहिए कि

कल्पना का अपना नाजिक तयार हो जाता है। मन कल्पना की इस स्वाभाविक गति में धुलता हुआ और उसमें तमय होता हुआ, उसके सवेदनात्मक रस का पान करने लगता है। नि मनेह यह सौन्दर्य-क्षण है रम शरण है जिसे कलाकार और सामान्य-जन दोनों प्राप्त करते हैं। जीवनानुभवा के ये मौदर्य शरण हैं जिनमें कल्पना चित्र स्वयं प्रातिनिधिक हो उठने हैं। इसे हम कलात्मक सूक्ष्म-दृष्टि का क्षण भी कह सकते हैं अथवा जीवन के सारभूत यथाथ का क्षण भी कह सकते हैं।

सवेदनात्मक उद्देश्या का उत्पत्तिस्थल, उनका उदगम स्रोत आत्मचरित्रात्मक है। उनमें सम्बन्ध-मूत्र कलाकार की मनोरचना से लेकर उसके व्यक्तिगत इतिहास तक में समाये रहते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक साहित्य मूलतः और सारत आत्मचरित्रात्मक है भले ही बाहर बाहर से वह चाहें जितना वस्तुवादी क्या न दियाई दे। उसकी यह आत्मचरित्रात्मकता, मुख्यतः अभिव्यक्ति के लिए लाए जाने वाले अनुभवों के सवेदनात्मक महत्त्व-बोध में है। यदि लेखक के पास सवेदनात्मक महत्त्व बोध नहीं है या क्षीण है तो उन विशिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति क्षीण होगा।

सवेदनात्मक उद्देश्या को देय परत्वकर ही यह पहचाना जा सकता है कि लेखक किस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। एक ओर यदि हम उन्हें देय लेखक के अतव्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनुमान कर सकते हैं तो दूसरी ओर कलात्मक प्रभाव का विश्लेषण भी सवेदनात्मक उद्देश्यों के सन्दर्भ के बिना नहीं हो सकता।

लेखक जो कि अपनी सवेदनात्मक क्षमता से साहित्य सृजन करता है, वह सवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार, परिचालित होता है। वह अपनी अभिव्यक्ति का पटन भी सवेदनात्मक उद्देश्या के अनुसार बनाता है। दूसरे शब्दों में, सवेदनात्मक उद्देश्य एवं आत्मचरित्रात्मक होत हैं तो दूसरी ओर वे एक विशेष प्रकार का कलात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अभिव्यक्ति का विशेष पटन गूषत हैं ता तीसरी ओर ये सवेदनात्मक उद्देश्य, अपने ध्वज से हृदय में स्थित जीवन अनुभवा अर्थात् पानात्मक सवेदन और सवेदनात्मक पान को जाग्रत और सञ्चित करके उन्हें अपनी निशा में प्रवाहित करत है। जाग्रत अतव्यक्तित्व में अर्थात् इस प्रक्रिया में कल्पना उत्तेजित होकर सवेदनात्मक उद्देश्या के अनुसार अनुभवा के साकार चित्र प्रस्तुत करती जाता है।

इस प्रकार हम दम्ते हैं कि सवेदनात्मक उद्देश्या का काय प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अतव्यक्तित्व की विशेषताओं और उनकी हलचल से लेकर अभिव्यक्ति के अन्तिम पटन तक होता है। यह सवेदनात्मक उद्देश्य अतव्यक्तित्व और आन्तरिकीकृत जगत् का प्रतिनिधित्व करत हुए जाग्रत और सञ्चित अनुभवा को मनस्पष्ट पर एक के बाद एक मूर्तिमान करत हुए धागे बड़ चलता है।

सर्वनात्मक उद्देश्य का देखाकर लेखक के अन्वयित्व रचना के अन्तर्गत जीवन-तत्त्वा का और उनकी अभिव्यक्ति का दगा जा सकता है। प्रयोगवादी कविता के सर्वनात्मक उद्देश्य को न समझने के कारण ही, उसके सम्बन्ध में बहुत सी भ्रांतियों फैलाई गईं। उस या तो राजनीतिक रूप से प्रतिश्रियावादी कहा गया या भारतीय सभ्यता के साक्षेप उनकी आत्मा के प्रतिबल। हाता तो यह चाँहिए था कि सर्वदनात्मक उद्देश्य को समझकर उन सर्वदनात्मक उद्देश्य का जाग्रत करने वाली जीवन भूमि का विश्लेषण करने हुए उन सर्वदनात्मक उद्देश्य की सत्य मानवीयता—उन रचनाओं की सहज मानवायता को हृदयगत किया जाता। लेकिन इस प्रकार का कविताओं को एकदम अमुद्धर, प्रतिश्रिया वाली विद्रूप या निपधात्मक कहकर टरका दिया गया। आलोचना का उद्देश्य इस काय प्रवृत्ति का समझना नहीं था बरन उससे सघष करके उस नष्ट करना था।

लगभग ऐस ही उद्देश्य से परिचातित होकर पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद का विरोध किया। उन्होंने जब छायावाद से समझौता भा किया तो उस अभिव्यक्ति की लाक्षणिक प्रणाली कहकर छुड़ा पाई। लेकिन वह नहीं देना कि आखिर लेखक इस प्रकार की प्रणाली का क्यों अपनाता चाहता है या यो कहिए कि इस प्रकार की अभिव्यक्ति प्रणाली आखिर कवियों के लिए क्या सहायता प्रदान हो उठी।

उन्हें का तात्पर्य यह कि अभिव्यक्ति की प्रणाली बदलत ही आलोचकों की गंभीर छूटने लगता है। मुझे इस बात का गहरा सन्देह है कि इसका कारण यात्रिक बुद्धि है। अपनी अपनी भिन्नभिन्न और सिद्धांतों के कटघरे में किसी नई प्रवृत्ति का न फैलने देकर उम नई प्रवृत्ति को ही निर्दिष्ट किया गया, न कि उन सिद्धांतों को बदला अथवा उन सिद्धांतों के सम्बन्ध में अब तक उनकी अपनी जा समझ या जगमें परिवर्तन किया। उन्हें अपने अपने बौद्धिक मानसिक ढाँचा की प्यादा किन्हीं निम्न नई प्रवृत्ति के जीवन तथ्यों का नहीं।

सर्वनात्मक उद्देश्य निरसुत की वह धारा है जो अन्तर्व्यक्तित्व से प्रसून होकर जीवन विधान करती है तथा विधान करती है, अभिव्यक्ति विधान करता है। आत्मचरित्रात्मक और सृजनशाली सर्वनात्मक उद्देश्य हृदय में स्थित जावान अनुभवा का संकलित कर उन्हें कल्पना के सहयोग से उद्दीप्त और मूर्तिमान करत हुए एक और प्रवाहित कर देता है। यह कला का प्रथम क्षण है या कवि सौन्दर्य प्रताप का क्षण है। यह क्षण सामान्य जन का भी प्राप्त हाता रहता है।

किन्तु कला का द्वितीय क्षण तब उपस्थित हाता है जब लेखक में शब्द

संवेदनाएँ जाग्रत होकर वह विषय-तत्त्वों को व्यक्त करने लगता है। यह क्षण दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो इसलिए कि अब शब्द संवेदनाएँ और भाव संवेदनाएँ दोनों एक-दूसरे से मन्तुलित होने लगती हैं, बल्कि इसलिए भी कि संखन का मन दशक और भोक्ता—इन दो के बीच में केवल विभाजित ही नहीं होता बरन् अब दशक केवल निष्क्रिय नहीं रहता बल्कि सक्रिय हो जाता है और साथ ही वह विषय-तत्त्व के मनोरूपों को व्यक्त करने का प्रयास करने लगता है। संक्षेप में अब यह दशक एक क्रियावान् शक्ति बन जाता है। किन्तु उसकी क्रिया मनोरूपा के सम्बन्ध में होने से एक विशेष परिस्थिति निमित्त हो जाती है। वह परिस्थिति इस प्रकार है।

न केवल अंतर का द्विधा विभाजन होता है बरन् यह कि इस दशक में जो शब्दाभिव्यक्ति में देर लगती है फलतः उस संवेदनात्मक उद्देश्या के अनुसार प्रवाहित होने वाले मनोरूपों की गति को थाम लेना या मन्द करना पड़ता है, उसे सममित करना पड़ता है। इस बीच शब्द संवेदनाएँ जाग्रत होकर अपना काय मनोनुकूल पूरा कर चुकती हैं कि इस बीच कभी कभी सम्भवतः संवेदनात्मक उद्देश्यों से परिचालित मनोरूपों की गति ही लुप्त हो जाती है और रचित शब्दों का भावार्थ भी पूरा नहीं हो पाता।

मेरा मतलब तटस्थता और तन्मयता से है। यदि दशक मनोरूपों की गतियों से इतना निरतिप्त है कि वह शब्द संवेदनाओं में खो जाता है और मनोरूपा की गति जटिल जाती है तो ऐसी निरतिप्तता भी उसकी काम की नहीं होती और यदि वह उन मनोरूपा की गतियों में पूर्णतः विलीन हो जाता है तो शब्दसंवेदनाओं के लिए अबकाश की हीनता के फलस्वरूप अभिव्यक्ति निबल अथवा दुर्बल हो जाती है। अतएव उस मनोरूपा की गतियों को प्रवाहित करने वाले संवेदनात्मक उद्देश्या से एकाकार होकर साथ ही उन मनोरूपा का मज्जा लेते हुए उनकी गतियों को आत्ममातः बरतते हुए चलना पड़ता है। दूसरे शब्दों में उसे अनवरत रूप में एकीभूत स्थिति और द्विधा रूप स्थिति कायम रखनी पड़ती है।

किन्तु केवल इतना ही नहीं होता। शब्द-संवेदनाओं और भाव संवेदनाओं की परस्पर तुलना से अगोचर अभिव्यक्ति के फलस्वरूप रचना का जो अंश तयार हो जाता है वह स्वयं एक फीस, एक शक्ति बन जाता है और यदि अनुभवात्मक संवेदनाएँ (विषयभूत मनोधारणें) क्षणमात्र लुप्त भी हुईं, तब भी शब्दात्मक वह रचना तण्ड स्वयं उसे अगला माग सुभा देना है।

शब्द संवेदनाओं का प्राप्त करते हुए लेखक जाने अनजाने अपना मूल भाव सम्पत्ति और मनोधारा में भी परिवर्तन करता रहता है। शब्द-संवेदनाएँ नवीन associations को जाग्रत कर देती हैं। फलतः वह मूल मनोधारा यदि इस

प्रकार से इन associations का प्राप्त करके समृद्ध हो जाता है तो दूसरा भाग उरसका—उस मनोधारा का स्वयं का मूल रूप स्वरूप बहुत कुछ बलता जाता है। यह महत्त्व की बात है। प्रारम्भिक स्फूर्ति ने जो तत्त्व विधान और रूप निर्माणा किया था वह परिवर्तित होता रहता है।

बुद्धि का काय यही उपस्थित होता है। उस काय निर्वाह करना पड़ता है। मूल मनोधारा न अपने आवरण म रूपमय तत्त्वा को ताकर गडा कर दिया कल्पना को उद्घोषित कर दिया और सवेत्नात्मक उद्देश्यो की पूर्ति की निर्माणा म उसे प्रवाहित कर दिया। किन्तु शब्द-साधना के समय नवीन भावात्मक अनुपम नवीन अनुभव उपस्थित होता है। वे मूल्यवान् होने पर उन्हें जान अनजान आत्म सात कर दिया जाता है। शब्द सवेत्नाएँ लगातार काय करता रहता है। उनका चोट होती रहती है। मूल मनोधारा म बहुत कुछ परिवर्तन अर्थात् सशोधन होता जाता है। यह सशोधन किस प्रकार का होता है।

अमल म, शब्दाभिर्व्यक्ति के समय लक्ष्य मनोधारा क अन्तर म और भी अधिक् प्रवेश करता है। उसके लिए वह अधिकाधिक तत्त्व-साक्षात्कार का और आत्म-साक्षात्कार का काल है। एक प्रकार से वह उसके आत्म निर्माण का भा काल है। शब्दाभिर्व्यक्ति तो केवल उसका एक माध्यम है। सवेत्नात्मक उद्देश्यो की तीव्रता पर यह निर्भर करता है कि कहीं तक वह आगे बढ़ेगा। सवेत्नात्मक उद्देश्यो की तीव्रता के अभाव म—अर्थात् प्रेरणा क अभाव म उसकी रचना बहुत आगे बढ नहीं पाता। वह खण्डित हो जाती है अथवा उस जस-तस करके वह निबटा देता है उगका तन्त्र—साक्षात्कार—आत्म साक्षात्कार छिद्यला और पतना विरल और तुच्छ होता है।

किन्तु लेखक के पास यदि उतनी प्राण शक्ति है तो नि म-दह अत्र तक निर्मित शब्दात्मक रचना की सहायता से अपना अमला काम भी देय लता है। जीवन अनुभवो म डकी हुई उसकी बुद्धि रचना के सवेत्नात्मक उद्देश्य से एकाकार होकर आग का पथ प्रशस्त करती है। फलत का य निर्वाह होता चलता है। यह बुद्धि सवेत्नात्मक उद्देश्य क अनुसार, शब्द योजना और अभिव्यक्ति निर्माण म एक सम्पादक का सशोधक का काम करती है तो दूसरा और वह सवेदनात्मक जान और जानात्मक सवेदनाया का सध्य म रखकर उनमें अनुप्राणित होकर आगे बढ़ती है। यह बुद्धि जावन तत्त्व म, जीवन मधाय म प्रवेश करने वाला बुद्धि है। वह एक साथ कई काय करती है। भाव याथा म ठीक निर्माणा का वह सूचित करती रहता है सवेत्नात्मक उद्देश्य स प्रेरित होने के कारण जीवन अनुभवो म सूक्ष्म नष्टिफल को यह सामा-यौकरणा का रूप देती चलती है। तीसरी घोर अभिव्यक्ति निर्माण म वह सम्पादक-सशोधक का काम भी करता है अतएव वह

रूप रचना में भी सहायक होना रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विधा विभाजित मन की प्रक्रिया में तटस्थता नामक जो एक आत्म स्थिति पदा हो जाती है वह तटस्थता नामक आत्मस्थिति एक त्रियावान शक्ति है और क्रिया में गतिमान होने के लिए ही उपस्थित रहती है।

माक्सवादी साहित्य का सौन्दर्य-पक्ष एक प्रत्युत्तर'

माक्सवादी साहित्य का सौन्दर्य पक्ष शीघ्र के अन्तगत लिखते हुए मेरे मित्र गोरखनाथजी ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे सहमत होना मेरे लिए मुश्किल हो गया है।

गोरखनाथजी के लगभग यह जान पड़ता है कि वर्तमान चीनी साहित्य में व्याप्त जन मगल भावना से उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। यह शुभ संकेत है। इस बात में मैं उनसे साथ हूँ कि वह साहित्य जन मगल की भावना से अनुप्राणित होना के प्रतिरिक्त अधिक कलात्मक भी है।

किन्तु इसके आगे मेरे लिए उनसे सहमत होना मुश्किल हो रहा है। वे कहते हैं कि आये दिन चीन में पाठकों की बेतहाशा वृद्धि और विस्तार के साथ साथ नये लेखकों की जो एक वेधुमार भीड़ आगे बढ़ रही है उससे मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा के परिपोष के लिए खतरा है। खतरा शब्द का प्रयोग उन्होंने नहीं किया है उनके कहने का तात्पर्य लगभग यही है। वू येन नामक चीनी लेखक ने नये लेखकों की इस वेधुमार भीड़ का विरुद्ध यह जो स्थापना की कि इस भीड़ के कारण कलात्मक सौष्ठव की रक्षा नहीं हो रही है और कला हीन साहित्य उत्पन्न हो रहा है—इस स्थापना के समर्थन में गोरखनाथजी ने अपने लेख में दूसरे प्रश्न भी उठाये हैं।

सबसे पहले तो मैं यह कहना चाहूँगा कि प्रत्येक युग में साहित्य को नये विषय प्राप्त होते हैं। सचमुच युग ही विषयों का संचालन करता है। साहित्य विषयों से युग का आवश्यक सम्बन्ध है। किसी युग विशेष में विशिष्ट विषयक्षेत्र

१ वमुझा माच ६ के अंक में श्री गोरखनाथ ने चीनी साहित्य के सम्बन्ध में यह स्थापना की थी कि आम माक्सवादी साहित्य सौन्दर्य-पक्ष की अवहेलना करता है। यह निबन्ध उस लेख का प्रत्युत्तर है।

आवृत्त और पुनरावृत्त हान हैं। उन विषयों के प्रति लेखक-गण जो दृष्टिकोण विकसित करते हैं उनमें भी बहुत सी मूलबद्ध समानताएँ होती हैं।

आज चीनी साहित्य में जो विषय प्रचलित हैं वे उस देश के युग के अनुपम ही हैं। ये विषय सामाजिक जनता के अतिशय निकट हैं इसलिए कि वे उठीं के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। विषयों की इस अतिशय निकटता के फलस्वरूप आज वहाँ की सामाजिक जनता साहित्य-क्षेत्र में सक्रिय हो उठी है। साहित्य क्षेत्र में सामाजिक जनता तभी सक्रिय हो उठती है जब उनमें कोई व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन चल रहा हो—एसा आन्दोलन जो उनमें आत्म गौरव और आत्म गरिमा को स्थापित और पुनः स्थापित कर रहा है। किसी जमाने में हमारे भारत में भी (भिन्न परिस्थितियों में ही क्या न सही) ऐसा ही हुआ था दलित पीड़ित और गरीब वर्गों के लोग साहित्य क्षेत्र में सक्रिय हो उठे थे। हमारे भक्ति आन्दोलन के पूर्वाध का स्मरण कीजिए। उस समय भी शास्त्री-कलाकारों और पण्डित कवियों ने उनका विरोध किया था, क्योंकि साहित्य सौंदर्य के उनके मानदण्डों के अनुसार गरीब लोगों का वह साहित्य तुच्छ और विद्रुप था।

आज चीन में मुक्ति के वातावरण में, जनता सात ज रही है और वह अपने दश के पुनर्निर्माण में लगी है। उस देश में आज जो युग है उसने अनुसार वहाँ के साहित्यिक विषय हैं। ये साहित्यिक विषय जनता के अत्यधिक निकट होने से तथा उसी के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण वह (जनता) स्वयं अब साहित्य क्षेत्र में सक्रिय हो उठी है और वहाँ के जन क्षेत्र व्यापक सांस्कृतिक सामाजिक आन्दोलन से अनुप्राणित हो उठे हैं। इस सांस्कृतिक आन्दोलन की एक अभिव्यक्ति के रूप में, स्वयं जनता के हाथों से गढ़ा हुआ, नया साहित्य प्रस्तुत हुआ है। चूँकि जनता स्वयं साहित्य तैयार कर रही है इसलिए लम्बा ही वेगुभार भीड़ होना स्वाभाविक ही है साथ ही यह भी स्वाभाविक है कि जनता द्वारा उत्पन्न गारा का सारा साहित्य, वस्तुतः उच्चरोंट का न हो।

इस साहित्य का कलात्मक स्तर और ऊँचा उठाने का क्या उपाय है? क्या इसका उपाय यह है कि उन लोगों को साहित्य प्रकाशन की सुविधा दी जाय, अथवा यह कि उनका लेखन-वाय निषिद्ध ठहराया जाय अथवा यह कि जनता में जो सांस्कृतिक आन्दोलन चल रहा है उसमें सक्रिय भाग लेकर लेखकों का रचनात्मक आलोचना की जाय?

आलोचना का कार्य केवल गुण-दायक विवेचन ही नहीं है बरन साहित्य का नेतृत्व करना भी है। आलोचना का घम साहित्यिक नेतागिरी करना नहीं है बरन जीवन का ममन बनना और उसी विधापता की सन्धान में कला ममीशा करना भी है। साहित्य-नेतृत्व करने के लिए तो जीवन ममनता का और भी अधिक आवश्यकता है। मक्षेप में, सामाजिक जनता के और विशेषतः जनता के बीच से आय

हूए लखको के सादृष्टिक सांस्कृतिक स्तर तथा उनके कलात्मक-स्तर और भी अधिक विवक्षित करना आवश्यक है।

यह काय मुख्य है। यदि इस काय को लक्ष्य बनाकर वू येन द्वारा आलोचना का गई होता और उस आलोचना में कलात्मक स्तर के विकास के उपायों को निर्देशित किया गया होता तो बात भ्रमलग था। किन्तु लेखकों की बाढ से मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा को खतरे का नारा देकर जो आलोचना की जायगा वह न केवल निरर्थक और भ्रमगत होगी वरन वह उस व्यक्तिवाद की मूर्खता करेगी कि जो व्यक्तिवाद जनता को ठोर समझता है मूल समझता है।

यह सही है कि साहित्य रचना में प्रतिभा का बहुत बड़ा स्थान होता है। किन्तु वास्तविक प्रतिभावान बौन कहाँ तक है इसका निष्पन्न महान् उपलब्धिया के पूर्व नहीं पश्चात् होता है। पूर्वतर स्थिति में तो सभी लेखन गुणवान् होते हैं। सच तो यह है कि समय की कसौटी पर जिस लेखक का साहित्य परा उतरगा वहां प्रतिभावान कहलायगा। सविन क्या इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम सभी को लिखने दें ऐसा को भी कि जो पेशेवर साहित्यिक नहीं हैं।

किन्ती साहित्य में पेशेवर साहित्यिकों के कारण, जीवन का ध्विष्य प्रकट नहीं हो पाता द्वि-दगी व असली तजुबों नहीं का पात और वे जीवन मूल्य स्थापित नहीं हो पाते कि जिनके लिए साधारण व्यक्ति सपथ करता है। साहित्य में जीवन के जनन प्रतिबिम्ब अपनी सम्पूर्ण निष्पन्नता के साथ उतर नहीं पाता। पेशेवर साहित्यिकों में जो साहित्यिक योग्यता है यदि वह सचमुच योग्यता हाता—तो देश का कल्याण हो जाना।। सच तो यह है कि एमी योग्यता—त्रिमम मंगल प्ररणा न हा त्रिमम तोर कल्याण व लिए त्याग का भावना न हा त्रिमम जा-जीवन की अनर्थापना को देने की दृष्टि न हो—

दुगता धय याने है कि मैं यान्त्रिक शक्ति त्र योग्यता का अनार कर रहा हूँ। यो योग्यता विमाना में भी हो सकता है गरीब मध्यम म भा मजदूरों में भी। उमक लिए यो आवश्यक नहीं है कि साहित्यकारों द्वारा अनुमोदित धोर ममणित नार साहित्यिक बनना आवश्यक है। त्रिम देग म साहित्यकारों का एर असल बग होता है वत्र देग भयानक विपमताया म पाडित हाता है यत्र जिविता है। साहित्यकारों व बग म भा यान्त्रिक प्रतिभावान साहित्यिक बन पाए होते हैं।

किन्तु जनता में एक एक को यह धारणा है कि वय त्रिम। उमका रचना यदि मरमण्य हार का है तो उमका प्रशान्त शान म का रखाव न। शाना का-। धार व न का शाना-उ जनता यदि सामान्य को-ि का रचना करती है तो इमका कारण यह है कि मनाक-का मंग-ि का वही इतना अधिक विनाम

नहीं हुआ है जितना कि अन्य देशों में मर्दियों से चली आ रही पूँजीवादी व्यक्तिवादी सम्प्रतिष्ठा का। संक्षेप में, साहित्य का वहाँ एक नया आधार पर विकास हो रहा है। उसके सम्पूर्ण उत्कथ के लिए समय लगेगा।

ध्यान दीजिए उम्र जमाने पर जब हमारा यहाँ भारतेन्दु युग था। तब हमारी कृतियाँ का क्या साहित्यिक-स्तर था? जब खड़ी बोली में बड़े पमाने पर कविताएँ लिखनी शुरू हुई, तब ब्रजभाषा वाले ने 'बलात्मकता' के नाम पर ही उसका विरोध किया। जब प्रयागवादी कविता शुरू हुई तब बलात्मक स्तर के नाम पर भी उसकी भीषण आलोचना की गई। ऐसी स्थिति में किसी नयी प्रवृत्ति का जो प्रारम्भिक चरण होता है, वह आपक्षिक रूप से, तथा पिछली उपलब्धियाँ की तुलना में अविक्सित और अपुष्ट ही होता है।

ऐसा नयी प्रवृत्तियों का प्रत्येक विरोध उस प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित रचनाओं में से जो प्रतिमाधारण या हीन काँटि की होती है उन्हीं ही लक्ष्य में रखकर, उन प्रवृत्तियों की तबनी उपलब्धियों की आर ध्यान देने हुए, उम्र प्रवृत्ति का विरोध करता है तथा पिछली स्वदेशिक प्रवृत्तियों की अथवा वर्तमान विदेशिक प्रवृत्तियों की उपलब्धियों का उदाहरण सामने रखकर, ऐसी वर्तमान स्वदेशिक प्रवृत्तियों की आलोचना करता है जिनका अभी पूरा विकास और उत्कथ नहीं हुआ है। उसे विरोध का एकमात्र उद्देश्य नयी प्रवृत्ति को हतोत्साह करना है।

रूस, फ्रांस, ब्रिटेन अमरीका बहुत बड़े देश हैं। वहाँ अनगिनत पत्र-पत्रिकाएँ हैं और उनमें लिखने वाले लेखक अनगिनत हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ लेखकों में गहन स्पर्धा है। अच्छे लेखकों का भी ज़रा देर से मायता मिलती है। फिर भी, उस स्पर्धा की परीक्षा में गुजरकर सफल होने वाला साहित्य अपने प्रभावोत्पादक गुणों के कारण ही, न केवल उन देशों में बरन विदेशों में भी—अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय पमाने पर यशस्वी हो उठता है। वहाँ का 'मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा' को लेखकों के अनगिनतपन में डर नहीं लगता। तो ऐसी स्थिति में, चीन में सामान्य लेखकों के अनगिनतपन द्वारा 'मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा' वाला का खतरा क्यों महसूस होना चाहिए?

निष्कर्ष—(अ) मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा वालों को वस्तुतः यदि कोई खतरा है तो अपने भीतर से है बाहर से नहीं। यदि उनकी प्रतिभा सचमुच मौलिक तथा विशिष्ट है तो अपने प्रभावोत्पादक गुणों के फलस्वरूप वह स्वयं उदाहरण-स्वरूप बन जायगी, यहाँ तक कि वह किसी उज्ज्वल परम्परा को जन्म देगी। यदि वह मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा के नाम पर पनपने वाला मात्र एक साहित्यिक अहंवाद है तो इतिहास उससे क्या व्यवहार करेगा।

(ब) कोई भी नई साहित्यिक प्रवृत्ति साधारणतः गुरुत्व अपरिपक्व ही होती है। उस साहित्यिक प्रवृत्ति की व्यापक अपरिपक्वता की भत्सना करने के बजाय,

उत्तर अधिनायिक विभाग में योग देकर उन अधिन परिष्कृत कथा का धारण करता है।

(ग) चीन का तथा सांस्कृतिक साहित्यिक आन्दोलन जनता का धनायक है। जहाँ क शासन प्रतीय प्रयाग म हा गई मन्त्राया का धारि भावि हागा।

यह उताव मन्त्र है कि चीन म आज जा मारा साहित्य उत्पन्न हा रग है उसम वसात्मता का एन्म प्रभाव है। इसके रिगता म कटास मग है रि पान म विद्यन दम धर्मो क भातर तुष्ट स्मरणाय उपनभियया भा रिगत्रमा है। अगर उतम रिगा ता अनुभूति के लान न हा मान प्रकार नाम धीर व निध्याग प्रतात हा ता यहा कथा जामणा रि देगा वात का उस साहित्य क मूल मातवीय उत्सवो मे वार्दी मगनुभूति मग है।

हमर यह बात भूलो की नहीं है कि मायागण लेगा वग वहुधा ममन पाठन-वग होना है जा अभिव्यक्ति की अधिनाया क वारण लगन रूप म परिष्कृत हो जाता है। साहित्य प्रयासा द्वारा पाठा स्वय माहित्य ममन बनता है। एगा स्थिति म एा व्यापन लगन वग क रूप म जो एर विशान प्रवुड पाठन वग है उसना साहित्य क विकास म बहुत बडा माग होना है। चीन क मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा वाता को वह योग प्राप्त है—उशर्तेवि के उसको स्वीकार करें किन्तु यदि क अपनी उच्चतर स्थिति के शिखर से बठकर उन पत्तलवासिया को धवहेलना की दृष्टि से देखें तो इमरु लिए कोई क्या करे। सो-दयवाट के नाम से प्रचलित व्यक्ति बढ़ता की जो एक प्रवृत्ति है उस हम उस सौन्दर्यवाद से अलग करके देखते हैं जिसका सम्बन्ध व्यापन प्रभावा त्पादकता क साहित्यिक गुण स है। अतएव हम कलात्मकता के उन समथका क साथ है जो वस्तुतः समर्पित भाव से जनता म म आय हुए लखका के कलात्मक स्तर को ऊँचा उठाने की तत्पर बुद्धि रखते हो तथा अपन स्वय की साहित्य रचना द्वारा वास्तविक कलात्मकता का माग प्रशस्त करत हा, किन्तु हम कनात्मकता क उन समथका क विरुद्ध हैं जो जनता म से आय हुए लखका की धापेक्षिक अपरिपक्वता का निदर्शन प्रदर्शन केवल इसलिए करते हैं कि उनके साहित्यिक शिखरवाद की अर्थात् व्यक्तिवादी मास्त्रुनिकता की रक्षा हो। साहित्य क्षेत्र में सो-दयवाट और कलात्मकतावाद का एमा एक प्रवृत्ति रही है जिसने लखका का सामाज्य जन अनुभव से अलग कर लिया है। एसी स्थिति म जब गोरखनायजी मौलिक तथा विशिष्ट प्रतिभा को अनतिशिक्षित और अननिसस्वृत साधारण लेखको के कटास्ट मे—विरोधात्मक भूमिका म रखना चाहते हैं तो मर मन म वैसे शका उठना स्वाभाविक हा है।

गोरखनायजी न कहा कि इस देश म आज टान्स्टाय जैसे लेखक पदा क्या

नहीं होत ।। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि पूँजीवादी-समाजवादी समाज रचना के अनन्तर रूस में जो एक उच्चतर समाजवादी समाज रचना स्थापित हुई ता साहित्य को भी उसी हिसाब से नये समाजवादी युग में श्रेष्ठतर होना चाहिय था । मुझे लगता है कि उनका आशय उपयुक्त ही है यद्यपि वह कुछ प्रच्छन्न है ।

साहित्येतिहास का विद्यार्थी यह जानता है कि युग परिवर्तन के साथ ही, साहित्य-क्षेत्र में जो नये विषय अवतीर्ण होते हैं उनकी गहन कलात्मक अभिव्यक्ति दीर्घ साधना का फल होती है । यह साधना एक व्यक्ति या एक पीढ़ी की नहीं बरन कई पीढ़ियों द्वारा की गई होती है । जब उन विषयों का लेकर कई पीढ़ियाँ खप जाती है तब कही कला विलक्षण उत्पन्न को प्राप्त हाती है जैसे कि वह टाल्स्टॉय के साहित्य में दिखाई पडी । इसका अर्थ यह नहीं है कि रूस का शान्ति उत्तर साहित्य श्रेष्ठ नहीं है । दुनिया के कई बड़े-बड़े लेखक देशों के साहित्य से वह आज भी सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकता है । उस साहित्य का प्रभाव यूरोप और अमरीका के विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्टतः परिलक्षित होता है । मक्सिम गार्की को हम छोड़ भी दें तब भी उसके अनन्तर अलकजी टाल्स्टॉय शोलोखाव आस्ट्रोवस्की, बांदा वासिलेवस्की, मायकोवस्की, वेरा पेनोवा गेलिनिना विशनेवस्की स्वारदोवस्की, पास्तावस्की एलेक्जण्डर गोचेर, लिओनिद लिओनोव, विश्वख्याति प्राप्त कर चुके हैं । फिर भी यह निःसर्कोच रूप से कहा जा सकता है कि भूतकाल के शिखरों की तुलना में रूस में आज का साहित्य अपनी सम्पूर्ण उच्चता का अभी नहीं पहुँचा है ।

किन्तु, क्या ब्रिटेन अमरीका या फ्रांस का आज का साहित्य उनके पूर्वतर शिखरों की तुलना में तुल्यतर और उच्चतर है ? क्या फ्रांसीसी साहित्य न उत्तरोत्तर उदरूप की सीढियाँ पर चढ़त हुए राम्बरोला को बहुत पीछे छोड़ दिया ? यह विवादास्पद विषय है । मैं पूछना हूँ कि छायावाद और प्रगतिवाद के अनन्तर, प्रयोगवादी कविता ने अपने पूर्वतरों से उज्वलतर उच्चतर सफलताएँ प्राप्त की ? यदि नहीं तो इसका अर्थ यह है कि हमारी विचार धारा में कोई खामी है या खामी विचारधारा में न हाकर किसी और जगह है ।

गोरखनाथजी चीन के साहित्य को लेकर साम्यवादी जगत् के साहित्य पर उतर आने हैं, और फिर उन साहित्य की तथाकथित श्रीहीनता का दाप मानसवाद के मध्ये मदन की कोशिश करते हैं ।

अमरीका, फ्रांस, ब्रिटेन भारत आदि सभी देशों में साहित्यिक लेखन खूब ही होता है । सामान्य श्रेणी का साहित्य, सत्या की दृष्टि से बहुत होता भी है । किन्तु हम उन उन दशों के साहित्य की सफलता, सिर्फ चोटी के कलाकारों में ही देखते हैं । हम अमरीकी साहित्य की श्रेष्ठता को सिकलमर लेविस, अपटन

सिन्धुलेखर एजरा पाउण्ड हेमिंग्वे आदि क्लारारा के साहित्य से ही मापा है। ता यही सुविधा हम रूसी तथा चीनी साहित्य की श्रेष्ठता का मापन के लिए उनसे चांती के क्लारारा का हा क्या न दें। क्या हम रोडमरी घडल्ल से पत्त हागे याले अमरीकी साहित्य से उस देश के साहित्य की श्रेष्ठता का मापन है। नतई नहीं।। तो हम रूस और साम्यवादी दशा में घडल्ल से पत्त हात वान साहित्य के स्तर की प्रति साधारणता को ध्यान में रखकर उम दरिद्र क्या कहें ? क्या न हम उसकी मत्र-स्वीकृत उपलब्धिया की उच्चता मापकर उम साहित्य की श्रेष्ठता स्वीकार करें ?

आश्चर्य की बात यह है कि एक आर गाररातायजी मौनिक तथा विशिष्ट प्रतिभा की गृहाई दते हैं किन्तु वे उन प्रतिभावा की ओर ध्यान नहा देन जिन्होंने उन उन देशो के साहित्य का सिर ऊंचा किया। वरन् वे यह मूचना देत से प्रतीत होत है कि जन मगन की भावना से प्ररित साम्यवादी साहित्य प्रचारात्मक है अर्थात् दूगरे मन्म में वह क्लारहीन है श्रीहीन है अनुभूति प्रबण ननी है। साम्यवादी जगत में सबसे अधिक विकसित साहित्य रूस का है। क्यों न वे उम साहित्य का देखकर यह ठन्रायें कि मार्क्सवाद साहित्य को किस ऊंचाई पर ले गया। मार्क्सवाद मनुष्य को कृत्रिम रूप में बौद्धिक नहीं बनाता है वरन् उम ज्ञानालोकित आदश प्रदान करता है। मार्क्सवाद् मनुष्य की अनुभूति को पानात्मक प्रकाश प्रदान करता है। वह उसकी अनुभूति को बाधित नहीं करता वरन् बोधयुक्त करते हुए उसे अधिक परिष्कृत और उच्चतर म्थिति में ला देता है। सक्षम में मार्क्सवाद् का मनुष्य की सर्वेत्न क्षमता से कोई विरोध नहीं है न हो सकता है।

गोरखनाथजी ने मार्क्सवाद से सम्बन्धित सौन्दर्य शास्त्र की बात उठायी है। उनकी बातों से कुछ ऐसा जान पडता है कि मार्क्सवादी साहित्यिक विचारको न सौन्दर्य शास्त्राय प्रश्ना पर या तो विचार नहीं किया है और यदि किया भी है ता वह विचार सतही ढंग से हुआ है। उनके विचार में शायद यही कारण है कि मार्क्सवादा साहित्य क्लार में प्रचारात्मकता अधिक और सौन्दर्य-तत्त्व कम हागे है। इसलिए गोरखनाथजी का अनुरोध है कि मार्क्सवादी साहित्य विचारन सौन्दर्य शास्त्रीय प्रश्नों पर और गृहाई से विचार करें।

इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि मार्क्सवादी साहित्य विचारका ने सौन्दर्य सम्बन्धा प्रश्ना पर विस्तृत रूप से विचार किया है। रूस में इन प्रश्ना पर विशेष चिन्तन हुआ है। जिस देश में उज्ज्वल साहित्य की एक विज्ञान परम्परा हा उस देश में सौन्दर्य शास्त्राय प्रश्ना पर विचार जाना स्वाभाविक है। उनके तत्सम्बन्धी विचार हमारे लिए बहुत कुछ उपादेय हैं। हमने भी साहित्य शास्त्र के अतगत कई समस्यामा पर बहुत कुछ चिन्तन किया है। मेरा अपना ख्याल

है कि हमारे तत्सम्बन्धी विचार भी उनके लिए उपादेय हो सकते हैं। एक तो वह कलाकारों ने स्वयं ही कलात्मक सौंदर्य के सम्बन्ध में मूल्यवान् विचार प्रकट किये हैं। चूँकि वे विचार अनुभव प्रसून हैं इसलिए उनका अपना एक विशेष महत्त्व है। तुगनव टाटस्टाय और मक्विमम गोर्की से लेकर इलिया एहरन बग और पास्टॉरस्की तक ने इस सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। एहरेनबग के लेख काफी प्रसिद्ध हो चुके हैं। उसी प्रकार पास्टॉरस्की की 'गोल्डन फॉर्नो' नामक पुस्तक अत्यन्त पठनाय है। इसके साथ ही समय समय पर 'सोवियत लिटरेचर' नामक मासिक पत्र में, तत्सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार प्रस्तुत होता है। उनसे बहुत कुछ जाना सीखा जा सकता है। मेरा है कि सौंदर्य शास्त्र सम्बन्धी अग्र्य उत्तमोत्तम पुस्तकें हसी जवाब में धरी रह जाती हैं और वे अज्ञेयता में अनुवादित होकर हम तक पहुँच नहीं पातीं।

सौंदर्य शास्त्र एक विचित्र शास्त्र है। वह वस्तुतः एक मूल्य शास्त्र है आदर्श शास्त्र है। चूँकि हमारे जीवन की प्रबल दिशाएँ और तत्सम्बन्धी जिज्ञासाएँ विभिन्न युगों में बदलती रही हैं और बदलती रहेंगी, इसलिए इस शास्त्र का वसा विकास नहीं हो पाता जिस प्रकार रू उदाहरणतः भौतिकशास्त्र का है जिसमें परवर्ती विचारक पूर्ववर्ती चिन्तकों के सिद्धान्तों को या तो नई व्यवस्था में बाँधता है अथवा उसके कंधे पर खड़े होकर नवनीन विकास के परिदृश्य देखता है। सौंदर्य शास्त्र नीति शास्त्र आदि मूल्य शास्त्र होने के कारण, वे सिद्धान्त मुख्यतः प्रणालियों के समवाय के रूप में प्रस्तुत होते हैं। अतिम नियम बनाने का भार हम पर ही रह जाता है, कि उनमें से कौन सी बात हमारे लिए स्वीकारणीय है और कौन ना ल्याज्य। आधुनिक सौंदर्य शास्त्र के क्षेत्र में ता सिद्धान्तों का एक जगल का जगल खड़ा हो गया है।

सौंदर्य शास्त्र के सम्बन्ध में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसके सिद्धान्तों में परिवर्तन होना रहता है और किसी युग में किसी विशेष प्रवृत्ति की औचित्य स्थापना के लिए वैसे सौंदर्य सिद्धान्त बनते और बनाये जाते हैं। आज की स्थिति तो यह है कि आधुनिकतम चित्रकला को समझने के लिए सबसे पहले हम उसकी सौंदर्य शास्त्रीय मायताओं का ही अध्ययन करना चाहिए।

किसी प्रवृत्ति की औचित्य-स्थापना के हेतु जिस सौंदर्य सिद्धान्त का जन्म होना है, वह सिद्धान्त उस प्रवृत्ति के ह्रास के साथ ही निबल हो जाता है। आज पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हम लोग जिस भाव और उसी जिस अभिव्यक्ति में सौंदर्य देखते हैं, उसका कारण यह है कि हमारी मन प्रवृत्तियाँ भी उसी भाव के अनुकूल हैं। साधारणतः आत्मोमुख साहित्य धारा में सौंदर्य का जो अर्थ हो सकता है वह अर्थ बहिरंतर ममत्त्व जावना मुख साहित्य धारा में परिवर्तित हो जाता है। फलतः जिसे हम सौंदर्य कहते हैं उसमें कुछ लोग अप्रसन्नता

या प्रकाशिता तथा बाधाग्रस्ता नैव है, और व त्रिम गीर्वाण है उमम १-
 प्रयोगगत का सूचना है। यह एक वास्तविक मनीषादिन तत्त्व है। हम—
 हम समय साहित्य सत्त्विका का इत्यादि विभाग नहीं है कि हम यथा
 प्रकृतियों और अभावों धारणाया और अभिव्यक्ति के चरे म उक्त मनुष्य
 धर्म तथा कभी कभी विशेष प्रकृति के साहित्य की क्षमताओं का धारण करने और
 उन क्षमताया का महत्त्व म परभावकर उमम सामान्य भी जानें ।

भारत म प्रकृतियों का नाम शमी तथा चीना साहित्य—पत्रिकाया म प्रकाशित
 साहित्य हमका उक्त वादि का नहीं होता यह कहा का प्राकररता नहीं। उन
 पत्रिकाया म प्रकाशित साहित्य को देखकर उन उन देगा की प्रकृत उनतगिया
 के धार म सापता प्रकृता होता। निम्न भाग्य क निम्न भाग्य दुःखमश्रुत
 साहित्यका घट ही होता है। उनी म नाम म उम दम क साहित्य का धरणा
 या धरणाया पचाती जाती है। कि पत्र-पत्रिकाया म निरंतर निरन्तर यान
 साहित्य से। किन्तु—और यह बहुत बड़ा किन्तु है—यत्र पत्रिकाया म प्रकाशित
 साहित्य और उमके सत्त्व साहित्य के विभाग म प्रकृत प्रकृता द्वारा याग दन
 है। उक्त सूचित होता है कि राष्ट्र की प्रधान प्रकृतियों और प्रकृत क्या है ?
 यह आवश्यक है कि म प्रकृतियों स्वस्थ और बलवाणकारी ह। इस आवश्यकता
 से बौन इनकार करेगा ? इस आवश्यकता को ध्यान म रखकर काम कराने की
 जरूरत है।

मैं गोरमनाथजी को धन्यवाद देता हूँ कि उनका लेख ने मुझे अपने विचार
 प्रकट करने का लिए प्रोत्साहन दिया। गोरमनाथजी का सदा सद्भावनापूर्ण
 या बुनियादी तौर पर। इसीलिए मैंने उत्तर देने का साहस किया। उत्तर देते
 समय, मैं इधर उधर अपने विचारों म भटक गया हूँ। तबिन इसमें मुझे कोई
 हानि मालूम नहीं होती।

साहित्य के दृष्टिकोण

साहित्य को किस दृष्टि से देखना चाहिए ?—इसके उत्तर के लिए हम उन सभी दृष्टियों पर विचार कर लें जिनसे अब तक लोग साहित्य को देखते आये हैं। हम उन दृष्टियों की साधारण गणना न कर उन दृष्टियों के मूल पर भी सोचने चलें, और इसी तरह उनके सापेक्ष महत्त्व को भी निश्चित करते चलें।

साधारणतया साहित्य के दो पहलू रहे हैं। एक तो वह जिसमें मनोरजन हो और दूसरा वह जिसमें हम अधिक मानवीय होते चलें। पहला केवल मनोरजन ही मनोरजन है उसके आगे कुछ नहीं और दूसरा किसी आदर्श को लेकर चलता है।

पुराने समय में भी एक साहित्य केवल मनोरजन के लिए लिखा जाता था, जिसमें वरुण चमत्कार और वरुण चमत्कार का बाहुल्य था, और दूसरा वह था जिसमें रसोद्रेक का उद्देश्य मनुष्य को अधिवाधिक मानवीय करते चलना था। चूंकि मनोरजक साहित्य का उद्देश्य अत्यन्त सामयिक है इसलिए हम दूसरे प्रकार के साहित्य पर जिसमें किसी आदर्श को लेकर चलना होता है, विचार करते चलें। और इन्हीं आदर्शों पर विचार करते हुए हम उन सभी दृष्टियों का पता चल जायगा जिनसे साहित्य देखा जाता है।

यूरोप में उपन्यास साहित्य ने साहित्य को विविध कल्पना (Conceptions) को जन्म दिया। खासकर फ्रांस साहित्यिक विचार धारा का सबसे अधिक जिम्मेवार है। रोमान्स, जिसमें सामयिक मनोरजक साहित्य अधिकांश में था, फ्रांस के उपन्यासों का मुख्य विषय रहा। रोमान्स जसा कि वह शेली में या कालिदास में पाया जाता है अपनी सचाई के कारण अपनी आंतरिक भाव प्रवणता के कारण आदर्श का और ही उमुख है। दूसरी तरह का रोमान्स, जो अधिक बाहरी है और केवल हमारी कल्पना को ही तप्त करता है, साहित्यिक आदर्श के निम्न नहीं है। कुछ कुछ इसी तरह का रोमान्स फ्रांस में प्रचलित रहा। कथा-कहानी में स्त्री पुरुष प्रेम, जिम्मेवो असलियत से कोई सीधा वास्ता नहीं था, कल्पना को तप्त करने के लिए लिखा गया।

इस उपदेशवाणी या आत्मशुद्धि साहित्य के खिलाफ बगवत की कलावाद न। इस स्वतंत्र ने 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त स्वीकार किया। इनमें बाह्य सौन्दर्य का धार अधिष्ठान था। साहित्यिक टक्कीय विशेष रूप से प्रकृतित हुआ और साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन माना गया।

यह कलावाद प्राण-जीन था और जल्दी ही खत्म हो गया। इससे अधिष्ठान तुष्ट और संप्राण इन्धन का सामाजिक साहित्य था। इन्धन से बहुत लोग प्रभावित हुए। बर्नाडशा और गाल्सवर्दी न समाज की आलाचना की। इधर विनाय और भौतिक सम्भ्यता ने समाज में नया समझाएँ उत्पन्न की। साहित्य इन समझाओं से अछूना नहीं रह सका। इन पर विचार उपयासों और अर्थ रचनाओं द्वारा किया गया। परिणामतः प्रचारवाणी स्कूल गढ़ा किया गया। प्रयोग के मना बचानिक अन्वेषणा से साहित्य भी प्रभावित हुआ और तब से शुद्ध मनोबचानिक साहित्य का जन्म हुआ।

इतना निम्न जान पर यह न समझना चाहिए कि किसी भी तरह का खलन इन स्कूलों में बघ गया है। जीवन किसी भी दायरे में बघ नहीं सकता। और जहाँ जहाँ जावन के प्रति मर्चाई प्रकृत की गयी है वहाँ वहाँ कला अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट हुई है। किन्तु जहाँ विसा 'वाद या बौद्धिक विश्वास से जीवन को देखा गया है वहाँ जीवन की ताजगी और उसका प्रवाह सगात लुप्त हो गया है। जिस तरह यथायवाद के सुन्दर-से-सुन्दर नमून मिलते हैं मध्यकालीन विकटर ह्यूगो के 'लामिजरेबुल्म (Les Misérables) या आधुनिक मार्किम गार्बी के 'मदर (Mother) में उसी तरह आत्मशुद्धि के भी सुन्दर से सुन्दर नमूने मिलते हैं।

परन्तु लोग आलोचना करने समय किसी खास 'वाद' के दायरे में बाँधकर ही साहित्य का देख पाते हैं। यह तरीका एकदम गलत है। साहित्य के 'वाद' दार्शनिक या बचानिक प्रणालियाँ नहीं हैं वे केवल साहित्य के दृष्टिकोण हैं।

कोई भी दृष्टिकोण याना कोई भी साहित्यिक 'वाद' तभी तक ठीक है जब तक वह जावन का चेतना से परिपूर्ण है। यथायवाद जिस आजकल बगवती प्रगतिवादी कहते हैं तभी तक ठीक है जब तब उमका लयक अपनी स्फूर्ति वास्तविक स्थिति से पाता है। प्रश्न स्फूर्ति का ही है केवल प्राणीय स्थिति देख भर लन से, या गावा के वातावरण में लयक के रहने से सच्च यथायवादी साहित्य का जन्म नहीं हो सकता, जय तक लयक की आत्मा प्राणीयता में स्वयं नहीं पनपता और वहाँ की क्रिया प्रतिक्रिया से प्रवहनीय होकर साहित्य में नहीं उतरती। औरी बार-बार एक सच्चा प्रतिवाणी कलाकार या कथानि उमकी आत्मा की भावना के पाछे उसका स्वयं का जावन था, जो कि उसका आस-पास की परिस्थिति से पूरा-सुसगत और उसका प्रतिनिधित्व करता था।

जिग तरह सामाजिक श्रमा में आपन मानस धारणा मध्याध्याय में जानी है उगी तरह अपना सम्पूर्ण परिस्थिति में धरना भावनाओं में मगार कोय में पना मानस धारणा भावना प्रदान धीरे धीरे प्रदान जिग साधित करी है ना जाता है । याग्य में देगा जाय ता रामांग धीरे मध्याध्याय में बस परिस्थिति का भेद है । यथाध्याय भा उतना ही भाषा प्रधा धीरे मध्याध्याय मरता है जिगा की मली । परन्तु उगा दृष्टिकोण बहिर्मुख है बाह्य साहित्य का मध्य में उल्ला उगरी भाषाओं में धीरे रोमैटिव बनारार का दृष्टिकोण मदन आंतरिक जगत में प्रति है । यह मध्य धरना ही बनारार है ।

प्रतिश्रिया युग में हम दग पा है कि मध्याध्याय रोमैटिव में प्रति द्यमाय में दगा है परन्तु य मगत है । मनुष्य की प्रृति में क्या रामान का म्या नही है ? रोमास ता प्रयत्ना जावा धारा का Self assertion है । जिग तरह बाह्य श्रुतु में वृशो में धर तरह धीरे पून-पतियो का मृत्रन करता है बस ही बरी तरह धीरे स्त्री पुरुष में अन्तर्गत में रोमाग उल्ला करता है उनके स्वस्थ धरार में वह नय जावन बनारार मर मगता है ।

परन्तु व्यक्ति जितना सामाजिक है उतना ही व्यक्ति । कभा-कभा मध्याध्याय को भी बविता लिगन की मूमनी है धीरे बलना प्रदान बलाकार का बटानियाँ धीरे लत । जब भावना प्रदान प्राणी बाह्य वास्तविकता की धीरे मुदता है धीरे अपनी सत्त्व ईमानदारी में यशीभूत होकर उसने प्रति अपना का जिम्मेदार टहरता है तभी से उस साहित्य की उत्पत्ति है जिसे हम धारणा साहित्य कह सकत हैं क्योंकि वह जीवन पर सोचने लगता है जीवन की Tragedies उमक विरोध धीरे निसर्गतिपाँ उसने मन में बठ जातो हैं । यह उनके विचारों से किता तरह छुटकारा नही पा सकता । वह उन पर सोचता है कुछ निष्कर्षों पर आता है धीरे उन सबका चित्रान बनता है । इस विशय प्रकार का बलाकार जीवन को समस्त रूप में प्ररुण करने की चेष्टा करता है धीरे यहा उसका मर्य है । हाडी रोम्यारोली धर ऐसे ही बलाकारों में स हैं ।

हमन इन तीन मुख्य बादी पर ही अधिक प्रकाश डालता है । भाय दृष्टिकोण समझने में अधिक कठिनाई का सामना नही करना पडता । दूसरे जगत का समस्त साहित्य अधिकतर इन तीन विभागों में ही बाटा जाता है ।

पर क्या कारण है युग के साथ साथ बला परिवर्तित होता चलता है ? इसने मुख्य हेतु दो हैं—प्रथम आंतरिक धीरे दूसरा बाह्य । बाह्य परिस्थिति जिग तरह बदलती चलती है उसी तरह साहित्यिक धारा भी अपनी दिशा मलता है । इनक उदाहरण आपकी किमी भी शब्द साहित्य में दृष्टिकोण हगे । हम इसको अधिक से अधिक बाह्य से प्रतिक्रिया बहेगे । पर एक एसी भा प्रतिश्रिया है जो आन्तरिक जगत में होती है जिसके कारण साहित्य की आन्तरिक

धारा में हलचल उत्पन्न होती है।

कला तभी तक जीती जागती रहती है जब तक कि लेखक का वष्य वस्तु के प्रति भावात्मक सम्बन्ध हो। इस प्रकार सोचना या विचार करना ज्ञान प्राप्त कराने के लिए एक साधन है, उसी प्रकार भावना कभी जीवन का ज्ञान प्राप्त करने का एक कलात्मक साधन है। भावनानुभूत ज्ञान ही कला का विषय है परन्तु जब हम कला का सच्चा दृष्टिकोण छोड़कर किसी दूसरे क्षेत्र में चल जाते हैं तब हम धीरे धीरे प्रतिक्रिया का आह्वान करते हैं। उदाहरण के लिए जब तब अपने रंग में मस्त होकर जीवन का ज्ञान सुनाता है, तभी तब वह कलाकार है, पर ज्ञान वह हमें उसके बौद्धिक दार्शनिक निगुण वाद के प्रति आस्था रखने के लिए आग्रह करता सा दीख पड़ता है वही वह कला का दृष्टिकोण छोड़कर दार्शनिक दृष्टिकोण के क्षेत्र में उतर आता है जिसके अलग नियम हैं और मूल्यांकन के अलग Standard हैं। उसी तरह पद्याकार शृंगार के साधन और उसके उपकरणों का Catalogue पेश करते हैं। यहाँ भी वही दोष है।

एक दूसरे प्रकार की आन्तरिक प्रतिक्रिया तब शुरू होती है जब भावनानुभूति के नाम पर हम उसी भावनाओं को दुहराते रहते हैं जो निष्प्राण हो गयी है, जहाँ जीवन की गति कुण्ठित हो गयी है। इस प्रकार साहित्य में वासीपन की उत्पत्ति होती है, जिसके विरुद्ध प्रतिक्रिया पौरन शुरू हो जाती है क्योंकि जीवन एक जगह रुका नहीं रह सकता।

क्यों एक कलाकार दूसरे कलाकार से ऊँचा कहा जाता है? क्या Walt Whitman या Browning को लोग Tennyson से ऊँचा समझते हैं? कबीर क्यों विहारी से ऊँचा है?

इस प्रश्न का उत्तर देते समय हम साहित्य में सतह का भी परिचय हो जाता है। कौन किस सतह से बोलता है यह सवाल है। रवींद्रनाथ जिस सतह से बोलते हैं, जिस 'यापक' जीवन के सर्वोच्च बिन्दु पर वे खड़े होकर देश-दशांतर के जन-ममुदाय के सामने अपना को प्रकट करते हैं, उस स्थान से अथवा अनुगामी कलाकार उदा बोल पाते। उतना ही उनमें वासीपन है जितना कि रवींद्र में ऊँचाई।

साहित्य का मूल्यांकन निश्चित करने समय हम सतह का ध्यान रखना ही पड़ता है। कवि का शब्द चयन, छन्दो-रचना, प्रकृतिवर्णन स्वभाव चित्रण अत्यन्त सुन्दर हो भी (जैसे कि टेनिसन में है) यदि ऊँची सतह नहीं है तो वह उच्च कलाकार नहीं कहना सक्ता।

समाज और साहित्य

साहित्य तथा पुग ४ परम्पर सम्प्रदाय के विषय में मूलभूत विभागाएँ एक एक विभागाएँ हैं जो एतिहासिक विभाग का मानवा प्रविद्याशास्त्र का साहित्यिक इतिहासिक व्यक्ति का अध्ययन करना होता है। निश्चय ही साहित्यिक विभाग का विभाग एका विभागाएँ का मूल जीवन का भाग है। यह अध्ययन आसम्भवी होता है। जो लोग साहित्य का जल गौरवों में मानवता के लिए एक धर्म मानकर चलते हैं वे समूहों मानव-मत्ता के प्रति विचारों में एक सत्य के अन्वेषण में हैं ही साहित्य के मूलभूत तत्त्व जो मानवा अभिप्राय तथा मानव विचारों में उनके एतिहासिक माग्यन अर्थात् दूसरे शब्दों में साहित्य के स्वयं विभाग तथा मूल्यांकन न कर पाए के भी अन्वेषण हैं। साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से मानव-मत्ता का अध्ययन है अतएव जो लोग बंधन ऊपर तौर पर साहित्य का एतिहासिक विभाग के अन्वेषण अथवा समाजशास्त्रात्मक निराक्षण कर चुकने में ही अपना इतिहासिक समझते हैं वे भी एक ही धर्म अन्वेषण कर रहे हैं। एक व्यक्ति साहित्य के एतिहासिक अथवा समाजशास्त्रात्मक परिवर्तन की बात करके चुप हो जाते हैं। आश्चर्यचकित तो इस बात का है कि आलोचना में एतिहासिक समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक गौरवार्थक विवेचना की सम्पूर्ण एकात्मता रहे। समालोचना केवल एक ही होता चाहिए और उक्त विविध पन्नाम मत एक ही सब सामान्य मूल श्रोत एक ही व्यवस्था एक ही कला चिन्ता से उद्भूत होने चाहिए। किन्तु यह सब तब सम्भव नहीं है जब तक कि हम एतिहासिक समाजशास्त्रात्मक तथा मानवता के मौर्यार्थक पर एक परम्पर सम्प्रदाय का स्वल्प विश्लेषण नहीं कर लेते।

मरे मत से किसी भी सौन्दर्य शास्त्र की नींव इस सम्बन्ध के स्वरूप विशेषण पर आधारित है। आदर्शवादी भाववादी सौन्दर्यशास्त्र सौन्दर्य की मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं के ही रूप रूपान्तरों का मूलभूत तथा चरम मानकर चलता है। सौन्दर्य का आम एतिहासिक अथवा आत्म का साक्षात्कार का साधन मानकर चलने वाले साधारण रूप से उसकी किसी अतीन्द्रिय मत्ता का आत्म प्रकाश भी मानते हैं।

इन आदर्शवादी भाववादियों में अनेक पथोपपथ हैं। वे मानव इतिहास की भी उसी ढंग से व्याख्या करते हैं जिस प्रकार वे जगत की आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं। फलतः उनके लिए इतिहास-समाजशास्त्र मनुष्य के परिवेश के रूप में ही उपस्थित होती है, वे उसे वह मूलभूत क्रिया नहीं मानते जो मनुष्य को उसके प्रारम्भिक पाशव-स्तर से उठाकर मानव-स्तर तक तथा उसके आगे भी लगातार उसकी उन्नति करती हुई आ रही है, जिससे उसकी आत्मा को वास्तविकता दी है। इस समाजशास्त्रीय ऐतिहासिक प्रक्रिया के बिना न मानव सम्बन्ध रह सकता है न वे गतिशील हो सकते हैं।

मानव चेतना वस्तुतः मानव सम्बन्धों से निर्मित तथा उनसे उदगत चेतना है। वे मानव सम्बन्ध समाज के विकास के साथ परिवर्तित होते रहते हैं तथा समाज की विशेष स्थितियों की उनमें विशेषताएँ प्रकट होती रहती हैं। विशेषता समुक्त यह मानव सम्बन्ध मानव चेतना का मूलभूत तत्व है जिनके आधार पर बला दशन धर्म तथा साहित्य की सृष्टि होती है। इन्हीं मानव-सम्बन्धों की अवस्था विशेष के अनुसार मानव की विश्व दृष्टि भी बनती है। निश्चय ही उसकी यह विश्व-दृष्टि उसकी चेतना का ही अंग है। इसका अर्थ यह नहीं कि चेतना हमेशा सच्चा बात ही कहती और जानती है। 'चेतना के भीतर काय कारण सम्बन्धों की अवनतिक्रम की अनेक कठिनाइयों से लबर तो बर्णानिक्रम के जितने भी रूप रूपांतर हो सकते हैं वे सभी सम्मिलित हैं। यदि मानव सम्बन्ध मनुष्य का आदिम अवस्था के रूप हैं, तो चेतना भी धर्म के रूप में जादू टाने तक ही रहेगी। जसा जसा समाज बदलता जाएगा, मानव सम्बन्ध भी बदलते जायेंगे तथा चेतना के रूप स्वरूप में भी परिवर्तन होगा। उसी के अनुसार धर्म का भी विकास होगा। बदवालीन धर्म मध्ययुगीन धर्म नहीं है। उसी प्रकार रोमन कालीन साहित्य आधुनिक साहित्य नहीं है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मानव सम्बन्धों के आमूल परिवर्तन के साथ ही चेतना स्वयं भी यथा प्रकृतापूर्वक आमूल बदल जाती है। चेतना के विकास के अपने गतिनियम हैं, जो सापेक्ष रूप में स्वतंत्र हैं। किन्तु उनकी स्वतंत्रता की सापेक्षता का बिनकुल साधा निरापत्तारो नियंत्रण सम्बन्ध वास्तविक मानव सम्बन्धों से है। सामाजिक उत्पन्न प्रणाली का प्रभाव के अनुसार, विविध वगैरे तथा उनके जीवन-भाषण का विशेष प्रणालियाँ निर्धारित करती हैं। एक वगैरे के भीतरी सामाजिक सम्बन्धों सभी मानव सम्बन्ध हैं।

चेतना के तत्त्व बदलते हैं उनकी अभिव्यक्ति भी बदल जाता है। किन्तु स्वयं चेतना मानव सम्बन्धों में परिवर्तन उपस्थित होने का बदलते लगती है। चेतना को हमारे विचारकों ने अधिस्तर व्यक्तिगत अर्थ में ही लिया है। वे चेतना पर सामाजिक प्रभाव भले ही मान लें किन्तु उसके वस्तु-तत्त्वा का सामाजिक नहीं

मानने । उसका प्रधान कारण यह है कि मनुष्य की प्रवृत्तियों के समूह का व मानव मन की सजा देते हैं । व यह नहीं देखते कि ये प्रवृत्तियाँ उन वस्तु-तत्त्वों के बिना जिन्दा ही नहीं रह सकतीं जिनके द्वारा व सम्पूर्ण परिवर्धित तथा विकसित होती है । यहाँ हम मनोविज्ञान की अथाह धाह म उत्पन्ना नहीं चाहते । केवल सधम म यह बताना चाहते हैं कि भूय प्यास काम वृत्ति तथा आत्म रक्षा का मूलभूत प्राणिशास्त्रीय प्रवृत्तियों का मानवी स्थिति विक्रम ऐतिहासिक समाज शास्त्रीय नियंत्रण रूपामन व बिना असम्भव ही है । यदि ये ऐतिहासिक समाज शास्त्रीय शक्तियाँ न होती तो मनुष्य बन्धु से व भी भी मानव न हो पाना ।

अपने आदिवासी म लेकर तो आज तक मनुष्य अपना भूय प्यास काम वृत्ति आदि की पूर्ति न केवल समाज के भीतर बरना आया व बरन समाज व द्वारा उन्हे परिपूत तथा सुसंस्कृत भी करता रहा है । यही कारण है कि अध मस्यावस्था म अथवा असम्यावस्था म जब समाज मातृ प्रधान था उत्पादित वस्तुओं के समान वितरण व बावजूद भूय प्यास आदि वृत्तियों का पूर्ति उस अविश्रमित समाज दशा की प्रतिबिम्ब रूप थी । उन वृत्तियों का पूर्ति का साधन सामाजिक था तथा उन पर नियंत्रण भी सामाजिक रहा उन वृत्तियों की पूर्ति प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से जीवन धारण के लिए आवश्यक होने हुए भी उस पूर्ति की पद्धति तथा पूर्ति-काय म जीवन मूल्य निहित थे । इन जीवन मूल्या व बिना भूय प्यास कामवृत्ति आदि की पूर्ति का कल्पना हा नहीं की जा सकती थी न आज भी वह की जा सकती है । अन्तर केवल इतना है कि आधुनिक पूजावादा दाने म—जबकि समाज शोषित और क्षापक—न दा प्रधान परस्पर विरोधा धर्मों म विभाजित हो गया है—भूय प्यास कामवृत्ति आदि प्राणिशास्त्रीय प्रवृत्तियाँ व मानवीय जीवन मूल्या म भी यन्त्रिवाणी उद्देश्य ममा गय है ।

प्रारम्भ म हमारा समाज अधसम्य अथवा असम्य था । उसम वय न थ । वह मातृ प्रधान था । व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था । व्यक्तिगत सम्पत्ति स्थापित हान पर हमारा समाज एक बड़ा भारी क्रान्ति के दौरान म म गुजरा । उमम विवाह मस्या स्थापित हुई ता व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरामत चलाने व लिए रची गई थी । समाज अब मातृ प्रधान न रहनर पितृ प्रधान बना । विवाह मस्या वनत ही मनुष्य म्त्रा का अधिकारी हुआ तथा पुत्र पिता व नाम से पटचाना जान लगा माता के नाम से नहा । स्त्री चिरन्तल व लिए पुण्या की दासी हुई । दास प्रणाली सामन्ता पद्धति तथा पूजावादा समाज रचना म स्त्री बराबर दासी हा बना रही ।

जा लाग रोमाम को सामाजिक सम्बन्धा से हटाकर उस मात्र व्यक्तिगत करार देते हैं व यह नया जानन कि रोमाम का अध मातृ प्रधान समाज म कुछ भा नहीं था । उन म्त्रिा उमका अधिक म अधिक यह अध हो सकती था कि कुछ

बाल के लिए एक पुरुष एक स्त्री से अधिक दृष्टिकोण अनुभव करे। किंतु उसका काम सम्बन्ध कितना ही से एक साथ रह सकता था और उन दिनों उसका प्रेमी कदाचित ही इस सम्बन्ध में कोई दूसरी राय रखे। इसका अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक नियम कम सुदृढ़ थे। सामाजिक नियम को भंग करने वाले के लिए अपना जान गवान का धाया हमेशा रहता था और अगर प्रेमी कोई दूसरे विजातीय कबीले का हो तो लडाइया छिड़ जाती थी। उन दिनों सबसे के जीवन-मूल्य अत्यन्त सुदृढ़ थे। अन्तर केवल यही है कि व आज के सामाजिक नियमों में भिन्न थे।

रोमांस का आधुनिक विकास पितृ प्रधान समाज के बिना असम्भव ही माना जाएगा। इस समाज के भीतर स्त्री पुरुष की आजीवन दामो बनाई गई। पुरुष स्त्री के सौख्य पर मुग्ध होकर उससे विवाह कर सकता था किंतु वही विवाहित स्त्री किसी दूसरे पुरुष पर मुग्ध होकर उससे प्रेम विवाह नहीं कर सकती थी। एक पुरुष—यदि उसकी आर्थिक दशा अच्छी है तो—ई स्त्रियां रख सकता था किंतु वही स्त्री किमा दूसरे की धार प्राप्त उठाकर भी नहीं देख सकती थी। स्त्री को जमश वनाध्ययन आदि प्रधान धार्मिक अधिकारों से भी वंचित बना लिया गया था।

फलतः स्त्री के प्रति पुरुष का मूलभूत दृष्टिकोण प्रजात्पादन तथा काम का दृष्टिकोण था। नारी उपभोग्या हुई, तथा साहित्य में उसके इस उपभोग्य रूप का रमल लंकार वर्णन किया जाने लगा। गाया पीन पयोधर मदन चंचल कर गुणशाली। श्रीकृष्ण राधा के बनक उरोजा के मुकुट में अपना रूप निहारने लगे। प्रेम चाह जितना पूरा क्या न हो, शारीरिक आसक्ति के बिना उसमें लावण्य का अभाव माना जाना लगा। हजार धार्मिक सामाजिक बंधनों के बावजूद नारी नायिका बन गई। बन् पण्डित वाला की नजर से बचने हुए, अभिसार करने लगा। रात्रि पथा पर जूड़े से गिर हुए फूलों के द्वारा कवियों को उसके प्रेम पथ का उरण करने का अवसर प्राप्त हान लगा। मित्रा नदी के प्रवाहाचलो पर बहती हुई वायु की माधुरी का प्राकृतिक रूप हटकर उसके म्यान पर वह समार कवि की प्रियतम की प्राथना चाटुकारिता के समाप्त प्रतीत हुई।^१ आज की पूजावादी समाज रचना में भीतर छायावादी कवि को भी पवत पृथ्वी के उराजा में दिखाई दत है। यह उपमा अपने लिए अनुकूल जान उसमें प्राचीन कविता से ली है। और कवि साफ-साफ यह कहने लगे कि खुला हुई जधाओ वाला रमणिया का भला कौन छाड सकता है।^२

१ मित्रावात प्रियतम एवं प्रार्थना चाटकार । —वाणिज्य

२ नागास्वामी विद्वत्प्रपना की विद्वान् समर्प । —वाणिज्य

अगर आधुनिक स्त्री अपने शारीरिक सौन्दर्य के विषय में मध्ययुगीन बर्तिया के भाव विचार देखे तो वह पायगी कि वह किस प्रकार पुरुषों की मूल्य का खिलौना हो गई थी मानो उसकी अपना कोई व्यक्तिगत आत्मसत्ता न हो। अधिक से अधिक वह नाममती के शब्दों में इतना ही कह सकती है—

यह तन जाँचो छार क
कहाँ कि पवन उड़ाव ।
मकु तहि मार्ग उडि पर
कन्त धर जहु पाँव ॥

इससे अधिक स्त्रियों को और कोई अधिकार न था। पतिप्राण नाममती रत्नसेन को छोड़कर न किसी दूसरे से प्रेम कर सकती थी न अपने पति का इस यात के लिए मजबूर कर सकती थी कि वह पथावती से विवाह न करे। स्त्रियों के सम्बन्ध में तुलसीदासजी की उक्ति का प्रसिद्ध ही है। पत्नी ने भी नारा को माया कहा है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने भारतीय प्रेम के बखाने की चार प्रणालियाँ बतलाई हैं। उनमें सामंती समाज के स्त्री पुरुष सम्बन्ध नियम पर आधारित स्त्री के उपभोग्य रूप की प्रधानता का तथा स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष के सामर्थ्य मनोविज्ञान का स्पष्ट पता चलता है। मीना के प्रति राम के प्रेम वाली पंक्ति का उद्देश्य अत्यन्त उल्टा बतलाया है। किन्तु मध्य दृष्टि से मीना की जीवनगाथा का दायन पर यह बात जाना है कि इस साध्वी नारा को सामाजिक नियम विज्ञान के कारण कितना दुःख और कष्ट उठाना पड़ा। माना कि राम का चरित्र उज्ज्वल था किन्तु साता का बस उज्ज्वल नहीं था। फिर भी उस भारतीय महामानकी का कितना ही अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ा। मीना की जीवन गाथा से तानात्म्य प्राप्त करने वाले भवभूति के उत्तररामचरित की रचना मीना का दुःख दावानल-वर्तिक प्रति कवि की भावना का विरोध भाव था। तुलसीदासजी इन प्रकरणों का माफ़ बचाव मय।

प्रेम अथवा रामायण के सम्बन्ध में हमारे समाजोच्च उसके भाव स्पन्दना का ही प्रमाण करते हैं मात्र अनुभूति को ही स्वीकार करते हैं।

अनुभूति का दायन समय उनका ध्यान उस वस्तु या व्यक्ति का तथा उसका अनुभव करने का ही (उस अनुभूति का स्थिति के लिए) परम्परापरकता का भार जाना जाता है। अनुभूति तथा अनुभूति के विषय अथवा साह्य वस्तु या व्यक्ति के परम्परा सम्बन्ध के बिना अनुभूति असम्भव होता है। व सम्बन्ध अनुभूति के स्वरूप में ही निहित रहता है। अनुभूति तथा तन्मूर्त्तिका वस्तु अथवा व्यक्ति उस पूरे जगत में रहते हैं जिसे हम वग और समाज कहते हैं। समाज तथा उपाय

भीतर वर्गों की परस्पर सम्बन्धित स्थिति के अनुसार जा वास्तविक मानव सम्बन्ध तथा हान है व मानव सम्बन्ध ही मनुष्य के कानूनी, राजनतिक धार्मिक नियम विधाना में व्यक्त होते हैं। इन मानव सम्बन्धों की स्थिति स्वरूप तथा विकासात्मकता के आधार पर तथा उनके अनुसार हमारी विश्व दृष्टि, नतिकता तथा जीवन मूल्य बनते हैं। यह विश्व दृष्टि और जीवन मूल्य हमारी अभिरुचि, सस्कार शिष्टता की मर्यादाएँ ताना बनाते हैं, साथ ही व वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारे दृष्टिकोण का भी निर्माण करते हैं। इस दृष्टिकोण को अलग कर अनुभूति की स्थिति असम्भव है।

अपनी बात के स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण लें। राजस्थान में राजपूत जागीरदार ठिकानेदारा के समाज में दहेज में दान दासी प्राप्य होने की प्रथा अभी तक मौजूद है। शायद, इस समय कानूनन वह बंद हो गई हो। उन दासियों से अनेक अनियमित सत्तानें पैदा होती हैं और उन्हीं परिवारों में व दास के रूप में बढ़ चलता है। दासी-पुत्रों के विस्तार के कारण जब परिवार बढ़ चलता है, तब बहुत बर उनका आर्थिक भार अक्षम्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में उन पुत्रों को घर में निकाल दिया जाता है। मध्य भारत तथा राजपूताने में वे बचारे दासी पुत्र मार मारे फिरते हैं।

एस प्रतिष्ठित राजपूत भी कम नहीं है जो इस प्रथा का बुरा समझते हैं। अब जरा कल्पना काजिए एस भूतपूर्व, किन्तु धनी जागीरदार व्यक्ति की, जो एक घर में अपने घर की लावण्यवती स्त्री को दबी समझता है उसकी प्रत्यक्ष गतिविधि का आदर्शिकरण करता है किन्तु साथ ही, अपनी अधिकार शक्ति से पूरा सामंता वासना को दासियों से शांत करना है। दासियों से उसके काम सम्बन्ध वस्तुतः मानिक और गुलाम के सम्बन्ध हैं। इस भौतिक वास्तविक सामाजिक सम्बन्ध के कारण ही वह उनका अपनी काम-तृप्ति के भौतिक साधन के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता। उस वास्तविक भौतिक सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर ही दासा-स्त्री के प्रति उसकी दृष्टि विचार भावना न उसकी काम वासना को एक विशेष रूप दिया है। दासी के प्रति उसकी काम वृत्ति तथा अपनी विवाहिता वधू से उसके काम सम्बन्ध में व्यक्त जीवन दृष्टि तथा जीवन मूल्य का—अर्थात् मानव सम्बन्ध का महान् भेद है। वस्तु अथवा व्यक्ति-सम्बन्ध के भीतर सामाजिक सम्बन्धों का वास्तविकता नित्य आधारभूत रूप में रहती है। किन्तु प्रवृत्तियों का स्थायमान भी न केवल वाह्य वस्तु-व्यक्ति सम्बन्धों के भीतर सामाजिक सम्बन्धों से होता है, वरन् वे प्रवृत्तियाँ स्वयं किसी जीवन-न्यायन पद्धति के वशानुगत अनुभवों और विकास प्रणालियाँ पर निर्भर हैं। यह जीवन-न्यायन पद्धति वग के भीतर होती है। उस वग का अपना एक वग चरित्र होता है। उस वग चरित्र से तुरन्त हम पहचान लेते हैं कि यह व्यक्ति निम्न वग का है

या मध्य वग का है अथवा पुराने सामन्ती वग का प्रतिनिधि है अथवा नवीन पूजावादी मते लिये सामाजिक व्यापारिक वग का है। वग चरित्र म नतिवृत्ता के सुविधाजनक मान रहते हैं। य सामाजिक मान व्यक्तिगत धरातल पर जीवन मूल्य बन जाते हैं। वग अथवा समाज की विश्वदृष्टि व्यक्तिगत धरातल पर निजी दृष्टि बन जाती है। एक सामन्ती वग म अनेक स्त्री सम्बन्ध को शुद्ध सम्पूर्ण सामाजिक दृष्टि से विश्वदृष्टि म बुरा भले ही माना जाए आचरणात्मक धरातल पर न केवल उसके प्रति उपेक्षा की दृष्टि बरती जाती है बरन उस उपेक्षा दृष्टि का लाभ उठाकर वसा ही आचरण किया जाता है। जब किसी वग म धडल्ले स एसी प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं तब धारे धीरे उनकी निन्दनीयता उपक्षणीयता की मजिल लाघवर बरणीयता तक पहुँच जाता है। यहाँ तक कि हमारे ग्वाल तो यह कहने लगते हैं कि जब तक हम दूध म पानी न मिलाए तब तक हम पर लक्ष्मी प्रसन्न ही नहीं हो सकती। यद्यपि समाज की विश्व-दृष्टि इस सम्बन्ध म अलग है किन्तु ग्वाल की दृष्टि को विश्व दृष्टि के साम्राज्य के भीतर औपनिवेशिक स्वराज्य हासिल है। ग्वाला उस विश्व दृष्टि को चुनौती नही देता मान लेता है किन्तु बरता अपने मन की ही है वही करता है जो उसके व्यवसाय वाले सब करते हैं एकाध अथवाद को छोड़कर। धीरे धीरे उसके जीवन मूल्य केवल धार्मिक अभ्यास म परिणित हो जाते हैं, तथा उहे काय प्रणाली का गौरवपूर्ण स्थान मिल जाता है। एक वग के भीतर अपनी विशेष जीवन यापन प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन मूल्य बना लेता है। इस जीवन मूल्य का सामाजिकता उस श्रेणी म प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार शासन सामन्तीवग की वामना प्रणाली का भा हिसाब है। जो लोग हिन्दुस्तान के रियासती सामन्ता-वग म रहें उह मरा बात की टाई करनी पड़ेगी कि सामन्ती वग की वासना प्रवृत्ति और उसके मनोवचानिय-तत्त्व युगा स शापक शासन की अपनी स्थिति के कारण विशेष प्रकार से बलवा हो गय है। इस प्रवृत्ति का रूपायन तथा नियमन भा एक विशेष वग की विशेष जीवन-यापन पद्धति न किया है। अतएव निष्कप यह निम्नता कि न केवल बलवान मानव सम्बन्ध चेतना के भीतर प्रवेश कर उसके निजतत्त्व का जाने है बरन् यह कि चेतना की प्रवृत्तियाँ का रूपायन नियमन भा व ही करत हैं। उनके रूपायन का मूलशक्ति उस वग के अपने चरित्र तथा स्थिति म सन्निहित है। जो प्रवृत्ति वग विशिष्ट जीवन-यापन पद्धति के प्रतिकूल जायगी वह मा ता दर जायगी नष्ट हो जायगी अथवा उस व्यक्ति का अपन वर्ग स भ्रष्टा दगा।

इस यह बतला चुने हैं कि विशेष प्रकार के वग-जावन क मानव-सम्बन्ध का कारण प्राणिशास्त्रिय मूल्य भा अपन विभिन्न मनावचानिक रूपाकार ग्रहण करता है। य मनावचानिक रूपाकार एक ही अनुभूति का श्रेण म वचानिक सुविधा क

लिए, रखे तो जा सकता है, किन्तु उनके भीतर प्रकट सम्बन्ध-तत्त्वा की विभिन्नता का यथाथ को तो मेटा नहीं जा सकता। य सम्बन्ध-तत्त्व एक ही श्रेणी की अनुभूतिया बना देने हैं उदाहरणतः अपराधी के प्रति अनुभूति को विभिन्न क्रोध अपने आप पर क्रोध, अनुचित क्रोध अपने म्याथ को हानि पहुचाने वाने के प्रति क्रोध बग के देश, विश्व के स्वाथ को हानि पहुचाने वाने के प्रति क्रोध ऐसा क्रोध जा अधा हाकर हानि पहुचाने वाले को मार डालता है—जैसा कि हमारे मध्यप्रदेश का पिछली हुई जातिया म (जग जरा सी बात पर, विशेषकर स्त्री सम्बन्धो को लेकर, कुल्हाडियाँ चल जाती हैं) होता है, ऐसा क्रोध जो दाशमिक आवरण म लपेटा जाकर हलकी मो मुसबान म लिल उठता है—जसे अति शिक्षित श्रेणियो म पाया जाता है आदि आदि। यद्यपि मात्र बज्ञानिक सुविधा के लिए इस भावावेग को हम क्रोध मात्र की श्रेणी मे रख सकते हैं, किन्तु उसकी प्रमग-बद्ध विभिन्नता के यथाथ का मेटा नहीं जा सकता। क्रोध म भी उस क्रोधी व्यक्ति की प्रवृत्ति, जीवन मूल्यतया दष्टि देखी जा सकती है तथा उही मे विशेष मानव सम्बन्ध परिशिक्षित हाते हैं। क्रोध भाव को बेनना के भीतर ही विशेष मानव-सम्बन्ध अपन सामाय तथा विशिष्ट रूप म दखे जा सकते हैं। इन सम्बन्धो को लेकर ही, क्रोध का यह भाव अपनी विशेषताएँ तथा विभिन्नताएँ ग्रहण करता है।

छायावादो गीतिकाय म अमूर्तीकरण के द्वारा हम उस अनुभूति को ही लेकर चलते हैं तथा सम्पूर्ण वास्तविक अनुभूत सम्बन्धो के उदघाटन को और अग्रसर नहीं हाते। प्रतीका द्वारा हम अपने आपको प्रकट करते हैं। छायावाद के आलोचक-समीक्षका की दष्टि अनुभूतियो की जावनगत वास्तविकताका विश्लेषण सामायीकरण नहीं करती वरन उस अनुभूति मात्र का ही सर्वाधिक प्रधानता देता है। यहा यह कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य आत्मपरक काय है इसलिए उसम बाह्य सम्बन्धो की इतनी प्रधानता नहीं है। छायावादी काव्य उपयास नहीं है कि उसम अनुभूति की पूरी भूमिका समझाई जाये। यह टिप्पणी बिलकुल ठीक है। किन्तु हमारी आपत्ति यह है कि छायावादी काव्य की मान्यताओ के आधार पर कोई साहित्य सिद्धान्त तयार नहीं हो सकता। साधारण रूप से साहित्य तथा सौन्दर्य की आदर्शवादी रहस्यवादी व्याख्या करने के हेतु साहित्य से जो उदाहरण प्रस्तुत किय जाते हैं वे छायावादी अथवा तत्समान अथ काव्य म से ही लिए जाते हैं। उपयास, निबन्ध समीक्षा कहानी आदि वय आत्मपरक और अधिक वस्तुपरक साहित्य से उदाहरण तथा प्रेरणा ग्रहण करते हुए साहित्यिक सामायीकरण पर आकर हमने अपना साहित्यिक अभिरुचियो तथा मानदण्डो को नहीं बनाया है।

मानव चेतना के सामाजिक रूपायन के सम्बन्ध म हम ऊपर कह चुके हैं।

जो उस काल में साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के भीतर निर्णायक रूप से प्रभाव शाली हो उठते हैं। किन्तु साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रभावशाली होना के लिए उस पहले समाज में महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावशाली होना होता है।

साहित्य एक कला है जिसमें समाज का नतत्व बरतना प्रधान बंध (जो कि संस्कृति का भी नतत्व बरतना है, अथवा विशेष सामाजिक ऐतिहासिक विकास पर आधारित घटना चक्रों के कारण समाज का अद्यतन न होना हुआ भी, प्रमुख रूप से प्रभावकारी हो जाता है) जस कि सामंती समाज रचना के भीतर मनातनी ब्राह्मण धर्म के पूर जोर के बावजूद मध्ययुग के भक्ति आन्दोलन में निम्नवर्ग के कवीर रसम नामक आदि ईश्वर के सम्मुख मानव गाम्य के समथक प्रातिरोगी कविता का प्रादुर्भाव बनाता है) यह प्रधान बंध तत्कालीन ऐतिहासिक, सामाजिक स्थिति के द्वारा सामाजिक रूप से नियंत्रित मनावृत्तियों के अनुसार अपने साहित्य सृजन के विषयों का निर्वाचन करता है। साहित्य के विशेष विषयों का निश्चय करने वाली ये मनावृत्तियाँ तत्कालीन स्थिति मापक्य हैं। इन मनावृत्तियों का सश्रिय करने का श्रेय भन ही किसा महान साहित्यकार का प्रदान किया जाए, वह साहित्यकार उन्ही मनावृत्तियों का सञ्चय होता है जो उस समाज से प्राप्त होती है। उस साहित्यकार का मन्त्र कवन यणी होता है कि उसने उन मनावृत्तियों का साहित्य में पहन-पहन प्रकट कर आया का नतत्व प्रदान किया। हिन्दी में पत, प्रगाद निराला दमीलिंग आयावाद के उना यक कहलाय। किन्तु, यारोप में रॉमंटिक कविता का प्रभाव आयाद्या का हटाकर, रिक्त मध्यवर्गीय नतिवता और तथारथित आदशवाक के विरुद्ध नाटका के क्षेत्र में शान बनम उठाई। मध्यवर्गीय जावन मूल्या के प्रति विरक्ति एल्डम हकसले न अपत उपयासा में प्रकट का। काय के क्षेत्र में टी० एम० ईलियट की उसा महाधिरक्ति में अपने बजर ममान दिगुलाय। सामाजिक ह्रास को नष्ट करने के लिए किन्हीं अर्थों में शा अतिमानव या अवनानिक प्रतिक्रिया वागो फासिस्टिक बरपना का काम रह। (उन किना पश्चिमी यारोप में नातश तथा स्पेंगलर बन्त लारप्रिय नाशनिक थे) इमातिण बर्नाड शा के बारे में लीन न यह कहा कि शा साह्य बुगी सगन में फेंग हुए अच्य आदमी है। अपनी 'अतिमानव का बल्पना का किमा न किमी म्म में पश्चित्याग कर शा समाजवाद के भक्त हुए तथा 'वीन गाम्यमूलक' समाज रचना उनका आत्मा हुआ। इसके विपरीत मध्यवर्गीय जावन मूल्या के प्रति विरक्ति में अन्न हाकर एल्डम हकमन का सम्पूर्ण मानव श्रद्धा शा समाप्त हो गई। मनुष्य का आरागन्त्याग में अधिक महत्त्व देना उन्ही स्वाभार न हुआ। टी० एम० ईलियट इशरकुन एल्डम हकमन का अपना जजर आत्मा का ममस्याया का हन गिरजाघर तथा बन्त म न दीया और उन्ही की मनोवृत्तियाँ बना कवि एभरा पाठक अत में रागनित

क्षय में भाषार पागिण्ट हो गया ।

मध्यवर्गीय जाति मूल्या के प्रति इस विरक्तिभाव के अनुसार विषय निर्वाचन हुआ । यह विरक्ति भाव जीवन की गतिहीनता का नश्वर तथा प्रति निम्ब था । ब्रिटिश साम्राज्यवाद (तथा विरक्त साम्राज्यवाद) पूँजीवादी समाज रचना के ह्रास-व्यय का ही छात्रक था । प्रथम विरक्त मुद्र के उपरान्त तो यह साम्राज्यवाद का पचावानी व्यक्तित्व में गार्हिय तथा समाज में गये विषय गौण प्रकाश हुए । जीवन मूल्या के गोपनरत की धरना के साथ ही-भाष जावानी गतिहीनता का भाव भी प्रबल था । यह गतिहीनता क्या थी ?

समस्याधीन मनुष्य का जान के लिए दो बाने विषय रूप में आवश्यक हैं परन्तु माया के लिए गार्हिय श्रेय में उमर गरीबी का सामग्र्यपूर्ण उन्नति होती पत्नी जाए दूसरे उत्तर सम्पूर्ण काई का आशा है जिसके लिए वह जा मया मर सके ।

प्रथम विरक्त-मुद्र के पारार्थीय पूँजीवादो सम्पत्ता के आत्मविरोधी को सुत्तर सेवन का मौका दिया । मुद्र, परस्पर तथ्य और भयानक नाम की वास्तविकता के साहचर्य के मरुत उपस्थित किया । कथिया और दासनिका के मनुष्य के विषय विषय उडन दम । मुद्र के पूँजीवादी को यह बतनाया गया था कि वह अपने देश के लिए लड़ रहा है । किन्तु बाद में उमरको यह पता चला कि वह धरने में था । इतने बड़े पमान पर मनुष्य-हत्या के व्यापक विद्रूप के यथाथ विषय में पूँजीवाद के व्यक्तित्वो मूल्या का परीक्षा किया । उधर, पूँजीवादी समाज रचना के भीतर ही मध्यमवर्ग की स्थिति निरापद न रहा । पुराने आदर्श-स्वप्न टूट चुके थे । नये आदर्श स्वप्न तयार होने के लिए व्यापक सामाजिक कृतव्या की जो चेतना आवश्यक होती है वह इसलिए नहीं थी कि उस वय की आय का सबसे उदा जगिया खुद की मेहनत न होकर बड़ी बड़ा कम्पनियों में उसके हिस्से और बक बतल ही ता था । उसने पूँजीपतियों से अपने को तन्कार कर रखा था । एक ओर पूँजीवाद के भयानक विद्रूप का स्वरूप उसके सामने खुल चुका था किन्तु दूसरी ओर अपनी नीरस्तिया और आमदनिया के लिए वह उमी पर न केवल अवसरम्वित था, बरन अपनी उन्नति के लिए वह उसी की आर दलता भी था । यह आत्मविरोधी उन अगति का जनक था, जिसने विरक्ति के रूप में काव्य की सृष्टि की । एक जमाना था जब पूँजीवाद के विद्रूप की विभीषिका लोगों पर व्यापक रूप से खली नडा थी और आशावाद के लिए पयाप्त अवकाश और श्रेय प्रतीत होता था । इसलिए आउनिंग यह कह सका—

Grow old along with me

The best is yet to be

The last of life for which the first was made

इस विपरीत पूजावादी शापण पर आश्रित मध्यवर्ग का उक्त पत्तियाँ खावली दिखाई दी वास्तविकता व प्रतिकूल मालूम हुई, और उमके एक कवि—
टी० एस्० ईनिगट न यह कहा—

We grow old we grow old

We wear the bottoms of our trousers rolled

उपयुक्त अग्रविकता का ध्यान म रखकर ही, उसने कहा—

“My candle burns at both the ends, at both the ends”

इस अग्रति के कारण ही मानव-मान पर श्रद्धा उठ गई। नवीन विषया न नवीन प्रतीक चुने। उसका काव्य प्रतीक आत्म ग्रन्थ विरक्ति का सूचित करने लगे, तथा सम्यता की जो भावात्मन समाक्षा पस्तुत की गई वह विरक्ति, व्यंग्य और अश्रद्धा की व्यक्तित्व दृष्टि से ही हुई थी। विश्व यापों ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर ब्रिटेन व इस अग्रनिवादी काव्य का प्रभाव याराप के समान पूजीवादी मध्यवर्गों पर पडा। पश्चिमा योरोप म केवल टामममन और रोमारोला ही मध्यशील मनुष्य के जीवनादर्शों की नतिक मत्यता पर श्रद्धा बनाए रह। इन अल्प किन्तु महान अग्रवादो का छाट शेष साहित्य तथा काव्य अश्रद्धा, रिक्तता, मृत्यु और आत्मग्रस्त वासना का प्रकट करन लगा।

कहने का साराश यह है कि तत्कालीन मानव सम्यका की विशय स्थिति के भीतर रहकर योरोपीय मध्यवर्ग न अपनी अग्रति के अनुकूल विषय चुने। हम पहल ही यह कह चुके ह कि साहित्य एक कला है जिसमें एक विशय वर्ग (जा कि सस्कृति का अधिकारी जाना है—अथवा मास्कृतिक धर्म म प्रभाववादी जाना जाता है) अपनी एतिहासिक सामाजिक स्थिति का आवश्यकताप्रा के अनुसार अपने पदान विषय चुनता है। इस विषय निर्वाचन म निश्चय ही तत्कालीन मानव सम्बन्ध विश्वदृष्टि तथा जीवन मूल्य प्रकट होत है। कवि तथा अथ कलाकार उन विषया म रमकर उनका मूर्तीकरण करत है। उनका मूर्तीकरण के लिए अभिव्यक्ति का सगठन आवश्यक होना है। इस सगठन का हम कला का बाहरी रूप निधान कहत ह। किन्तु, सौ दय वस्तुत विधान तर ही मामिन न होकर आन्तरिक जाना ह। मादय की यह आन्तरिकता वस्तुत अनुभूति के मूल म स्थित मानव सम्बन्ध विश्वदृष्टि तथा जीवन मूल्या स बनती ह। य जीवन मूल्य मानव सम्बन्ध तथा विश्वदृष्टि उग वर्ग का विशिष्ट दृष्टि जानी है जा साहित्यिक मास्कृतिक धर्म म अपने का अभिव्यक्त करता ह। अतएव मध्यवर्ग वात यह है कि मादयत्मक मनावचानिक पक्ष का गम्यक समाप्ता के लिए एतिहासिक समाजशास्त्रीय पक्ष पल आवश्यक ह। इसका दूसरा पल यह ह कि मानव-सम्बन्ध, विश्वदृष्टि तथा जीवन मूल्य वस्तुत ही सौ दय के मान भा वल जान हैं। फलत छायावादी को अन्धापा की कविता छीट की घोड़नी

प्रतीत हुई। मूर और तुलसा के प्रति सम्पूर्ण आदर रक्षित हुए भी राम और कृष्ण उसके कायाधार न हुए। न केवल विषय बदल छद्म विधान भी बन गये। अभिचिन्ति बदन गई।

अब यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। वह यह कि अगर सौम्य के भाव और अभिचिन्तियाँ बन जाती हैं तो फिर हम पूज्यवासीन सौम्य और अभिचिन्तियाँ बहुत बार क्या आनयित तथा प्रभावित करती हैं। इसका स्पष्ट उत्तर हम माहित्य के शाश्वत तथा अशाश्वत पक्ष के विरोध से मिल सकता है।

हम एक उत्तर लगे। तुलसादास का रामचरितमानस हम आज भी प्रभावित करता है। किन्तु क्या हम तुलसीदासजी के आचार विचार प्रभावित करते हैं? नहीं। जिन सामाजिक नियम विधानों में राम रहे क्या हम अपने लिए वे नियम विधान पसन्द हैं? नहीं। फिर वे कौन-सी बातें हैं जो हम प्रभावित करती हैं। वह है राम का व्यक्तित्व। किन्तु क्या हम उस मानव सम्बन्ध के बिना राम के व्यक्तित्व का समझ सकते हैं? बिस्तृत नहीं।

वे आचार विचार वे नियम विधान, वे मानव सम्बन्ध हम आज अपने अनुकूल न मालूम हैं। किन्तु तुलसीदास और उनके प्रियपात्र राम की स्थिति उनके बिना असम्भव ही थी। तत्कालीन मानव सम्बन्ध विश्व दृष्टि तथा जीवन मूल्यों के सर्वोच्च प्रतीक राम की मानवता हम प्रभावित करती है। तुलसीदासजी तथा रामचन्द्रजी का वह स्पष्ट आचरितता (जो तत्कालीन आदर्शों से बनी हुई थी) हम पर छा जाती है किन्तु उनमें भीतर जो तत्कालीन मानव सम्बन्ध है उनका कहीं भी भंग न करते हुए राम ने निपाद और गुह से भी धार्मिक विधा शक्ति के चेर राम कष्ट से दोस्ती का, बनवासी असन्धों को गले लगाया तत्कालीन मानव सम्बन्धों का वास्तविक निवाह उहाँ अपने इही आदर्श धारण किया। उनसे वे मानव-सम्बन्ध अधिक धनीभूत हो गए। निपाद निपाद ही रहा गुह गुह ही और राम का रामत्व अपने सम्पूर्ण सामन्ती मानवाद से जग गया उठा। तत्कालीन मानव सम्बन्धों के चरे के भीतर मानवता का जितना भी सर्वोच्चता सम्भव थी, उनका तुलसीदास के राम में समा गया। इसीलिए तत्कालीन समाज के आदर्श चरित्र राम है। राम की इस आदर्शमयी आचरितता के चित्र—उसी मानव मानवता के ये चित्र हम आज भी द्रव्यभूत करते हैं।

तत्कालीन नियम विधान आचार विचार मर गये किन्तु राम की मानवता हमारी सस्मृति की एक पुरानी मजिल के रूप में आज भी खड़ा है। ये नियम विधान ये आचार विचार निरनयन हैं अशाश्वत हैं किन्तु राम का चरित्र हमारे लिए मूल्यवान् ज्ञान के वाग्म्य आशय है। चूँकि हम भी अपने वर्तमान युग के सर्वोच्च आदर्शों के समान समाज के सर्वोच्च मूल्यों का आत्मसात करने के लिए प्रयत्न हैं अतएव उक्त आत्मसात करना आवश्यक समझना है। इसीलिए हम उन

प्राचीनो से तथा उनका तत्कालीन पूणता मे प्रेरणा प्राप्त हानी है। चूकि हमे उनसे प्रेरणा प्राप्त होनी है हम अपन आदर्श-मय पर वे प्रेरणा रूप म सहायक प्रतीत होने हैं इसीलिए वे हमारे लिए मूल्यवान हैं। यही कारण है कि हमारे लिए राम का चरित्र सुंदर है और चूकि हम यह विश्वास है कि वह आगे की पीढिया को भी इसी प्रकार प्रेरणा प्रदान करता जायगा, इसीलिए वह शाश्वत भी है।

किन्तु तत्कालीन नियम विधान आचार जा आज हम ग्राह्य नहा हैं, जा विलकुल मर चुके हैं जा अशाश्वत हैं, उनका प्रभाव कुछ रूढिवादियो पर अभी भी है। राम के चरित्र से उनकी आंखा मे आसू आते हैं वे सामन्ती विश्वदृष्टि के आंगू हैं। एम लोग यदि सामाजिक, राजनतिक, साहित्यिक क्षेत्र म सजिय हुए तो वे सामन्ती मानव सम्बन्धा विश्वदृष्टि तथा जीवन मूल्यो को, अपनी आवश्यकता के अनुकूल कुछ हेरफेर करके सामन रखत ह। रामचरित्र उनके लिए ढाल वा काम करता है। तुलसीदासजी क साहित्य न, वस्तुतः हमारे रूढिवादियो क हाथ मजबूत किय और अगर नवयुग के उदगाताआन उससे प्रेरणा प्राप्त नहा की तो इसका कारण यह है कि उ होने रामचरित्र के प्रति सच्ची ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय दृष्टि नहा रखी थी, उहानि हिंदी साहित्य के इतिहास का वनानिक विश्लेषण तथा मूल्यावन रही किया।

ऐसा भी हाता है कि कुछ विशेष युग खण्डा म तत्कालीन ऐतिहासिक सामाजिक स्थिति द्वारा नियंत्रित जीवनादर्शों, मूल्या तथा अभिरचियो के कारण, न केवल साहित्य म गत मूल्या का प्रयाग होता है वरन उन गलत मूल्यो की कसीटी पर वसनर सत्साहित्य को साहित्य क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है। ध्यान मे रखन की बात है कि ब्रिटेन म धन जानसन सरीखे पुराणपथी विद्वाना की अभिरचिया ने यूनानी नाटक के टेक्नीक की आदर्श मानकर शेक्सपीयर के नाटका का घटिया सावित किया था। उठने हुए नवीन व्यापारी पूजावादी वग तथा सामन्ती वग क समझौता म बनी हुई सापेक्ष सामाजिक स्थिरता के काल म शेक्सपीयर के सामन्ती चरित्रा की दु गाल स्थिति के चित्रण को भला उन दिना कौन कलात्मक मान मरता था। जब ब्रिटेन म सामन्ती प्रभाव नष्ट हुआ, तब वही शेक्सपीयर का कला पर लोका का ध्यान गया।

साहित्य क, सौंदर्य के मान नित्य कान-भाष्य रह हैं, किन्तु इसका अर्थ केवल यही है कि हमारे यहाँ पहले साहित्य तथा सौंदर्य का जो बल्पनाएँ थी उनके हमारे लिए जा मूल्यवान अंग थे उनका ही अपने म समाहित किया। तथा य हमारा परम्परा म समा गया।

साहित्य तथा कला मे मूल्यवान क्या है और क्या नहीं इस प्रश्न का उत्तर भी कान सापेक्ष हा है, किन्तु यदि हम सम्पूर्ण मानव-समाज के विनाम त्रम का

दखें ता पायग कि मनुष्य समाज न प्रत्येक नवीन समाज रचना म पूर्वजालान समाज रचना मे अधिक स्वतंत्रता पाठ ह । समाज रचना क आयुन परिवतना क प्रावजू नया समाज पिछन समाज की सर्वोत्कृष्ट दन की स्वीकार करता आया ह । कई बार अंधकार युग भी अपना चमत्कार दियात आय है जम कि योगोपीय मध्य युग म यूनानी वनानिकना तथा वनात्म क स्वीकार नयी किया गया । जस नवान पूजीवाणी राष्ट्रवाणी युग का आरम्भ हुआ, तब पुरानी यूनानी कता तथा उनका मध्यक उपयोग भी जहाँ-तहाँ किया गया । अगर हम वनानिक शत्रु म उतर ना पायेंगे कि नवान विज्ञान पुगने व नानिक मत्यकरण को अपने म समाहित किया हुआ है इसलिये वह प्राचीन विज्ञान से अधिक सम्पन्न भी है । किन्तु विज्ञान के क्षत्र म सत्या के जिम सगठन का हम श्वारी बहत हैं, उह ध्याग समासार विकसित हानी गई । आईनस्टाइन क मापश्रवणी वनानिक सिद्धान्त न यूनन क सिद्धान्त का अपने म समाहित कर सुभ्रायकण सिद्धान्त का स्वरूप ही बना टाना । विन्तु यूनन के अन्वेषणी और योजी का अपने वनानिक महत्त्व तो है हा । इन अन्वेषणी और योजी को हम अन्वेषणी और योजी तभी कहत ह जबकि व यथाऽ का बसौटा पर ठीक ठीक उतरत ह । टाक यही वाक बना की तथा उमके मोरख की है । यदि एग गुहा निवासी अपने शौजार म विमानत्कागतन वयपगु का भित्ति चित्र रेखाकित करता है ता उस पगु के साथ उसक जीवन सम्बन्ध के कारण उस पगु रूप म उस जो तत्वीनता प्राप्त हुई उसके द्वारा वह न करन अपना अभिव्यक्ति कर रहा है करन अपने सामाजिक जीवन तथा उम पगु के माय अपने सम्बन्ध को प्रकट कर रहा ह । किन्तु पगु का रेखा चित्र प्रस्तुत करत समय वह कबल अपने मानन के पगु रूप म हा डूबा हुआ है । हम तत्वीनता क द्वारा ना वह इतना सुन्दर पगु चित्र बना मरा है । उम पगु चित्र क सामाजिक मानवीय अर्थ अघातरा म वह उन अभिव्यक्ति-भरणा म भव हा अचलन रह (मानव सम्बन्ध व्यक्ति-सकल्प से पृथक तथा स्वतंत्र होत है) उ म्बन्ध का वनानिक आवलन समाज के बौद्धिक विकास-स्तर पर निर्भर है) उ अपने सामाजिक अन्भव का एक अग चित्र रूप म प्रस्तुत कर रहा है । चित्र अच्छ भा हा मरत हैं चुर भा हा मरत ह । चूरि पगु का वह उमका स्वतंत्र मता म रचना है अनाग व पगु उमके चित्र बाह्य है । उमका बना विषयक दृष्टि वस्तुपरक है अन हा व आदिम चित्रकार यह न जान कि वस्तुपरक क्या आज है और आ-मपरक क्या । वस्तुतः वह चित्रकार बना क माना क बार म अचेतन रत्न हुए भा उनसे नियमित हारर उनका विरासत कर रहा है । चित्रकार का बाह्य वस्तु का जा अनुभूतियाँ हैं व रना-मवना क माध्यम म रना-बदल रहा है । उन अनुभूतियाँ म उम बाह्य वस्तु क बार म उनकी दृष्टि, अपना भावना म उम पगु का मन्त्र ही उमके सम्बन्ध म अपना जीवन अनुभव का

सामाजिक अनुभव ह, प्रकट हो रहा है। रेखाकन क समय उसे यह सत्र नितान्त व्यक्तिगत प्रतीत होगा, किन्तु उसकी सवेदनाया का मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक विश्लेषण करने समय उसकी कला या पूण सामाजिक तल हम दृष्टिगोचर होगा।

वह अपनी चित्रकला के वास्तविक प्रयास द्वारा न केवल व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम से सामाजिक अनुभव प्रकट कर रहा है, वरन् अचेतन रूप से, सौन्दर्य के मान भा स्थिर कर रहा है। य सौन्दर्य के मान अपन अस्तित्व के लिए व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम से सामाजिक अनुभव पर आघातित हैं। सौन्दर्य के माना की यह सामाजिक नाव जब खिसक जाती है, तब वे मान समाज से अलग तथा रिक्त हो जाते हैं।

हमारी परम्परा में उस मूल आदिवासी चित्रकार की यथाथगाही दृष्टि भी सम्मिलित है। व दृष्टि हमारे लिए अभी भी अशत इसके विपरीत एक आधुनिक चित्र लीजिए। 'मदर विद ए डेव चाइल्ड' एक बहु प्रशंसित चित्र ह। गोल रेखाया स स्त्री का उदर बनाया गया है। गभ में, एक भ्रूण के आकार की रेखाएँ खीची गई ह। बच्चे के दो सिर बनाए गये है। एक सिर गभ के भीतर नीचे की ओर, वाम भाग में अटका हुआ है, एक जननेन्द्रिय के बाहर निकला हुआ है। यानि स दो रेखाएँ भयानक गालाई से खीचकर उनकी पुरुष मुख के आकार में परिणत कर दिया है। इस पुरुष मुख को भयानक वष्ट प्रस्त पीढा की चौत्कार का आकार दिया गया है।

सारा चित्र एक निसनी पर बढाया गया है। उदर के नीचे के ठो पर उस निसनी पर इस तरह रखे हैं माना वे मध्यस्थ उदर के फटन की क्रिया को बनलान हैं। एक पर उदर के ऊपर के भाग की तरफ से निसनी के निचले भाग की तरफ लाया गया है। इस प्रकार इस चित्र के तान पर है जो किसी भी मनुष्य के नहीं होत। ध्यान में रखन की बात ह कि यह चित्र समझने में सबसे आसान और उत्कृष्ट माना गया है।

आधे घण्टे तक मैं इस चित्र का देगता रहा, किन्तु मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया। फिर मैंने यह सोचा कि यह पेंटिंग नहीं है चित्र नहीं है चित्र नाया है प्रतीक भाषा है तो मैं इसके प्रतीका का अर्थ पहचानने की कोशिश करने लगा। धार धीरे मन में एक भाव बमबा और उमरे अनुमार, जब मैं उमते सम्पूर्ण प्रतीक अवयवा का अर्थ समझन की कोशिश करने लगा तब मय बातें माफ पान गई।

स्त्री का केवल उदर और उसके नीचे का हिस्सा ही बतलाया गया है। पित्तो आपरा ध्यान केवल गभ पीढा की तरफ खीचना चाहता है। इसीलिए योनि से दो रेखाएँ साबकर बाहर जा पुरुष मुख बनाया गया है उसमें पीढा की

भयानक चीत्कार का भाव भरा गया है। पुरुष मुख या क्या? इसलिए कि कष्ट, पीडा चात्कार आदि पिकसा क अनुभवा परप भाव है। यह मुख योनि से हा क्या सम्बद्ध किया गया? इसलिए कि उमी नाग म भयानक पीडा है। दा परा के जघामूला के पत्रे पडन मे भी यही भाव प्रकट होता है। य पर निमनी म क्या चिपकाए गए ह माना शरीर मिर नाचे पर ऊपर निसनी पर चर रहा हा। इसलिए कि वेदना शरीर के ऊपरि भाग स नीच का तरफ बढ रही है जा अब बिनकुन नाचे की तरफ जाकर (अर्थात् निमनी क ऊपर वा तरफ) यानि द्वार म पुरप मुख द्वारा भयानक चीत्कार कर रही है। निसना य प्रकार बनाई गई है माना वह पाडा की मात्राया का बतलाती हा। यहा उस निसनी का महत्त्व है। फिर एक बहुत लम्बा पर पट के ऊपर की तरफ निमनी का निचली सीढी स क्या चिपकाया गया ह। इसलिए कि वेदना-सूक्ष्मावस्थाएँ उमी हिम्म स गुरू हुइ थी। गभ क भीतर वासक का एक सिर गभ के बाहर दूसरा सिर अन्तर क्यों बननाया गया है? इसलिए कि व मृतभूय भयानक दानवीय पीडा के रूप म माना क गभ मे बाहर निकलन म अनेक म्याना पर अवरोधा का सामना कर रगा है।

सार चित्र की जान योनिद्वार स बाहर दूर तक निकला हुआ भयानक पीडा और चात्कार स पूरा वह पुरप-मुख है जो रेखा चित्रो के सौन्दर्य माना के अनुभार बना ह, शप सब मान चित्र भाषा प्रतीको क समान रखीये गये है।

प्रयोग क तीर पर जय मैन वह सुप्रसिद्ध चित्र पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लागी क बाच घुमाया तो पाया कि उनर चर पर कवन पटना बुझीबल क प्रयास भाव के अनिर्गित कुच भा नहा था। उनो लिए वह उतना हा कठिन था जितना मर लिए अफरेशियन बेलस्युनस। जय मैन हल्का भी सूचना दन हुए उनका कुद्ध सबेता का गय उतनाया ना सभा बाने आप ही आप उनर सामने खुन गई। ध्यान रह कि मुझ मय पिरमा क चित्र रत समझ म नया आन। यह ता भाग्य का बात है कि य चित्र समझ म आ गया। उसका जा अब मर सामने खुना बहा मही भाइया नया म नही जानता किन्तु यत मच है कि व उमरा गर सम्भारित स्पष्टारण है। य मानर चरिए कि जिम चित्र रा मन ऊपर बगत किया व अयन प्रसिद्ध तथा बहू प्रशमित चित्र है।

मार गामन य प्रदन उता है कि यागिर गभ पीडा का विषय या क्या चुना गया? दूसर उमरा हम कवाक म क्या रगा गया?

आन्वियामा कवाकार का घषाप-रि मारा विश्वकना-परम्परा म उतना समा गद है कि हम उन घषाप मूरत प्रारम्भिक प्रयागा की भून हा गये हैं। किन्तु पिरमा का हम प्रगाता का कनी म्यान लिया जायगा और व किम प्रकार का लागी म भा ता गर मूरभूत प्रश्न है।

सक्षप म उत्तर यह ह—भ्रम के अत्यन्त मम्पन उच्चवग अथवा उसने प्रभाय म रत्न वाले वग की निरूपयागिता तथा गतिहीनता अगर कुछ मृजन कर भी सक्ता है ता वत् मृत मृत्ति नी है। इम गतिहीनता की भयानक बेचना स पिक्सा अस्त है। इमालिण वह विद्रूप की पीडा का अभ्ययन करता ह, जिसका एक उदाहरण यह चित्र है। उम वग के भीतर जा कुछ भी मनुष्यता शेष ह, उमस पिक्सा का तादात्म्य नहीं ह। वह मात्र विद्रूप और उसने भीतर बूट पान वाले मनुष्य प्राण का लवर चला है। पिक्सा का मूल विषय सामाजिक अनुभवा का मनुष्य प्राण भी नहीं ह, वरन उमका वह भयानक पीडा है जो स्वय गतिहीनताआ म उत्पन्न ह और जो गतिहीनताआ को जन्म देती जा रही है। उमका विषय मृत मृजन गी पीडा है। परम्परागत चित्रकला के सम्पूर्ण सिद्धाता की अत्रहेलना कर, उसम स्त्रा गुह्याग मे रेखाए खीचकर एक पुरप मुख बनाया है जो उम पाडा का अभिव्यक्त करता है। पिकसो के लिए, मनुष्य के हाथ पर, आखें बान विशेष महत्त्व नहीं रखन। वास्तविक जीवन म इन अवयवा का जा काय है उसको छतम कर उसन उन पर अपनी कल्पना द्वारा निर्मित कार्यों को थापा है। कुल मिलाकर, भारत के तां त्व योगियों की सध्या भापा के समान ही, पिकसो की चित्र भापा हा गइ है। ध्यान म रखने की बात है कि कोई भी प्रतीक तभी तब भावोत्तेजना की शक्ति रखता है जब तब कि उसकी जड़ें सामाजिक सामूहिक अनुभवा की धरती म समायी हुई हा। मात्र व्यक्तिगत धरातल पर तो हजारों प्रतीक खड़े किय जा सकते ह।

कला के इम विश्लेषण मे हमारे सामने दा बातें और साफ हो जाती है। कला यद्यपि व्यक्तिगत आधार पर हाती है, किन्तु उमकी चेतना उस वग म समाहित तथा उमसे विवर्धित है जिसके भीतर रटकर कलाकार न अपने अनुभव प्राप्त किय है। उमका गतिहीनता पिकसो के लिए ममभेदी है किन्तु उसम ऊपर उठकर उसन उस गतिहीनता पर कोई परिप्रेक्ष्य नहा अपनाया। यहाँ तब कि एमा प्रतीक हाता है माना वह उस पीडा म आत्मघाती विकृत भ्रान्त ल रहा हो। किन्तु, इम प्रकार के बचन से किसी भी कला या कलाकार का महत्त्व कम नना होता। कला या श्रेष्ठत्व अपन युग की अनिवाद्य उपलब्धि के रूप मे उस अनिवाद्यता के परिणाम के रूप म उपस्थित हाता है। पिक्सा की महानता मव सम्मत मानी जानी है। उसके चित्र का अर्थ करना मरे लिए दु साहस है। म क्षमा चाटना हू। मैंन यत् दु साहस अपनी बात को स्पष्ट करन के लिए उदाहरण के रूप म किया। मुख्य धान यह ह कि प्रतीक विधान जसा ही, उसे यथाय पर आधारित तथा यथाय बाध म मनायव होना चाहिए।

उपयुक्त विवचन के सिलसिले म हम केवन एक बात और कहना चाहत हैं। उसके बिना हमारा वक्तव्य अधूरा ही रहेगा। वह यह कि अगर माहित्य की महाना

वास्तविक जावन मूल्या म प्रगतिशाल योग देन म ही ह तो यूनानी तथा रोमन नग्न शिल्प मूर्तियों के वारे म आपका क्या खयाल ह ? इसका उत्तर स्पष्ट ह । शरीर सौन्द्य का विकास मनुष्य की स्थायी इच्छाआ मे स एक ह । यदि य स्थायी वक्तियाँ न होती तो विकास ही न होता । यदि ये स्थायी वक्तियाँ न होती तो मनुष्य मनुष्य न होकर कुछ और होता । मनुष्य की य स्थाया वक्तियाँ विभिन्न सामाजिक स्थितिया म विभिन्न रूप तथा विभिन्न महत्त्व प्राप्त करती रहती हैं । कही कही उनका रूप अत्यन्त विकृत भी हो जाता ह । ध्यान म रखन की बात है कि हमारे भारतीय साहित्य म विपरात रति की भी घोषणा की गई ह तथा मग्न सिंहासन का जिक्र आया ह । हिन्दी के एक कवि बालिदास कहते है—

मेरे कर महदी लगी है नदलाल प्यारे
लट उरझी है नक बेसर सभारि द ।
इम पति म मात्र बामुक गूँज ह । किन्तु जहाँ यह नहीं ह वहाँ भी प्रम का
वरण मधुर हो उठता ह ।
जस—

अति रस लम्पट मरे नन
तृप्ति न मानत पियत कमल मुख सुन्दरता मधु ऐन ।
अथवा—

यह रितु रुसिये की नाही ।
बरसत मेघ मेदिनी क हित
प्रीतम हरपि मिलाहीं ।
जेती बेलि प्रीप्म रितु डाहीं
त तरुवर लपटाहीं ।
ज जल बिनु सरिता त पूरन
मिलन समुदहि जाहीं ।
जोबन धन है दिवस चारि को
ज्यो चान्दरि को छाहीं ।
मैं दम्पति रस रीति कही है
समुझि चतुर तन माहीं ।
यह चित धरि तरौ सखी राधिका
द दूतो को बाहीं ।
मूरदास उठि चलहु राधिना
नग इती पिय पाहीं ॥

उपरोक्त काव्य-शक्तिया म हमारा वात मुस्पष्ट हो जायगा । मनुष्य का

म्याया वक्तिया ता इमम प्रकट ह ही उनम उन म्यायी वक्तिया के जीवन मूल्य, जा मानव मूल्य है, प्रकट ह। यही तरण ह कि मूरदास का काव्य अपने सर्वोच्च मो-दय-क्षणा म अत्यन्त मानवीय ह।

जिम वग अथवा समाज म ये जावन मूल्य नहीं ह जहा व्यक्तिगत प्रेम परिणय क अधिकार तथा उमस नि मृत सामाजिक उत्तरदायित्व का मायता नहा ह वही मोना म्थिनिया म भ्रष्टाचार फरेगा, प्रेम परिणय अधिकार के अभाव म अथवा सामाजिक उत्तरदायित्व के अभाव म। वहा वेश्या व्यवसाय तथा ाटाचार की व्यापकता तो हागा ही, यह सही बनी भी जायगी तथा काव्य से एमा गुजे निकलेंगा—

अबुज बज से सोहत हैं अरु कचन कुन भरे स धये हैं ।
 वार खर गदकारे महा बटपारे लस अर मन छये हैं ॥
 ऊँच उजागर नागर है अर पीय के चित्त के मित्त भये हैं ।
 है तो नये कुल क सजनी पर जो लो नए नहीं तो लो नये है ॥

इस प्रकार अत्यन्त सामुहिक भाव के सबडो उदाहरण हिंदी साहित्य से दिय जा सकन हैं। जिस वग तथा समाज म प्रेम के समान साधारण मनोवक्तिया पर ाव होता है, उस वगं म न केवल दासीत्व के आदर्शिकरण पर प्राप्त विवाहिता स्त्रा ही बट्ट भोगता है वरन अधिकारी पुरुष के जीवन मूल्य भी अस्वस्थ और रण ह। उठन हैं। एस समाजो म स्त्री की दशा केवल यही हाती ह—

आंचल म है दूध, और आँखों म पानी ।

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ॥

अधिक स अधिक नारी के आदर्शिकरण के सम्बन्ध म पुरुष यह कहता ह—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो

विश्राम रजत-नग पग तल म

पीयूष श्रोत सी बहा करो

जीवन के सुन्दर समतल म ।

दोना म वन पुरुष की सहचरा नहीं ह। वग-समाजो म पहलु स्त्री की स्वतन्त्रता का हत्या का गई। उम 'दस' बनाया गया या दासी, अथवा वेश्या। हमके अनिर्गन्त बुद्ध नहा। लक्ष्मण के निर उर्मिना का यह कथन सहचरत्व की मानव भावना का ध्वनित करता है—

खोजती हैं कि-तु आशय मात्र हम ।

चाहती हैं एक तुमसा पाव हम ॥

आंतरिक सुख दुःख हम जितमें धरें ।

और निज अयभार यो हलका करें ॥

इन चार पक्तिया म, मधिनरीशरण गुप्त जैसे बुजुग कवि न प्रत्येक स्त्री क

मन की बात बड़ी है। वास्तविक सत्त्वरत्न—चाह बट मन्ना हा क्या न हा—
 आन्तरिक सुरा दु या का पारस्परिक प्रेमणीयता के बिना भ्रमम्भव ही है। इग
 पारस्परिक सात्त्विक का भावना क बिना हमारा जिनन ही भारतीय परिवार र
 रह है। वास्तविक का दुप्यन्त बट विवाह प्रणाली स प्रस्त है, रिन्दु जही ता
 शकुन्तला स उसके प्रेम का प्रपन है बट भत्यत सरल स्वाभाविक तथा स्वम्य है।
 एसातिण हम उगरी म पत्तियाँ भच्छा मानूम हाती है—

कार्यासक्तलीनहृत्समिपुना योतोवहा मालिनी ।

पादास्तामभितो निपण्णहरिणा गोपीगुरो पावन ॥

शाघालम्बितवत्फलम्य च तरो निर्मातुमिच्छाम्यध ।

पाश्वे कृष्णमृगस्य वामनयने कण्डूयमाना मृगीम् ॥

कृष्णमृगा का चित्र पडा करे दुप्यन्त शकुन्तला क सम्बन्ध म अपना
 इच्छा को ही प्रकट कर रहा है। पूरा चित्र मूत वास्तव यथाथ पर आधारित है।
 बित्तु, वह मूत वास्तव यथाथ एक ही साम दुप्यन्त शकुन्तला क गौर्दर्यालीनपूरण
 मनाजगत तथा उस मगोजगत् की गहन और सुंदर इच्छाया को व्यक्त करता है।
 सत्त्व म वह एक हा साम मूत यथाथ चित्र है, और निमूठ इच्छाया का प्रतीक
 चित्र। हमारी मानवृत्ति परम्परा म से हम वही भाव व्यक्तित्व करते हैं जा हमारे
 वर्तमान जीवन के आदर्शों तथा मूल्यों का विकसित करने म योग देने हा, तथा
 वर्तमान जीवन मूल्यों की स्थिति रक्षा करते हा। यदि हमारे बग तथा समाज म
 गलत जीवन मूल्य प्रचलित हैं तो हम पुराने साहित्य स केव न उती के अनुसार
 अपन लिए चुनाव करत हैं। उदाहरणत एक हिंदी के नौजवान कवि न अपनी
 कहानियो म, उरोजा का एम कपोता की उपमा दी है जो उदने के लिए मानो
 तमार बठ हो। अब इस भाव को पजनम हा निम्नलिखित पत्ति स मिलार्ह—

उरज उठीना चक्रवाक क छीन कथों

मदन खिलौना या सलीना प्रान्प्यारी के ।

स्पष्ट है कि उस नौजवान कवि ने अपनी कहानी म चक्रवाक को केवल कपात
 बना दिया है। बात वही है।

वर्तमान युग म एम पुरान साहित्य क प्रति व्यापक आकषण नहीं रह गया
 है जिसम सङ्कचित (अथवा बट लीजिए नाम्प्रत्यायिन) धार्मिक भाव हो चाह क
 कबीर क हा का किसी दूसर के। इगला विगला, सुपुम्ना अनहद नाद आदि
 पारिभाषिक शब्दावला मन म विशेष भावोत्तेजन नहीं करती। जन मानस की
 व्यापक दृष्टि स दलन पर यह पना चरता है कि बहुत सी धार्मिक कल्पनाएँ भी
 आज मृतवत हैं तथा भ्रमिर्भ्रमि भा बदल गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक
 विशेष युग म विशेष प्रकार के साहित्य के श्रेष्ठ अस्तित्व मात्र ने वह साहित्य
 हर युग के लिए उतना ही विशेष आवषण रखे, यह आवष्यक नहीं है। इसीलिए,

साधारणतया, श्रेष्ठ माने जाने वाले साहित्य पर भाषण इत्यादि होने है, किन्तु भाषणकर्त्ताओं से एकांत में यदि जानकारी ली जाए तो उनमें से पचास पीसनी यह कहेंगे कि केवल बचपन में या गुट की जवानी में उठाने उस 'श्रेष्ठ' साहित्य का पता था। ध्यान में रखने की बात है कि तुलसादासजी का रामचरितमानस भी अब 'नागो' के लिए उतना आकर्षक नहीं रह गया है जितना कि वह पहले था। साहित्य की श्रेष्ठता मात्र ही उससे नित्य आकर्षण का आधार नहीं है। उसकी श्रेष्ठता का युगयुगीन आधार है—वै जीवन मूल्य तथा उनकी अत्यन्त कलात्मक अभिव्यक्ति जो मनुष्य की स्वतंत्रता तथा उच्चतर मानव विकास के जीवन मूल्यों का प्रतिपादन करने वाले गारगनाथ या तुलसीदास ही बना न हा। इन जीवन मूल्यों का म मान राजनतिक अर्थ नहीं लगा रहा है, उसमें वे सभी मूल्य सम्मिलित है जो मनुष्य के त्रिभिन्न पक्षा का दिशानिर्देशन करते हैं जस अम काय, प्रम वत्यादि स सम्बन्धित मूल्य। साराण यह कि पुराने साहित्य का केवल वही श्रो-सौंदर्य हमारे लिए ग्राह्य होगा जो हमारे नवीन जीवन मूल्यों के विकास में सहायक सहाय्य दे अथवा उनकी स्थिति रक्षा में सहायक हा किन्तु यदि य जीवन मूल्य स्वयं हमारी ह्रास-ग्रस्त दशा से उत्पन्न ह, तो हमारे नवीन भावा के अनुकूल वह श्रेष्ठ साहित्य न होने से हम उसका आदर करते हुए भी उससे रस न ले पायेंगे। गुड साहित्यिक-सौंदर्य, मात्र-सौंदर्य निरपेक्ष सौंदर्य की निरपेक्ष-सत्ता स्वीकार करने वाले लोग या तो स्वयं धाले म है अथवा धाम्ना देना चाहते है।

ऐसे सौंदर्य के माना को उनके सामाजिक सम्बन्ध से दूर करके तो देखते ही हैं व चित्रकला संगीत, शिल्प तथा स्थापत्य कला के सौंदर्य के दृष्टि कोण से साहित्यिक सौंदर्य की व्याख्या करके उसके नित्य आकर्षण की कान-निर्गम्यता सिद्ध किया चाहते हैं। वस्तुतः चित्रकला शिल्प आदि कलाएँ अपनी रम्याभा और गठन की मनाहारिता के साथ साथ विशेष भावा और भाव-दृष्टिवा का प्रदर्शन करती हैं। किन्तु जहाँ यह गठन और भाव अधिन शला प्रस्त तथा प्रस्तराभूत हो जाते हैं उनका आकर्षण भी हमारे लिए कम हा जाता है। आगे चलकर उनका अपील तो हमारे लिए केवल आलकारिक हा जाती है। निश्चय ही, यह प्रकार सत्वालीन ऐतिहासिक, सामाजिक धार्मिक मूल्यों की रूि प्रस्त अवस्था की जड़ता में उत्पन्न है। किन्तु यदि उम काल में जीवन भावा का प्ररफुर्ण है ना हम उनकी धार्मिक कल्पनाओं के बावजूद, उनमें प्रभावित होत हैं। वस्तुतः प्रभावित होत समय हम उनकी धार्मिक मीमात्रा को अचेतन रूप से ध्यान में स हटाकर उनका आकर्षण का ग्रहण करने हैं। जितना अधिन उनका आकर्षण होगा उतना ही प्रभावन अधिन होगा उतना ही ध्यान ध्यान

प्रश्न है। कुछ लोग अपनी उम्मुक्त, ग्रहप्रप्त वामेच्छामो वा, पौराणिक बल्गा चित्र द्वारा, ऐसे आदश रूप में प्रस्तुत करत है, मानो यह भयानक वाम व्याकुलता मनुष्य के आध्यात्मिक भाव की चीनक है। ऐसा उदात्तीकरण, 'निबररुत उवशी' में देता जा साता है।

मक्षेप में जिन मनोवेगा का जितना और जसा उदात्तीकरण हागा उमका मौदय उनना नी घटिया या बन्धिया हागा। इम उदात्तीकरण के लिए दूसरे जीवन मूल्या का उमम मिश्रण तथा सगति आवश्यक है, तभी व उदात्तीकरण है। यदि य जीवन मूल्य गलत जीवन मूल्य, शापक वर्ग-व्यद जावन मूल्य हुए ता जो उदात्तीकरण हागा व भी अनुचित भ्रमगत हागा, तरातीन स्थिति में भने नी व उपादेय तथा उचित मिद हा। इम प्रकार का उदात्तीकरण हमार लिए आवश्यक की वस्तु नहा। किन्तु शापक शमक वर्गों में भी बहुत बार, उनकी विशेष परिस्थितिया में तथा जनमत के दबाव के कारण, उनके विशेष क्षेया में विशेष जीवन मूल्य भी हा सकत ह जो तत्कालीन परिस्थितिया में प्रगतिशील सिद्ध ह। जस उमम सामाजी नामक मगनु पीटर अपने देश की उननि के लिए अनक प्रगतिशील देशोत्थान मूलक वाय करता है। एमी स्थिति में जिन जीवन मूल्या न उमे देशोत्थान के वाय में लगाया व जनता के अनुरून थ। इन व प्रगतिशील थ। सामाजिक प्रगति विरोधी जावन मूल्य गलत जावन मूल्य भी ह भने थ व अनक मनाहर नाम रूप धारण करके हमारे सामने आयें। गलत जावन मूल्या से समुक्त उदात्तीकरण रिक्त मौदय हागा या सौदय ही नहीं हागा—और कुछ भले ही हा तथा कुछ लोग का उमम मौदय भल ही दिभाई द। मनावेगो का सच्चा उदात्तीकरण मही जीवन मूल्य समुक्त मनावेगो में ही हा सरता है अथवा नहीं। य जीवन मूल्य बलाकार के वास्तविक जीवन से तथा उनके आधार पर बनी हुई भाव दृष्टि से सम्बद्ध ह। अस दृष्टि के बिना तथा सचेत वास्तविक जीवन के आधार के बिना, कृत्रिम रूप में मात्र यौद्धिक प्रणाली से अथवा काल्पनिक रीति से किया गया जीवन मूल्या का सम्मिश्रण रिक्त सौदय को जन्म देगा अथवा उमम सौदय ही नहा हागा। इन सही जीवन मूल्यों का भावात्मक हात्तिक अन्त करणमूलक ममस्त-व्यक्तिगत उत्तमशील ग्रहण तब तक सम्भव नहीं है जब तक लखक अथवा बलाकार प्रगतिशील मानवीय जीवन मूल्या से तथा उनका वहन करन वाला शक्तिया से और समाज के उस पक्ष से जिनको उम जनता का पक्ष कहत है अपन को तदाकार नहीं कर लता। किन्तु यह ध्यान में रखन का यात है कि सत्र युग में यह सम्भव नहीं है क्योंकि जनता यदि निद्रावस्था में लीन ह यदि उसके भीतर उसके अपने तीव्र भावा का वहन करन वाले महापुरुष या प्रतिभाशाली प्रतिनिधि उत्पन्न नहीं हुए हैं, अथवा ऐसा परिस्थिति पदा हुई है कि जिनमें उसके इन प्रतिनिधिया का प्रभाव ननी है—और उसका अपना स्वयं

का प्रभाव नहीं है—सक्षेप में यदि वह एक प्रायः अंधकार युग है तो ऐसा स्थिति में कलाकार भी प्रायः उसी युग के भावा का प्रतिनिधित्व करेगा। आज के युग में जन जीवन के पक्ष से तदाकार होने की वास्तविक जावजगत सचत प्रशिक्षण लेखक के लिए बड़ी भारी नैतिक परीक्षा है। उसमें न केवल अपने भीतर पुराने और नये के बीच—(पुराना आत्मा और नयी जीवनगत आवश्यकताओं के बीच—पुराने सफ़रों और नये सत्या के बीच आचरणात्मक धरातल पर व्यक्तिगत जीवन के सभी पक्षों के क्षेत्रों में) युद्ध छिड़ जाता है बरन अपने वग तथा समाज में दृढ़ युद्ध भी करता पड़ता है। उस दौर पर बहुत कम ऐसे मायो होते हैं जो आत्मा का नाम स्मरण करत हुए भाँ सच्चा सहानुभूति तथा प्रेरणा देते हैं। इसके साथ ही कलाकार के इस नैतिक साहस में अतिरिक्त उसका साथ बारी श्रमता पर भाँ निभर रहता है वह यथाथरा बिनना परस्पर सम्बन्धों से युक्त त्रिवक्त्रण आवतन कर सकता है। कलाकार की, हम शिक्षा की ओर मजिद जितनी बड़ी पीछा होगा उतनी ही उसका दृष्टि मम भेद तथा सक्रिय होगा। ठीक उसी के अनुमान या अनुपात में उसकी कला सृष्टि भी सबल रहगा। बिनतु साथ ही साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि वास्तविक जीवन का वास्तविक परिणति मात्र भारत मासिद काय न है। उमका पूरणा वास्तविक समाज की प्रगतिशास शक्ति का सघष में सम्पूर्ण शक्ति तथा सक्रिय योग देन का सवेत्नशास कायकारी क्षमता के विकास पर निभर है। गाँ है गाँ य इस बात पर भाँ निभर है कि व प्रगतिशास शक्तियों समाज में नयी तर प्रभाव शाली है गाँव हृदय का व बनी तर मिश्रित और आध्यात्मिक कर मरा है।

संस्थापना के सम्बन्ध में गाँव में समय एक कूल समाज के या आता है। प्रश या शिक्षा जाता है— क्या वास्तविक न आचरी ऊपर निगी शनों का पावन किया था? बिनतु उमका बात भाँ गाँवभूमि गाँववासीक है। शक्ति उमका सम्बन्ध में नये वया बया था यदि वास्तविक जमना तर में वास्तविक है तो फिर उमका उच्चता में गाँव नये है। बिनतु उमकी श्रुतता आचरी शनों का पावन करने में तदा हूँ है।

संस्थापना के सम्बन्ध में उमका उमका म आप में नये प्रश है। उम काय या बात का हम मावातजित या बया है बिनतु उमका वास्तविक वास्तविक में मूर्तवाक्य नये मगदफ नया बनता निश्चय नये बया श्रुत या नये भाँ श्रुतम नयी है। मर हम बदन में वास्तविक के मग म राई धरना नये मगता। नये शिक्षा म्युत उमका शिक्षा का मन्थन तर मग हूँ। मैं व नये बया है शिक्षा वास्तविक भाँ नये मग है। यम म्युत उमका शिक्षा का वास्तविक भीतिशास म काँ सम्बन्ध नये मगता। मनुष्य के मग प्राधान्य का वास्तविक मन्थन है गाँव गाँव कि काँ मगता नये श्रुत या नये मगता

तथा सीमाया म दिलचम्पी रचना आया ह । निश्चय ही, जब हम कालिदास के काव्य का अनुशीलन करते हैं तो हम उस जीवन के मौल्य चित्रा तथा तरंगानान मूढम-दृष्टिया म आनन्द मन है । कालिदास का काव्य हमारे लिए आज, आधुनिक अर्थों म प्रेरणाप्रद भले न हो किन्तु हमारा रजन करने की शक्ति तो उसम इसलिए है कि वावजूद सामन्ती समाज के त्रिया कलापा क चित्रण के मनुष्य प्रेम तथा प्रकृति प्रेम की उमम जा तस्वीरें मिलती ह उनकी पूवपीठिका म हमारे वतमान जीवन को रचन पर यत् पना चमना ह कि बसा ममाज वाता गी मानव-मुलभ प्रेम तथा प्रकृति मीदय आज हमारे जीवन म नहीं रहा ह ? हमारे इस अभाव से ही कालिदास क प्रति हमारी अनुरक्ति बन् जाती ह । किन्तु हम अभाव के अभाव म भी कालिदास के प्रति हमारी आमन्ति इसलिए स्थिर रहती ह कि उसम मानव-मुलभ प्रेम तथा प्रकृति मीदय के प्रति स्वाभाविक अनुरक्ति क दशन होत है । उसम प्रेमी द्वारा प्रेमिका की भयानक उपेक्षा का जो विरोध कलात्मक माध्यम से प्रस्तुत हुआ ह वह हमारे जीवन मल्या को दूढ करता ह और हमारे हृदय को स्पश करता ह ।

वस्तुतः साहित्य की शाश्वतता का प्रश्न परम्परा के रूपायन का प्रश्न ह । हमारे पूवकालीन समाजा का सवश्रेष्ठ उपलब्धियाँ जिह हम अमर कहत ह इसीलिए हमारे लिए मूल्यवान है कि उनके भीतर ममाय हुए जीवन-नत्वा को हमने अपना परम्परा म अतभूत कर लिया ह । यह अवश्य ह कि परम्परा म पूवकालीन जावन-नत्वा को अतभूत करते हुए हमने उनका रूप ही बदल डाला ह । मानव-मुलभ प्रेम तथा प्रकृति-मीदय म स्वाभाविक मानव अनुरक्ति हमारी परम्परा का अग ह किन्तु बहु विवाह उस परम्परा का अग नहीं है रीति विलास उस परम्परा का अग नहीं ह—कालिदास के लिए भले ही वह महत्त्वपूर्ण थे । पुरान राजाआ के अन्न पुर उद्यान आदि के भीतर भाग विलास या रग रहस्य के रूप म भा प्रेम क चित्र साचे गय ह जिसम मपलिया क ड्रेप विदूषक आदि के हास परिणाम और राजाआ की स्वराता आदि का दश्य हाता ह । उत्तर काल के मसृष्ट नाटका म इसी प्रकार के पापपान नि सार और विलासमय प्रेम का बरण हुआ ह उस रलावली' प्रियशिका कपूरमजरी इत्यादि म । इसम नायक को बहा वाहर वन पवत आदि के वाच नना जाना पडा ह बन् घर के भीतर ही गुनना छिन्ता चोन्डा भग्ता दिग्गया गया है । (जायसा प्रयावनी का भूमिका पृष्ठ ३६, रामचन्द्र गुकर) निश्चय ही, इस प्रकार की रति तथा प्रेम का हमारी परम्परा मे वात् मन्वध नहीं हाता चाणिक । किन्तु इनक विपरीत भवभूति कालिदास कथीर, तुलसी मूर घनानन्द आदि क काव्य म मम जना जना मनान्तर मू म दृष्टिया जीवन पक्षो का मार्गित उन्धान तथा जावन विवक दृष्टिगाधर हाता ह यह मत्र साहित्य हमारी म्यायी सम्पत्ति ह । यह सम्पत्ति

केवल पुस्तक ही बधी नहीं रहती, वरन वास्तविक पद्यदशक जीवन मूल्या के रूप में परिणत होकर हमारे उन जीवन मूल्या को अधिगम्य बन कर हमारी परम्परा का अंग बन जाती है। कला वीक्षण का दृष्टि से, किसी काव्य का मनोरंजन ही जाना एक बात है—विलकुल भिन्न बात है उसका जाका मूल्या के रूप में हमारे सामने आना। मात्र भावोत्तजिन करने वाला कला हमारे वास्तविक जीवन पथ के लिए मूल्यवान भी हो यह आवश्यक नहीं है। हमारे लिए मूल्यवान वस्तु वह है, जिसमें मार्मिक जीवन विवेक मूक्षम-प्रणियों तथा जीवन के वास्तविक पक्षों का उदघाटन हो।

(२)

अब यह पहले ही कह चुके हैं कि साहित्य की केवल ऐतिहासिक ग्रथवा मूल समाजशास्त्रीय विवेचना कर चुकने में जा आलोचक अपनी इतिवृत्तव्यता समझ लेते हैं व न केवल एकपक्षीय अतिरेक करते हैं वरन व, मनुष्य का विवेचन करते के स्वान पर केवल उसके अस्थि पजर को ही पाठना के सामने करके यह कहते हैं कि दिया मनुष्य जो कुछ है वह यहाँ है। वस्तुतः अस्थि पजर के बिना मनुष्य का रूप ही असम्भव है। किन्तु जब तक उस अस्थि पजर तथा उस पर आधारित सम्पूर्ण शरीर को हम हृदयगम नहीं कर सते, तब तक हम उसके प्राणिशास्त्रीय महत्त्व का बोध नहीं हो सकता। किन्तु जब तक हम उसका अस्थिपजर नहीं समझते हैं तब तक शारीरिक अवयवों की तथा सम्पूर्ण शरीर की वैज्ञानिक जानकारी भी प्राप्त नहीं हो सकती। यह हम पहले ही बताना चुके हैं कि मनुष्य की ऐतिहासिक सामाजिक सत्ता ने ही उसका अपने पूर्ववर्तमान पाशव स्तर से ऊपर उठाकर मानव स्तर तक विकसित किया तथा विभिन्न अधिकाधिक विरहित समाजों के उत्थान क्रम के द्वारा उसे अपने वर्तमान रूप तक पहुँचाया है। इस ऐतिहासिक सामाजिक सत्ता द्वारा मानवजाति का रूप ही मानव चेतना है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि ऐतिहासिक सामाजिक शक्तियाँ द्वारा उभरी यह चेतना विकसित है व उन शक्तियों से स्वयं संचित हो। जब तुलसीदासजी की चेतना रामचंद्र का चरित्र उपस्थित करती है तब तुलसीदासजी यह नहीं जान रहे कि वह वस्तुतः रामचंद्र के द्वारा सामाजिक समाज के मानव सम्बन्धों को उपस्थित कर रहे हैं। उन मानव सम्बन्धों का सामना स्वरूप उभरा समस्त चेतना का बाहर है। किन्तु वह सामना स्वरूप ही मूल्य है—तुलसीदासजी उन जान पाते जानें।

तुलसीदासजी के लिए स्वभावतः ही मूल्य तथा समाज के मूलविकास नियम नहीं थे। समाज ही एक विषय विनाभावस्था में जब पूजागामी समाज के भीतर मंडकूर वगैरे परिणत हो जाता है तब उसकी विचार धारा के रूप में दृढात्मक नीतिगत उपस्थित होता है जो मूल्य तथा मानव समाज के मूल विकास

नियम का वैज्ञानिक उद्घाटन करता है। तब मे वैज्ञानिक पद्धति से समाज व
रूपान्तर की काय प्रणालियाँ निर्धारित की जाती हैं तथा मानव विकास नियम
मानव सबल्य से पृथक् तथा स्वतंत्र हैं। समाजवादी समाज में भी वैज्ञानिक
सबल्य से स्वतंत्र ही रहते हैं। पुराने तथा समाजवादी समाज में, इस सम्बन्ध
में स्थिति भेद केवल यही है कि समाजवादी समाज में मनुष्य उन मूल विकास
नियमों के प्रति जागरूक रहने के कारण अपने को उन अनुसार सचेत रूप में
मानता चलता है किन्तु विकास नियमों को वह स्वयं बदल नहीं सकता। पुराने
समाज में वह इन नियमों से सचेत भी नहीं रहता। पूजावादी वर्ग इन नियमों
के अस्तित्व को मानता ही नहीं, इसलिए ये नियम उनके उत्पन्न हुए तथा
अवश्यभावी परिणामस्वरूप के वैज्ञानिक ढंग से नहीं बरतकर बरतने नियमों के
वैज्ञानिक लक्ष्यानुसार एसी काय पद्धतियाँ भी निर्धारित करती हैं जो पूजावाद के
अन्त तथा समाजवादी स्थापना के वैज्ञानिक क्षेत्र में दृष्टात्मक भौतिकवाद
तथा आदर्शवादी विचार धाराओं का यह युद्ध वस्तुतः श्रमिक-वर्ग के जनवाद तथा
पूजावाद के बीच तुमुल-संगम है।

हम ऊपर यह बत चुके हैं कि पूर्ववादी समाजों में समाज विकास के मूल
नियमों का उद्घाटन न होने के कारण, साहित्यकार यह नहीं जान पाता था कि
जिस समाज का वह चित्रण कर रहा है उसके मानव सम्बन्ध वस्तुतः उस समाज
के मूल आर्थिक ढाँचे के रूप-स्वरूप में निहित तथा उनमें उदगत हैं। तुलसीदासजी
यह नहीं जानते थे कि जिन मानव सम्बन्धों का वे चित्रण तथा आदर्शिकरण कर
रहे हैं वह समाज सामन्ती समाज है। किन्तु ध्यान में रखने की बात है कि सामन्ती
मानव सम्बन्धों तथा उनके तत्कालीन स्थिति न हो तुलसीदासजी का चित्रण
रूपान्तर की। अतएव तुलसीदासजी का साहित्यिक अभिव्यक्ति के मर्म का समझने
के लिए उनके साहित्य तथा उनके वाक्य गान्त्य के वास्तविक आकलन ग्रहण के
लिए हम तुलसीदासजी का ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना ही
होगा। इसके बिना हम उनके वास्तविक महत्त्व तथा हमारे लिए उनके मूल्य का
भी आकलन ठीक ठीक नहीं कर सकते।

हमारे वर्तमान साहित्य शास्त्रियों ने साहित्य समीक्षा का चार प्रचलित
पद्धतियाँ बनलाई हैं—(१) साहित्यिक (२) मानवज्ञानिक (३) प्रभाव-अभिव्यक्ति
शक्ति (४) प्रगतिवादी अन्तर्गत ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय। श्री नन्दलाल
बाजपेयी ने साहित्यिक पद्धति का ही सर्वोत्तम मर्म है। वस्तुतः समाजशास्त्रीय
ऐतिहासिक पद्धति अपने भीतर इन चारों का समाहार करता है। यह बात अलग
है कि हमारी वर्तमान ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय पद्धति अधिकांश विरसित न होने
के कारण, जोवन के साहित्यिक अभिव्यक्ति के मानवज्ञानिक तथा नैतिक
पक्षों का सम्पूर्ण उद्घाटन न कर पाय। किन्तु प्रगतिवाद के विरोधियों ने

मनावधानिता का नाम पर भूते साहित्यिता का महा शिवा । यदि प्रसादात् त
 र्थात् सा बुद्धि का प्रकाश माना जाय तदा तदासाहित्यिता साहित्यिता चिन्तित
 यस्मिन् तदा विशयवशत परा ह्युक्त स्वयं भा उक्त बुद्धि का प्रकाश माना गिना ।
 यदि प्रसादात् जी त मनुष्यो मानव मा का प्रतीक माना जाय साहित्यिता साहित्यिता
 न मनुष्य चिन्तित यस्मिन् का विवेकाना न कदा ह्युक्त स्वयं भा उक्त मानव मा का
 प्रकाश माना यद्यपि सा स्वयं तदा विगत प्रारंभ म तपत्रात् मानव का सा प्रति
 तिष्ठित कदा है सा मनुष्या सा तदा ।

गतिगतिक समाजशास्त्रीय समीक्षा वस्तुतः सा साहित्य विभाजित का जा
 गवता है—सा का सा समीक्ष्य साहित्य का मनाभाव जावन चित्रणा तथा
 उनम प्रस्थापित जाय मूल्य का विवेका करणा दृष्ट मूल गतिगतिक-समाज
 शास्त्राय उद्गम रूपान्त का विवेका करणा है तथा दूर जावन-समाप्त का
 कमीटी पर कगवर उनका मूल्यारन तथा प्रभाव मापन करता है तथा इन विष
 यन के शौरान मजितन बना विवेक सम्प्रधी प्रश्न उठता है उक्त साहित्य सपवा
 विस्तृत उत्तर देनी चकती है । निश्चय ही यह बहुत बड़ा काम है जिसके लिए
 एक लेख नहीं बरत् एक बहत् अवकाश बहत् प्रयास क गुणन की सावधानता
 है । इस आश्रम भी तक हिन्दो म विषय रूप से काई महत्त्वपूरा काम नया हुआ ।

(३)

साहित्य विवेक मूलतः जीवन विवेक है । दर्शित जावन स दूर भ्रमना
 आराम पुर्सी पर बड़ा हुआ समीक्षण—बड़ा विद्वान ही कदा न हा जीवन का
 वचनिक विवेचन नहीं कर सकता फिर उसको साहित्यिक अभिव्यक्ति के विषय
 पण की तो बात हा क्या ? अगर जीवन को जाने, अगर जिन्हो को पट्टान जो
 आलोचक केवल जावन का गुजा (साहित्यिक अभिव्यक्ति) का विश्लेषण करता
 है उनको किसी-न किसी हद तक साहित्यता का सहाय समा ही पडता है । अर्थात्
 दूसरे शब्दों में जो साहित्य जावन का गतिमान प्रक्रिया का नहीं जानता इन
 प्रक्रियाओं के साहित्यिक प्रतिबिम्ब के स्वरूप का भी नहीं पहचान सकता ।
 जीवन म दूर आलोचक की मुशिरन कर्मणि भी रहती है कि साहित्य का बाह्य
 रूप विधान (सूत्र इत्यादि) से पृथक् कला का भीतरी अपन नियम भा हात हैं ।
 य गतिमान प्रक्रियात्मक नियम, जो वस्तुतः साहित्य-मृजन की मूल मनोरथानि
 प्रक्रियाएँ ह यौर उनका अभिप्राय उस तय तक समझ म नहीं सा सकत जब
 तब आलोचक स्वयं उक्त जावन का नहीं पहचानता जिस अरथ उपस्थित करता
 चाह रहा है । अच्छा बात ता यह है कि आलोचक के लिए यह आवश्यक है कि
 वह उक्त जावन का अर्थ स भी अधिक पहचान तथा वह अर्थ द्वारा कलात्मक
 रूप म उपस्थित जीवन तथा जावन रूप म उपस्थित कला का सञ्चाई ऊचाई या
 निचाई का पहचान गवता है । बट्टा एसा होता है कि स्वयं तपत्रात् जिस जावन

का कलात्मक रूप उपस्थित करना चाहता है उम वह अधूरा ही ममभना है (उमका उम पूरा जान नहीं जाना) अथवा उम परंपरागत दृष्टिकोण में देखते हुए उसके किसी एक अंग का ज्यादा फुलाकर दमना है और उमके इस विद्वृत अथवा अध विद्वृत रूप को उपस्थित करता है। निश्चय ही उम मान पर यह आवश्यक है कि आलोचक लेखक द्वारा कलात्मक रूप में प्रस्तुत जीवन का लेखक से भी अधिक पहचाने। तभी वह जीवन को एक पक्षीय अथवा विकार प्ररित उपस्थिति को उद्घाटित कर सकता है लेखक की मूलभूत अक्षमताओं और अविद्या का पर्दाफाश कर सकता है।

अतः एक ऐतिहासिक, सामाजिक विवेचना स्थूल रूप से ही जानी जायगी। वह आलोच्य साहित्य के सामाजिक ऐतिहासिक परिवेश का ता यथातथ्य निरूपण कर देनी है किंतु लेखक के व्यक्तित्व के भीतर उसका मनोवैशेष व मनोवैज्ञानिक मम को उद्घाटित नहीं करती। सच्चा ऐतिहासिक दृष्टिकोण वह है जो न केवल बाहरी स्थिति परिस्थिति को धरन साहित्य के मनोवैज्ञानिक तथ्या को समाज की विनासात्मक ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण करता है तथा उन मनोवैज्ञानिक तथ्या का विवास की गतिमान धारा की बीच की लहरों के बीच में उद्घाटित करता है।

भाववादी ममीक्षा व प्रेरक छायावाद की केवल मनोवैज्ञानिक व्याख्या वस असंगत तथा असम्पूर्ण है यह यहाँ बनलाया जायगा। छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहना बमानी-सा लगता है। यदि हम 'स्थूल' का अर्थ द्विवेदी युगीन इतिवत्तात्मकता ग्रहण करते हैं अथवा दैनिक-जीवन के लोक-व्यवहारात्मक पक्ष का लेंते हैं, और 'सूक्ष्म' का अर्थ हृदय की निविड गमैटिव इच्छाओं अथवा भावुन आकांक्षाओं और सुकुमारताओं का नेत हैं तो हमारा सामन तुरन्त ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिर क्या व्यावहारात्मक अथवा (उसका नतिन, साहित्यिक अभिव्यक्ति व) इतिवत्तात्मक पक्ष के विरोध में यह तयाकथित सूक्ष्म उठ खड़ा हुआ? हमको यह जानना चाहिए कि छायावाद के पूर्व भी हजार डेन हजार वष व गामती युग में प्रेम सम्बन्धी सुकुमार भावनाओं की कविता हुई थी और हृदय की कोमल वक्तिया की सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति भी उमम हुई था। कानिदास का कान भूल सकता है? सूर के साहित्य का कौन आँखा की ओट रख सकता है? प्रेम के महान सुषा कविया और उलू शायरा का हम नजरअन्दाज नहीं कर सकते। मीरा जब लाकलाज खा देती है तब क्या उनमें स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं है? कबीर जब पड़ितो और मुल्ताओं को डाँट देने में तब क्या वह स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं है? तुलसीदास जब समाज में यह देगन हैं कि 'गोरि मुई सब सपति नामी। मूढ मुडाये भय मयासा अथवा वे जब यह कहते हैं कि आह्लाण छूट का काम कर रहे

है और गूढ ब्राह्मणा का और उना सिद्ध वे राम का चरित्र खरर वराश्रम धम का घ्राण उपस्थित करत हुए भी यत्नत ह नि राम तो केवन अप्रय मत न प्यारे है ताह व रिशा भी जानि अथवा धर्म क हा तो क्या व मनुष्य क वक्तव्यावत्तय को भावुकता म सूँघनर उसा। मुमुक्षु बनानर तथा उसे दुःखता प्रदान कर तदानीन मामाजिा मान्सागिक पक्कार क विरुद्ध उपस्थित नटा कर रह के ? मनुष्य क हृदय क जा तथाकथित सूक्ष्म है उनक ता अनक रूप हो मरत है अर्च्छे और सुर दोना। एक कवीर क हृदय ता सूक्ष्म है ता दूसर पक्काकर क कामुक हृदय वा।

कवीर का सूक्ष्म निम्नदह तत्कालान समाज के अत्यन्त उच्च भावो का अग्रभूमि म उपस्थित विसा जागृक सशस्त्र प्रचरी का काम करता है। इमा सूक्ष्म के बल पर कवीर का मूल पक्कडपन समाज की विपमताभा की मुट्टी म दवे हुए गले को अपने को मुक्त कर लेने का सबक पढाता है निम्न जातियो म आत्मगारिमा का संचार करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आपको यह बत लाना होगा कि छायावादी सूक्ष्म किसी प्रकार मध्ययुगान सूक्ष्म स निम्न है। यहा यह भा स्पष्ट हो गया है कि वस्तुत जिस हम सूक्ष्म कहते हैं वह यदि वस्तुत सूक्ष्म है तो सामाजिक ऐतिहासिक विकास धारा का अग्रभूत होकर ही वह सूक्ष्म है अथवा वह कुछ ह ही नहीं। सामाजिक ऐतिहासिक शक्तियाँ जिस प्रकार बाह्य सामाजिक ऐतिहासिक स्थिति परिस्थिति निर्माण करती हैं ठीक उसी तरह वे यक्ति क भातर प्रवेश कर उसक सूक्ष्म का निर्माण करती हैं। उसके सूक्ष्म का प्रिकसित कर उस बल प्रदान करती हैं। माहित्य की सामाजिक ऐतिहासिक याग्या सूक्ष्म क रूप-स्वरूप का ही वास्तविक व्याख्या है। उदाहरणत हम आयावात् क तथाकथित सूक्ष्म का नव तक विशदीकरण नहीं कर सकत जब तक हम एक प्रार उस मध्ययुगान सूक्ष्म स भिन उसी विविध विषयताभा का निरूपण नहीं करत। इन विषयताभा का निरूपण भी अथूरा सामाजिक एतिहासिक व्याख्या है जब तक हम यत्न नहीं बत पायेंगे कि य विषयताएँ उत्पन हो क्या हूँ ? एक विषय दशकाल और वग म हो उनका आविर्भाव क्या हुआ ? हमार यहाँ साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब माना गया है। किंतु प्रतिबिम्ब का निरूपण होता है। इसके विपरीत बहुत सा एसा साहित्य ह जिसत समाज के विचारा का बल निया उसे अग्रगामी और प्रगतिशील बना निया। मराठी के प्रसिद्ध उपयासकार हरिनारायण आप्ले न 'पण लशात वाए धेतो आनि समाजिक उपयासा के द्वाग मध्यवर्गीय परिवार म सामन्ती उत्पीडन के विरुद्ध नारी के जो करण दश्य सामन न्य उठाने मरागष्ट्रीय मध्यमवर्गीय आनि-पुरप समुदाय की चतना हा बल दा। आग चलकर स्वय स्त्री-साहित्यवादी न हा अपने पीडित जावन का चित्रण

उनके प्रति की गई वचनान्ना और अयाया का अकन किया तथा अपनी मुक्ति की योजना की। फलतः आज तुलनात्मक दृष्टि से महाराष्ट्रीय स्त्री अथ प्राचीन म्त्रियो की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है चाहे वह निरक्षर ही क्यों न हो। बगान म शरद न अपने नारी पात्रों के गम्भीर अन्तःस्वरूप का उन्घाटन ता किया किन्तु शरच्चन्द्र की कमला को छोड़, उनके किसी स्त्री पात्र न पुरुष की नारी सम्बन्धी सामाजिक वारणान्ना और भावनाओं को इतना नही भिन्नोडा। परिस्थिति वपम्य से धक्का खान हूए विवसित होने वाली चरित्र की भीतरी गम्भीरता हम चाह जितना पिघना दे, वह गम्भीरता न ता परिस्थिति के वपम्य का औचित्य ही है न वह गम्भीरता परिस्थिति के वपम्य को धक्का देने के लिए पाठन को मजबूर ही कर पाता है किन्तु व गम्भीरता हम उन वपम्यो की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य करता है यह आवश्यक नहीं है। शरद का पाठक नारी के चरित्र का गम्भीर सौंदर्य देखता है उस गम्भीरता के पीछे की मजबूरी और उसके कारणों की ओर नहीं खिचता। आखिर इसका कारण क्या है? कारण है बगाल की जमादारा प्रथा से आशान्त मध्यमवर्ग की सामंती लौह शृंखलाएँ।

तात्पर्य यह कि जब तक हम समीक्ष्य साहित्य का मनोवचनिक सौंदर्यात्मक विवचन के द्वारा समाज शास्त्रीय विरूपण नहीं करते तब तक हम उसके अन्तःस्वरूप का उनकी क्षमताओं तथा सीमाओं का पूरा विवेचन तथा मूल्यमापन भी नहीं कर सकते।

जीवन तथ्य एवं विचित्र शब्द है आजकल के कलाकारों की दृष्टि से। वस्तुतः, बाह्य जगत से सवेदनात्मक तथा ज्ञानात्मक प्रतिक्रिया करके हमने विश्व का आम्बुनराकरण किया है, और इस आत्म जगत के द्वारा बाह्य-जगत का स्वानुभूत करन का प्रयत्न किया है और इस बाह्य-जगत से हमने विविध प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये हैं। इन सब क्रियाओं से हमने अपने अन्तःकरण में भाव-पुज बनाय हैं। इन भाव-पुजा में, जगत से हमारे सम्बन्ध, उसके प्रति हमारी भाव-दृष्टि तथा जीवन मूल्य—य सब उन्हा के रंग में डूबे हुए होने के कारण भिन्ने ही अलग अलग दिखाई न दें किन्तु व जीवनानुभव के रूप में अपने विभिन्न पक्ष रखन हा है। अतएव वे जीवनानुभव, एक ही माय, वस्तु-तथ्य भी है और एक सवेदनात्मक तथा भावात्मक पुज भा।

दूसरे शब्दा में, जीवनानुभव के दो प्रधान पक्ष मूलभूत-पक्ष, नित्यश एकी भूत स्थिति में विराजमान रहत है। वे हैं—बाह्य सद्भ-भूत जो बाह्य जगत का, और उससे आत्म सम्बन्धों को सूचित करते हैं। जीवनानुभव का दूसरा पक्ष है—बाह्य परिवेश के प्रति का गई सवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ, जो अन्तर में भाव-पुज उपस्थित करके उस पूरे जीवनानुभव का अत्यन्त आत्माप बना देती हैं।

चूंकि यहाँ हम, प्रधानतः, जीवनानुभव के बाह्य सद्भ-भूत को ध्यान में

रगतर वात करना चाहेन है मनिण म जावनानुभव का जावन-मध्य भा व
 मानत है। ध्यान म रगन का वात यह है कि य जावन-मध्य अनुभवात्मक रूप म
 हा ह्यय म विद्यमान र मान म मनिण उह जावनानुभव व देन म भी वा
 हज नयी।

यह ध्यान म रगन की रात है कि विषय का आभ्यन्तराकरण जा हमन
 क्रिया ह और बाहर मन जो तर-नर व अपन मन्-व स्थापिन करव रवे ह
 व एक विशेष पन्वियार वग समाज गण्ट और देश म हा। और यह सारा
 बाह्य इयता आदिवान स नी आती दुर् मानन-मत्ता के विवास वा एव विशेष
 अवस्था का छोटन करती है। और इम विषय अय म मनुष्य ने अततत्व एनि
 हागिक मामाजिन शक्तिया द्वारा प्रत है कयाकि वे शक्तिया अपनी पूरी गति
 और स्थिति म सामाजिक-मास्वुनि आध्यात्मिक परम्परा व रूप म नवीन
 आदण तथा मान मूल्या के रूप म सद्भिश्चि तथा सस्फार क रूप म तथा इनक
 अनिरित सामाजिक राजनतिक वातावरण बनवर आदि सुस्थिति अयवा
 दु स्थिति को धारण करने वाली परिस्थिति के रूप म—और न मालूम बितन
 ही अवल्पनीय रूप लकर मानव अत करण म व काय करती है और मनुष्य
 स्वय उनस क्रिया प्रतिक्रिया करता हुआ बाह्य विषय का स्वानुकूल बनाने का
 प्रयत्न करता हुआ और स्वय का विश्व के अनुकूल बनाने की वाशिन करता
 हुआ और इस पूरी प्रक्रिया म दोना की काट छाट करता हुआ वह अपनी जीवन
 यात्रा करता रता है। सक्षप म मनुष्य की वास्विक जीवन यात्रा और जीवन
 यापन पद्धति तथा इन दाना क मूल म अपनी आकाशाएँ तृप्त करते रहने का
 उसकी प्रवृत्ति—य तीना मिलवर उमका ह्यय के तत्वा का—उसके अत करण
 व तत्वा का रूपायन करती है। अतएव अन्त करण म सच्चि न तत्वा ग
 एतिगसिच-समाजशास्त्रीय विश्लषण न कवल सम्भव है वरन व आवश्यक
 भा है।

वह आवश्यक उम प्रतात हाया जिम समय मानव मत्ता म अनुराग हो।
 नरा का निम-दह वद कुछ स्वून-बुद्धि ममीक्षका वा कनाकारा मीत्य
 वाण्या तथा अयात्मवादिया क निरुद्ध पडयत्र जमा प्रतीत हागा।
 किन्तु यक्ति चनना कितनी सीमित है क्या हम यह नटा मालूम ? न हम
 पूरा आत्म-साक्षात्कार ही कर मतत ह न पूरा अपना चरित्र साक्षात्कार।
 कभा-नभा हम उमकी भनक भर दिलाइ दनी है।
 मीनिए म नरा की आवश्यकता होती है। कवि कलाकार उपयास
 कार चित्रकार ग नकर ता विज्ञान क महूपियो का। तभी हम पूरी मानव सत्ता
 का और उमक आना म अपन अपन जीवन का अपनी आत्म मत्ता का दय
 परत मवन हैं।

लगाती भाव-दृष्टि में समाज में गीतनाभुव, जो उगरी अनुभूति में मान्यम स कला के तब धन जान है अपना प्राग्भिन मूल अवस्था में जायन नथ्य नान के कारण समाज शास्त्राय तथा एतिहासिक विशेषताओं में युक्त होत हैं। समाज विकास का एतिहासिक शक्तियाँ के द्वारा समक के हृदय के भीतर अभिव्यक्त होत हैं। समाज जीवन-तथ्या का भास का सत्य न जानता उनका नियामक तथा प्रवर्तक न जानता, उनका केवल अनुभविता, भोक्ता और अभिव्यक्त होता है यद्यपि समाज के हृदय में बनावनामिद दृष्टि में ये जीवन तथ्य अनुभूति बनकर अपना प्रकटीकरण के लिए अनुकूलन रहत हैं। और इस प्रकार निगूढ मामिद अनुभव के क्षणा में समाज उन्हें अपने भास अपने अनुभव, अपनी कल्पना आदि बहुर पुरारता है फिर भी ये जीवन-तथ्य लखक द्वारा उत्पादिन नहीं होत। समाज उन जीवन-तथ्या का अनुभव चिन्ता, मूल्यांकन करना है। जायन-तथ्या का अपने हृदय में अनुभव करत हुए लखक उन्हें निजी बना लेता है। तन्मन्तर उसकी विधायक शक्ति मृजतशील कल्पना के द्वारा उह कलात्मक रूप में उपस्थित करती है। इही सामिद अर्थों में समाज अपना कला का विधाना है। यन्तु ये जीवन-तथ्य लखक के हृदय के भीतर उपस्थित होत हुए भी अपने अस्तित्व के लिए, मात्र उसकी सत्ता पर ही अवलम्बित नहीं रहत। ये सामाजिक अनुभवा के रूप में समाज के हृदय में विराजमान रहत हैं। उन जीवन-तथ्या से जुडन वाला मूल्यांकनकारी विवेचनकारी मामिद दृष्टिकोण भी समाज के विकास का ही एक विदु है। यह विकास मात्र व्यक्तिगत न होकर समाज विकास का एतिहासिक सत्या द्वारा प्रवर्तित होता है जिनके एक अंग रूप में वह समाज स्वरूप रहता है। सारांश यह है कि बनामिद दृष्टि से देखन पर समाज सामान्य अर्थ में मन्त्वपूर्ण तथ्य उपस्थित होता है कि साहित्य का समाज शास्त्रीय एतिहासिक व्याख्या यन्तु उतनी बाहरी नहीं है जितनी कि समाज जाती है। वह बाहरी और भीतर—जाना से युक्त और दोनों के पर है। कला के भीतर रूप से पृथक (अथवा विश्वपण की सुविधा के लिए यह पृथक्ता मान रहे है रूप और तथ्य के भी एक दूसरे से पृथक् नहीं रहे सक्त) तत्त्व का आलोचना समाजशास्त्रीय और एतिहासिक भा हो सकती है। भले ही हम समाज शास्त्र और एतिहासिक विकास का पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग न करें (जो यह हमशा जरूरी जाना है)। किन्तु हमारा आलोचना का वास्तविकता पर आधारित ज्ञान के लिए समाज रचना के एतिहासिक विकास के स्तर आनाच्य वन्तु के समय प्रचलित भाव परम्परा लखक के पण परिवार तथा व्यक्तिगत विकासवस्था तकनीकी सांस्कृतिक विकास आदि आदि कला के अध्ययन के साथ ही लखक की उस समस्त स्थिति परिस्थिति से की गई प्रतिक्रिया का अध्ययन भी नितान्त आवश्यक है और इस अध्ययन के अन्तिम गर्भिताय समाज

कलात्मक अनुभव

बाल्मिकल स हा हमारा मनामय जीवन आरम्भ हा जाता है। कल्पना काजिए एमे बालक की जो आसपास के जगत की सवेदनाएँ ग्रहण कर, फिर उस जगत के त्रिम्वा का अपन मन म घुमाता फिराता हो। अपनी मा से मिलने आन बालिया के वह चेहर देखता रहता है। उनके वस्त्र, उनके मुख की आभा रेखाएँ उनके व्यवहार की विशेषताएँ देख देखकर वह बालक उनके सम्बन्ध म उनके जीवन के सम्बन्ध म तरह-तरह की कल्पनाएँ करके आत्मलीन होता रहता है। वे कल्पना चित्र कभी उसे रूला दें या उदास कर दें या कभी हँसा दें, अथवा एक अपरिमीम कुतूहल उद्दीप्त कर दें। मुख्य बात यह है कि सवेदनाएँ, भावनाएँ, बाध शक्ति, परस्पर महकार करके उम निराले जगत म ल जाती है। वह निराला जगत कल्पना का जाक है, फिर भी वह वास्तविक जगत की प्रतिभाआ ही से बना हुआ ह। उस जगत मे वास्तविक के स्वप्न के रग ह। बालक मन उसम डूब जाता है।

कभी पन्ना के यहाँ काई दुघटना हा जाता है। बालक उस दुघटना के मनामय चित्र बनाना रहता ह। उस पना चरना ह कि वहाँ एक नहा मर गया। मरन क पल (मा न बनाया था) आर की माँस नगी थी। भयानक साम ॥ बालक उस साँस की कल्पना करता है ॥ उम नहे का कौन मी कल्पनाएँ हाना नगी। कौन सा नबलीफ हाती हागा ॥ उसकी माँ का जो किस तरह राना हागा ॥ उमक जी पर क्या बीता हागी ॥ बालक का हृदय इन कल्पनिक चित्रा म भीगता रहता ह।

आर न जाने किस नियम से, बालक ना हृदय आर कला बह जाता ह। अच्युता तो वो अपन को बहुत बडा समझते ह ॥ माँ को और पिता को यह अच्युता नहा लगना फिर भी वे उनकी आबभगत करन ह। बडी मेहमानदारा होनी है। हम भा ही चाय का एक कप भी न मिल लकिन उनकी भया जम्बर हागी। उनसे बडे-पन से माँ बाबूजी, दवे-दर रहत हैं ॥ धाबिर, इसकी जरूरत क्या है ॥ सिफ इमलिए कि वो कही तहमोलदार हैं ॥

मा कर्ती है मन्वु स मन गया ॥ क्या न मलें ॥ यह कहता है बच्चू
 चपरासा वा लका है। ऐस लक बुर हान है। गरीबा के लडका को तमीज
 नही होनी। उह बुरी पुरा घादने होता ह व गुण्ड हान है। वे सामन बाल स
 न पम न भजिष यान ह। नकिन मन कुचन गरीबो के म जा लडक है, उन
 नहर यहाँ बुर ह ॥ क्या हसा क्या किलकारी कसी बन्गि शरारत कती घना
 उगसी धार प्यारी नजर ॥ गरीबा के लटने भा ता अचछ हा मन है। पता
 नही क्या मा घर क अलियो स तो दिल की बात करती है लकिन मुझे बचू स
 गलन नही देती। यह बुरी बात है। आजाणी स्तिनी अचछी होता है। व न म
 बडा हूंगा पूरा आजाण हो जाऊंगा ॥ क्य बच, वा दिन न्य आयगा ॥
 आतिर क्या हुआ अगर मा कुचले रह ता ॥ बच्चू स तो खेल सकग नायू क
 घर जाकर बात तो कर सकेंग ॥ नायू की माँ बडी अचछी है मुझे गुलगुल देना
 है। लेकिन घर स निरानन का मिले तब न ॥

पिताजी कहत हैं कि कृष्णराव नीकरी स निकाल दिज गय ॥ इसीलिए
 ता लच्छू का चहरा कितना उतरा हुआ था अब उनक घर म कसा सूनी सूनी
 पीला पाला गहरा-गहरा उदामी होगा। सबकी चालें डौली हो गई हामी सबक
 बच भुक गय हामे सबक बाल बिलर बिलरे हामे। लाग बस थके थके स चलत
 हामे उनक गल म रघाँमी का बाँटा कसकता होगा। लच्छू मारा मारा फिरता
 हागा।

व ताग बड अचछ है हमार घर स आज उनक घर दा सर घाटा गया गत
 धीर शकर भी चाय वा एक पुडा भी। आतिर एसा क्या हुआ ? कृष्णराव वा
 चहरा कितना अचछा है ॥ बाल य हूए है जिनम स दुनिया वा सारा भलापन
 हस रग है। वह भलापन है कि गिलन अगारा की मीठा गरमा वाला सिगनी
 है ॥ मम्बा गारा तान चहरा नम्बो नाक धीर धाँने क्या अचछा है क्या
 कोमन मुलायम रागनी पौरता ह ॥ हाय रे ! दुनिया इतनी बुरा क्या है ॥ इतने
 अचछ आत्मी वा अचछा रत्ने क्या नहा दनी ॥ हमारी सूनी पूनी कृष्णा वाका
 वा बवकूप समभता है। पिताजा सभी उह मूय समभत है। लकिन मरा माँ
 बमा नही समभता। माय चौक म चन धान हैं धीर माँ स तान करा है। माँ
 उनक लिए चाय बनाता है। मुझे चाय न्या रता। यती ता बुरा वात है।
 कृष्णा वाका बदन अचछ है मुझे प्यार करत है। पाम बिठा तत है चाय
 वा एक घूट मुम भा देत है। मैं उनक यहाँ जाऊंगा उता क यहाँ रहूंगा।
 लच्छू उताम है आज उता क साथ मरूगा। कृष्णा वाका वा चहरा दगना
 रहूंगा उनक पर दावूगा। हमाग वाका इतना नया है। वह मुझे बड आत्मा
 वा लडका कहता है मुम दूर-दूर रगती है उनक घर का मिट्टा स कहा मरा
 क्या गनी नहा जाय। उनका लच्छू भा मुझे दूर-दूर रगता है। लच्छू क यती

कटा फटा टाट है, हमारे यहाँ आराम कुसियाँ हैं। लच्छू के यहाँ कमी भनाती हुई गरी उदासी है, हमारे यहाँ चहल पहल। लेकिन, जब अपन घर कृष्णा बाबा मुझे गोद में ले लेते तो लच्छू खडा खडा तावता रहता है। उसकी माँ मुझे दूर दूर भले ही रखे जी हान पर वह मुझे शकर फावन वा भी देती है। लेकिन, लच्छू। न जाने उसने दिल में क्या है। मेरा क्या गुनाह कि मैं बड़े आदमी का लडका हूँ। मैंने कौन सा पाप किया। कहो तो यह निक्कर यह साफ शट उतारकर फेंक दू। लेकिन क्या कहें, मैं बहुत डाँटता हूँ। तो क्या हुआ। लच्छू भले ही अकड़े, मैं जान-बूझकर उसे हँसाऊँगा उससे खेलूँगा, उसकी उदासी तोड़ूँगा। लच्छू आखिर कृष्णा बाबा का लडका है। आज लच्छू उदास है बहुत उदास। आज मैं उससे ऊपर खेलूँगा। उसके आन नाचूँगा। अगर वह जो भर भाँ मुसकरा उठे, मजा आ जायगा। कृष्णा बाबा खूब खुश होंगे। लेकिन ऐसा क्या होता है। कृष्णा बाबा की नीकरी क्या छूट जाती है। वे तो बड़े शांत स्वभाव के हैं।

बे प्राद्वेन नीकरी क्यों करते हैं। नाना कह रहे थे सरकार उन्हें नीकर नहीं रखती। कहते हैं बरसा पहल, जब मेरा जन्म भी नहीं हुआ था उनके घर से बम मिले थे, बन्दूकें भी तमच भाँ। तबसे उनका भाग्य फिरा। सजा काट कर आय। क्या होता है मजा। बड़ी बड़ी दीवारें, काल काठरो। हाथ पाव में जजीरें। चक्की पासना पडती है चक्की।

घर उजड गया। अब मुनीमा करत है। कोई उन्हें पूछता नहीं। घर बान, हमारे नाना, पिताजी सब—सब उन्हें बेवकूफ कहते हैं। कहते हैं उन्होंने, बाध में, एक अखबार भी निकाला और चौपट हा मय। अब तो सरकारी नौकरा मिल ही नहीं सकती। लोग उन्हें भी बेवकूफ कहते हैं।

लेकिन, कृष्णाराव कैसे है। वे बेवकूफी करने रत हैं। आखिर उन्होंने यह क्या नहीं सोचा कि सबसे पहले बेवकूफी की आनवीन की जाय और अपना नानाजा बागज में निखर उम बागज की सबके चेहरे पर दे मारें। कृष्णाराव कृष्ण नहा, शकर महाराज हैं। महाराज जिन्होंने शय में किसी जमान में बम था। वर दम मुझे अभा भी नीख रहा है। कोई भी रखन को तयार नहा इमान कि वे बेवकूफ हैं। मुझे भाँ लाग बेवकूफ बन ह। मैं अटकता हूँ सवाल का जवाब नही देना। इसीलिए मरी पिटाइ हाती है। कई बार ता चान्नी की मडर पर बठा कि नीचे कूदकर बूच कर जाऊँ। लेकिन, तभा खयाल आता है कि मैं मडर पर मग पडा हूँ, भरे मिर क पाव घाड मारकर मी रा गी ह। पिताजी पर उठा रह है। नाना नहा मैं अपन माँ पाप का दुख नहा दूँगा। मरुंगा नाना जिन्दा रहेगा। बेवकूफा नहीं रहूँगा नहीं ली।

लेकिन मैं भाँ मितना टूँचा हूँ। उनसे गत नि रास्ते में इकना माँग

बठा ।। उहाने बराबर एक इकना निकानकर द दा । पिताजा बड नाराज
 हुए । उमम इवना क्या नी ।। बृष्णाराय के लिए उसका मन म न्या भाव है ।
 मुझे बड पसन्द न्या । बृष्णा वारा एक इकनी ना क्या मुझे गन कुछ न गना
 ह सिवाय मार क ।

ललिन टुच्छा तो मैं हूँ हा । नाना ने वन रामायण सुनाई । उनका नाना
 चार मुझे पसन्द है और उमम भातर दुनना बठा उनका गारा श्रांग । वहाना
 कहत कहत मुभम क्याता हँमत है । उ हानि कटा कि जाव हत्या पाप है । ललिन
 राज गुन सन्मल मारत है मारा बठन है । जा हो जाव न्या पाप जरूर है ।
 मरत वन बितना तकलीफ दाना हागी जाव को । बल वाग्नि हुई । गला पाना
 न भर गद । पाना म नगातार छू पडा जा रह ध । क्या मडा आ रहा था ।
 एक जीव फँस गया । शायद भीगुर था । मन पानी म स उस भ्रमग करना
 गाहा । नेकिन मरा कोशिशें बजार हुई । वह दूर था । मैं डण्डे स उस पाम
 लीच रहा था । वह तडप रहा था । भयानक थी उसका छटपटाहट । पता नहीं
 मुभ पर क्या भूत सवार हुआ । उमकी तडपन स मरे दिन म कुछ ऐसी तडपन
 हुई कि मीन निशाना लगाकर उस डण्डा दे मारा । वह पतम हो गया । मर हाथ
 स पाप हुआ । वह छूट गया मुझे छोड गया सिफ तडपन के लिए अपन दु ख म
 पराएदु ख म । बार-बार सपना आया है उस तत्पने भीगुर का जा पानी म
 आधा पडा था और हाथ पर मार रण था ।

मैं भी भीगुर हूँ जा इस पाना म श्रौधा पडा हूँ—एक अजीब गन पानी
 म । रास्त चलत दु प द जाता हूँ और फिर मुरा लगता है मन खुद को वाटने
 दोडता है । अपन पर वाकू नहीं कर पाता । यही कारण है गणित म मन लगान
 की बोशिश करता हूँ लकिन जमनर काम नहीं कर पाता । मन भागता है
 भागता रहता है । इसालिए ता मुझे मा फफी पिताजी बवकूप कहत हूँ । सिफ
 नाना बसा नहीं कहत ।। बवकूप तो हूँ भी लकिन इसके लिए साचार हूँ ।
 कल्पना कीजिए कि इसा तरह का बात मोचो साचन बालक का प्राय लग
 जाती है । मन धन जान स बट सा जाता है ।

य उमका मौमय जावन ह । किनु इम मनामय जीवन म ग्राह्य की
 सामग्रा ह बाह्य क तत्त्व हैं ।। नो क्या अन्तरके तत्त्व ही नहीं ? अवश्य ह ।।
 लकिन कस्तुन के उसरी आभ्यन्तर शक्तियाँ ह—मवना बाध शक्ति कल्पना
 और इच्छाण य उमका अन्तर की चतना क अगभून ट । इन सभी शक्तिया या
 प्रवृत्तिया का बाह्य स जब मम्मिलन जाता ह तब व प्रक्रिया गुरु हाता है
 जिस में बाह्य का आभ्यन्तरीकरण बटता हूँ ।। व गुरु नी म जावन जगत का
 आभ्यन्तराकरण करना आया है । इम आभ्यन्तराकरण प्रयोगन म ही वह

बाह्य सञ्चिन्ता तथा सम्कार भी प्राप्त करना है साथ ही वह अपनी प्रवृत्ति के अनुसार, जीवन जगत से प्राप्त मानवीय मूल्या द्वारा उसी जीवन जगत की आलाचना भी करता है। आत्मातोचन भी करता है। यदि उसके सम्कार बुरे हैं तो निश्चय ही उसकी मूल्य-दृष्टि भी विकृत होगी।

वानक, स्वभावतः मवदनशील होता है उसमें कल्पनाशीलता भी तीव्र होती है। हमारा जीवन निरीक्षण भी उसकी अपनी सीमा में तीव्र होती है।

मुख्य बात यह है कि वह अपनी मवदनाग्रा के आग्रहा में अपने अनुभवा के आधार पर कल्पना द्वारा, जीवन की पुनरचना करता है, अपने अनुसार। कल्पना के रंगों में डूबी इस जीवन-पुनर्रचना के रंग निम्न-रङ्ग भावुक हैं। इन चित्रों के रंग में डूबकर वह उन्हीं चित्रों से प्राप्त मवेदनाग्रा में भावुक्त हावर रम जाता है। अपने मनोमय जीवन के इन क्षणों में, जब वह उन चित्रों में तमय हाकर, उनमें प्रस्तुत हुए जीवन की सवेदनाएँ और अनुभूतियाँ ग्रहण करने लगता है उस समय वास्तविक बाह्य से क्रिया प्रतिक्रिया करने में व्यस्त और प्रस्त रहने वाले मन को—जो व्यक्ति के मुख-दुःखसे मण्डित रहता है—बहुत पीछे छाट देता है उसके ऊपर उठ जाता है, उसके पर हो जाता है। सक्षेप में, एक ओर उसकी मुक्ति हो जाती है तो दूसरी ओर उसी के साथ एक्यद्वता घा जाती है। तटस्थता और तमयता दूरी और मामीप्य का द्वन्द्व उच्चतर स्तर पर एकीभूत हो जाता है। मवदना के आग्रह—अर्थात् सवत्नात्मक उद्देश्य जिसमें इच्छित विशयाग के तत्त्व भी मिले रहते हैं—उनके दम में उनके चारों ओर वास्तविक अनुभवों के आधार पर, उसी विधायक कल्पना उन्हीं अनुभव तत्त्वा का मिलाकर जीवन की एक पुनर्रचना कर बठती है। सवदनात्मक उद्देश्य अपनी पूर्ति के लिए एक विशेष दशा में, उन कल्पना चित्रों का वेगायित कर देते हैं। इस कल्पना चित्रों में डूबकर उसी जीवन का प्रगाढ अनुभव जाना है—जिसे जीवन अपना सार-सार प्रतीत जाना है।

बाह्य जीवन-जगत् के रूप स्वरूप और गति प्रगति के जा अपने नियम हैं वे हम पुनर्रचित जीवन के नतीजे। पुनर्रचित जीवन किसी सवत्ना की पूर्ति के लिए ही जाना है। उसी चित्र माला उन्हीं सवत्नात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के दिशा में दीर्घा है। दूसरे पक्ष में पुनर्रचित जीवन-जीवन का अपनी आँतानामी है उसका अपना एक स्वायत्त-तन्त्र है। किन्तु जगत् का आँतानामी यह स्वायत्त-तन्त्र मापदण्ड है यद्यपि वह वास्तविक जीवनानुभवा के ठाम आधार पर बना हुआ है। और उगद बिना यह अमम्भव है। हम भूनाशर के बोध में ही सवत्नात्मक उद्देश्यों को और कल्पना का यह तत्त्व मितते हैं कि तिन तत्त्वा के विभिन्न पटनम् इस प्रकार गन्ता या थनाना कि जिनमें उन सवत्नात्मक उद्देश्यों का पूर्ति का विधायक कल्पना का मूल काय है।

विधायक कल्पना द्वारा पुनर्रचित जावन एउ विशिष्ट अनुभव याता एउ मास उज्वे की तमबीर नपी बरन तत्समान साग अनुभव वा य उन्तु एउ सामायावरण है। सीलिंग, उन मानस प्रत्यभों म विधाय प्रातिनिधिकता आ जाती है। व्यवस्थित रूप स मध्य-वद्ध हान पर व ही चित्र अणता डग प्रातिनिधि ता के फलस्वरूप पाठन या श्राना क अन वरण म तत्समान मरणासा द्वारा तत्समान चित्रा का जागत कर दत हैं। अनुभूति क्षण वा विशिष्टता क रूप म विशिष्ट है और अपनी प्रातिनिधिकता ने कारण व सामाय भा। एम प्रकार व विशिष्ट और सामाय क दृढ की अनतर एनाभूत स्थिति क रूप म नी कल्पना द्वारा जावन की पुनरचना हाती है। इस पुनरचना म स हा जीवन वा प्रगा अनुभव होता है। ध्यान म रपन की वात रेउन इतना है कि इम पुनरचना का अणता एक स्वापत्त-तत्र हान क वावजूत उस मूलतत्त्व वास्तविक जीवन के अनुभूत तथ्यो म स हा अर्थात् हृदय म सचित जीवन की सारभूत विशेषताएँ हैं। उदगत होन हैं मानो वे अपने जिये जाने वाल जीवन की सारभूत विशेषताएँ हैं। जीवन का पुनरचना म वास्तविक अनुभव बाह्य तथ्यात्मक जीवन की साग्भूत विशेषताएँ प्रतीत हान के कारण हा उन पुनरचित जीवा चित्रा म हम जीवन ही का जगत् ही का तथा अपना खुद का प्रगातम अनुभव हाता ह।

इस प्रकार का मनोमय जीवन और उमका अनुभव वस्तुतः कलात्मक है। उसी से हम उस ग्राह्या की प्राप्ति हाती ह जिमम एउ आर चान या प्रकाश है तो दूसरी आर जावन का आन।

इस प्रकार के अनुभव वातका स लवर बद्धा तत्र हात ह कविया स लार अकविया तक होन ह मजदूर स लवर सम्पन तक होन है। तलका स लार थोतासा तक होते है। इही अनुभवा की हम कलात्मक अनुभव या सौ दयानुभव क्त ह। कवल मनुष्य ही सौन्दर्यनुभव प्राप्त कर सकत हैं पशु नहीं।

सारा मनोमय जावन कलात्मक नहीं हाता। जिन क्षणा म मन निज उद् स्थिति म रहता है व कल्पना द्वारा पुनरचित जावन म तमय और तत्राकार हाकर अपनी निज बद्धता नहा ता सकता अर्थात् जब व मुक्ति आर बद्धता तत्स्थता और तमयता सामीप्य आर द्वारा विशिष्टता और सामायता क मून दृढा का उच्चतर स्तर पर एकीभूत स्थिति म नही पहुच सकता तत्र वमा हालत म उमका मनोमय जावन कलात्मक ननी कहा जा मरता। इस प्रकार क अकलात्मक मनोमय जावन म मन वा उसक अतिगत मुग दु ए और राग द्रव हा घर रत्न ह। फन मन वा अणन स मुक्ति ननी टुटकारा नही। दूमर गण म मनोमय जावन क कलात्मक क्षणा म अणन आपम छुटकारा पाए प्रगा और व्यापक अनुभव हाता ह।

निज उमा मनोमय जावन क कुछ क्षण एम भी हान ह जय मन एक और

अपने से तो परे हो जाता है, अपने से तो ऊपर उठकर साक्षता है, किन्तु दूसरी ओर सवेदनात्मक उद्देश्या की प्रबलता इतनी नहीं होती कि कल्पना उद्दीप्त होकर जीवन का पुनर्विधान करे। मनुष्य एक ओर अपने विशिष्ट सुगन्धुस का भाक्ता है तो दूसरी ओर वह उनका द्रष्टा भी है। अपने से परे जाने, दूसरा से अपना वा मिलाने जान तथा बोध द्वारा विशिष्ट का सामायीकरण करने और मात्र मात्र पहचानने और ग्रहण करने की उसमें अदभुत शक्ति है। बलात्मक अनुभव की पटना के पूर्व और निजबद्धता की स्थिति में उतरने के क्षण के पश्चान जा एक बीच की हालत पदा हाती है उस हालत में सवेदनात्मक उद्देश्या की मापद्विष्य मदता के कारण, विधायक कल्पना के विचरण और प्रस्फुरण के अभाव में अर्थात् मात्र तटस्थता मात्र द्रष्टा स्थिति के रूप में रहता पर हमारा मन जो धाराएँ बहता रहती हैं उह हम एक प्रकार का मनन भी कर मनन है। मनामय जीवन में ऐसा जीवन मनन चरता रहता है।

इसी स्तर के जीवन मनन या जीवन चिन्तन में ही, हमारी बोध शक्ति और ज्ञान शक्ति प्रबल होती है। भीतर ही भीतर साक्ष विचार जारी रहता है। हृदय के भीतर समाप्त अनुभव, बोध और ज्ञान की मन्त्रियता के फलस्वरूप अधिकाधिक प्राज्ञ और अधिवाधिक उबल जाने जाते हैं। त उज्ज्वलतर और प्राज्ञलतर अनुभव हृदय में संचित हो रहा है। दूसरी ओर बाह्य का अनवरत आभ्यन्तरीकरण होत रहने में, नव प्राप्त तत्त्वा का नय अनुभवा का माजन और उनका सचयन भी आवश्यक है। वह भी अपने आप में होता जाता है। मनामय जीवन के इस रूप का इस स्तर को "म बलात्मक चेतना का सिद्धांतर कहेंगे। ऐसा क्यों यह आभा चलकर स्पष्ट होगा। ज्ञान में रखने की बात है कि "म रूप या इस स्तर पर प्राज्ञताकृत अनुभवा का दारिद्र्य जिस कलाकार में होगा, जा कलाकार इस स्तर के ज्ञान का ही न समझता होगा अथवा जिससे अनुभव बाध और ज्ञान द्वारा प्राज्ञ न बनेंगे बल्कि एक ओर अनुभवा की अपरिमाजिन विकृत स्थिति प्राप्त करेगा तो दूसरी ओर अनुभवा के दारिद्र्य का भी वह अधिकारी होगा।

यह ता सही है कि बोध और ज्ञान शक्ति द्वारा ज्ञान अनुभव परिमाजित हात है ज्ञान। पूर्व प्राप्त ज्ञान द्वारा मूल्यारित और विश्लेषित हाकर प्राज्ञ होकर, अन्त करण में "याग्यात हाकर व्यवस्था बद्ध ज्ञान जात है। किन्तु स्वय अनुभवा में भी सवेदन की चिन्तनरूप दुष्प्रकार्य है। अतएव साक्ष और ज्ञान का वाय भा, सवेदन का विरहित रहता है किन्तु उक्त वाय न है भय ही उस समय सवेदन अधिक भीष्ट दशा में न हा।

मनोमय जगत में यही वह स्तर है जिसमें हम अपनी मूल व्यक्ति प्रस्त प्रवक्तिया के परिमाजन की आरम्भिक स्थिति भी वह मवत है। अपने परे जाने, अपने में

ऊपर उठन दूसरा स अपने को मिलान विशिष्ट स सामान्य पर पहुँचने की यह जो नानात्मक संवदा की दशा है नानात्मक अनुभवा की दशा है वह सबम होती है। वह मनुष्य की मूल उत्पत्तता का लक्षण है। किन्तु किमी म वं पानी और बहुत थोड़ी होता है किमा म बहुत और बहुत अधिन।

यानी वह स्तर है जहाँ हम विही आत्माओं धियो बाह्यनीय गुणा अभिन पगीय नक्ष्या म एवात्म हान वा उ अत म मिलाने वा उनकी सहायता मे अपन परिमाजन करन वा अपने वा एक जिशा दन वा प्रयत्न करत है। और एम प्रकार व्यापनतर और उत्तततर जीवन प्रणाली या जीवन विकसित करन वा प्रयत्न करत है। सधप म यह वं स्थान है जहाँ ज्ञानाजन करन व्यापनतर अनभव अजन करन अपन आपवा अनुभव आन्द्रिय म न रत्ने देन वा इच्छा म अनभव अजन करन अपन आपवा अनुभव आन्द्रिय म न रत्ने देन वा इच्छा म गचलित जाने हैं। यनी अपन बहिरन्तर जीवन वा व्यापन और क्षेत्र को और भी विस्तृत करन वा इच्छा हो जाती है। यही वह स्तर है जहाँ हमारी शिक्षा दाशा मस्वार आदि दुष्टिरोण तथा मूल्य भावना वा वाप होता है। केवल सुविधा क तिम में इसे मनामय जीवन वा दूसरा स्तर बहूगा। पहला स्तर निजउदता वा स्तर है। एम दूसर स्तर पर विनासशील मनुष्य की वास्तविक आत्मचेतना मत्रिय रत्ता है। यह मत्रिय आत्मचेतना हमारे अनुभवा को अधिनाधिर व्याख्यात और व्यवस्था-बद्ध करक उज्ज्वल और प्राजन करती हुई अपने आपको परिभूत करता रत्ती है। प्राजल और उज्ज्वल हुए अनुभव हमार हृदय म मचित हो जान है। उनके स्तर पर स्तर बाने और बलत जान है। नानात्मक वलिया क कारण व आभव विशृंगत गति रूप म नगी करन व्यवस्था रूप म हृदय म स्थित होत है।

ध्यान म रत्ता वा बान है नि वास्तविक गौ-दयानुभवा क अर्थात् कलात्मक अनुभवा क क्षण म अयात माामय जावन क तीमरे स्तर पर जय संवेनात्मक उदर्या म अंगित बलता प्राजन विधा करन है तब उम जावन विधा क अनुभव-तव (एमा दूसर स्तर म गली हुई) एमा गचित अनुभव-व्यवस्था म प्रसृष्टित होत एम उम तामर अर्थात् कलात्मक क्षण को उपन उ पाठ है। मभाप म विधासक बलता संवेनात्मक उदर्या तामर विचलित तिय गण जिन अनुभवा क पत्नम बलाता व पतभर एमा दूसर स्तर म ममात्ति रत्त है। मनामय जीवन क एम दूसर स्तर पर पाण जान वा र अनभव दति अन्य है अरवा उनम धर्मिय मना है वा तामर तामर उनता उचित मूयासन न। ए पा रत्त है मित उत अयन ए हात जिशा मया है ता वमा स्थिति एम दूसर स्तर क मापतिर दारिद्र्य क कारण मगा क बला ना स्थिता मत्ता निग कर्त्तित उतामा। माप म उमरा अस्थिरता म मामित मत्ता और संवेच्छा तामा है। एमा स्तर क विनास क पुच्छता ए उमरा कला का पुच्छता निर्भर है।

इसी बात का ध्यान म रगत मुझे यह प्रताप जाना है कि अपने मे पने जान, अपने म ऊपर उठन अपने को दूसरा मे मित्रान और उमम हूँ जान का यह वाय अधिक सावधाना स ग्याना गन्नाई म और अधिर बार होना चाहिए । उनारा की जागरूकता का अर्थ ही यह है । अपने मे पने जाना, अपने म ऊपर उठना, क्या भायुक्ता नहीं है, वरन् इमक विपरीत उन्मु-देशन या तत्त्व-ज्ञान का उन्मनिवाय अर्थ है । जान का जो मनावधानि गुण है, उनी इमका गुण भी है । जानन क बिना, कि जिस जीवा म यह अपने म पने जाकर अपने मे ऊपर उठकर हृदय का विस्तार करता रहता है वे सर्वोच्च कलात्मक क्षण मौ-दर्शानुभूतिया व व क्षण जहाँ विधायक कल्पना द्वारा जीवन पुररचित हा जाता है वम्नुन सम्भव ही नहीं है । यदि हम कलात्मक क्षण का तोमरा स्तर मानें तो अपने स पर जाकर हृदय का विस्तार करी वाले इम साधारण स्तर का हम दूसरा स्तर ही कहेंगे ।

यह कहना गलत है कि दूसरे स्तर क या उम तीसरे स्तर के मनोमय जीवन का अनुभव, कलाकार के अनिच्छित बिना अर्थ को होता नहीं । नन्ना वह सप्रको अपने मे पने जाना, अपने म ऊपर उठकर जीवन जगत म भोगना, उसम रमना, और उम प्रकार उदात्त प्रेरणाएँ ग्रहण करना वस्तुन एक गहन मानवीय प्रक्रिया है । यदि यह प्रक्रिया अपूर्ण है अपूरा है अत्यन्त सीमित है तो बसी स्थिति म उम लेखक की कला भी छिड़ना और मतहा रहेगा । किन्तु जो नेमन मनीषा है मानव-जीवन म जिसकी दिनचर्या गहरी है, वह कुछेन भावनाप्रा की या मन स्थितिया की सुन्दर आकृतियाँ उपस्थित करके सतीप नहीं पाएगा । वह अपने सम्पूर्ण अनुभव जीवन को अभिव्यक्त करन का प्रयत्न करेगा, भन्ने ही उमका वह अभिव्यक्ति कलावादिया की दृष्टि स प्रमुदर ही क्या न हो । नि सदेह कचार की वस्तु सी दानिया म ऊबडगाबडपन है फिर भी व सुन्दर होती है । क्यों है इमलिए कि सौन्दर्यात्मक प्रभाव रचना क भाव, सवेदन और कल्पना रेखाप्रा से गुन्ना हाकर बाहरा अभिव्यक्ति रूपा की मगनि तक चना चलता है । यही कारण है कि हम लाग नजीर की शायरी का आनंद उठा लेते है भले ही उसम स्थान-स्थान पर बाह्य रूपात्मक तोड मराड हो । मुन्ना आकृति का बनाना करने वाले लाग, उम्नुन कलात्मक अभिव्यक्ति का कि ही रिषया तक सीमित रहना चाहत हैं । यनी महा करन उन्हा किन्ही अभिव्यक्ति पन्नों म ही मौ-दर्य दिलाई देता है ।

यह आवश्यक नहीं है कि सौ-दय अनुभूति का क्षण कलात्मक अनुभव का क्षण उस अनुभूति या अनुभव कलात्मक अभिव्यक्ति का भी क्षण हो । उसी तरह, यह भी जरूरा नहा है कि कलात्मक अभिव्यक्ति के वाय क दौरान म, सौ-दय अनुभूति का एकछत्र साम्राज्य हो । कवि उम न केवल प्रतिभा का

ऊपर उठन, दूसरो स अपने को मिलान विशिष्ट स सामान्य पर पहुचन की यह जा नानात्मक मवेदना की दशा है नानात्मक अनुभवा की दशा है वह सबम होती है। वह मनुष्य की मूल उपात्ता का लक्षण है। किन्तु किसी म वह धारी और बहुत थोड़ी हाता है किमा म बहुत और बहुत अधिक।

यही वह स्तर है जहाँ हम किहा आदर्शों, ध्यया वाछनाय गुणी अभिन पणोय नक्षया म एकारम होने वा उट्ट अपन म मित्राने का उनकी सहायता म अपन परिमाजन करन वा अपने का एक निशा दन का प्रयत्न करत है। और एम प्रकार व्यापकतर और उन्नततर जीवन प्रणाला या जीवन विरगिन करन का प्रयत्न करत है। मक्षप म यह वह स्थान है जहाँ नानाजन करन व्यापकतर अनुभव अजन करन अपन आपका अनुभव दाग्द्रय म न रहने देने का इच्छा मे सचलित हाते है। यहाँ अपने रहिरत्तर जीवन का थाप्य और क्षेत्र का और भी विस्तृत करने की इच्छा हो जाता है। यही वक्त है जहाँ हमारी शिक्षा दीक्षा मस्कार आदि दुष्प्रयोग तथा मूल्य भावना का कार्य होता है। केवल सुविधा के लिए म इसे मनोमय जीवन का दूसरा स्तर कहेंगे। पहला स्तर निजबद्धता का स्तर है। इस दूसरे स्तर पर विकासशील मनुष्य की वास्तविक आत्मचतना सक्रिय रहता है। यह सक्रिय आत्मचेतना हमारे अनुभवों को अधिवाधिक व्याख्यात और व्यवस्था-बद्ध करके उज्ज्वल और प्राजल करती हुई अपने आपकी परिपूत करती रहती है। प्राजल और उज्ज्वल हुए य अनुभव हमारे हृदय म सचित हात जात है। उनक स्तर पर स्तर बनते और बनत जात है। नानात्मक वसितया क कारण य अनुभव विशृङ्खल राशि रूप म नही बरन व्यवस्था रूप म हृदय म स्थित हात है।

ध्यान म रगत का बात है कि वास्तविक सौन्दर्यानुभवा के अर्थात् कलात्मक अनुभवा क क्षण म अर्थात् मनोमय जावन क तीसरे स्तर पर जब मवेत्नात्मक उद्देश्या म प्रगित बल्लता जावन विधान करता है तब उम जावन विधात क अनुभव-नख (इसा दूसरे स्तर म गना हुई) मसी सचित अनुभव-व्यवस्था स प्रस्तुतित जात हात उस तामर अर्थात् कलात्मक क्षण को उपलब्ध हात है। मक्षप म विधातक बल्लता मवेत्नात्मक उद्देश्या द्वारा विचरित त्रिय गण जित अनुभवा क पत्रम बनाना क अतभव इसा दूसरे स्तर म समाहित रहत है। मनोमय जीवन क एम दूसरे स्तर पर पाण जान वात अतभव यदि अल्प है अथवा उनम बभिय नग है या तगर तगर उनका उचित मूल्यांकन नग या पा रग है मिर उक्त अगत म हात लिया गया है ना बगा मियति एम दूसरे स्तर क मापनित दारिद्र्य क कारण तगर का कता भा दियना मतग निरी-व्यक्तियद्ध हागी। माय य उमका अल्पिता म मामित मतग और अम्बच्छ जाता है। इसा स्तर क विनाम का पुष्ता पर उमका कता का पुष्ता निर्भर है।

इसी बात का ध्यान म रखते मुझे यह प्रतीत होता है कि अपन से परे जान, अपन से ऊपर उठन अपने को दूसरा मे मिलाने और उसम डूब जाने का यह राय अधिक मावधाना से ज्यादा गहराई म और अधिर वार होना चाहिए । कलाकार की जागरूकता का अर्थ ही यह है । अपन मे परे जाना, अपने मे ऊपर उठना, वथा भावुकता नहीं है वरन् इसके विपरीत, वस्तु दशन या तत्त्व ज्ञान का व अनुवाप अग है । ज्ञान का जो मनावज्ञानिक गुण है, वही इमरा गुण भा है । जावन क बिना कि जिस जीवन म वह अपन से परे जाकर, अपन से ऊपर उठकर हृदय का विस्तार करता रहता है, व सर्वोच्च कलात्मक क्षण, मी-दर्शानुभूतिया के के क्षण जहा विधायक कल्पना द्वारा जीवन पुनरचिन हो जाता है वस्तुन सम्भव ही नहीं है । यदि हम कलात्मक क्षण को सीमरा स्तर मानें, ता अपन म पर जाकर हृदय का विस्तार करने वाले इम माधारण स्तर का तम दूसरा स्तर ही कहेंग ।

यह कहना गलत है कि दूसरे स्तर के या उस तीसरे स्तर क मनामय त्रायन का अनुभव कलाकार के अनिरिक्त विमा अय का ज्ञान नया । नया, व मयता अपन मे पर जाना, अपने स ऊपर उठकर जीवन जगत म भागना, उगम रमना, और इस प्रकार उत्साह प्रेरणाएँ अहण करना वस्तुन एक गहन मानवीय प्रक्रिया है । यदि यह प्रक्रिया अपूर्ण है अधूरा ह अथवा सीमित है ता उमा स्थिति म उस लेखक का कला भी द्वितीय और मरहा रगा । किन्तु जा पैगव मनीषा है मानव-जीवन म जिसकी दिनचर्या गहरा है व कुछन भावनाप्रा की या मन स्थितिया का मुदर आकृतिया उपस्थित करके मन्वाप नया पाणगा । व अपन सम्पूर्ण अनुभव जीवन का अभिव्यक्त करन का प्रयत्न करगा, मने या उमरी व अभिव्यक्ति कलावादिया की दृष्टि म अनुभव की कथा र ता । नि मय कलाकार की बहुत-सी बानिया म उबलवावहन है फिर भी वे मुदर गता है । क्यों है इमलिए कि सौ-दर्शात्मक प्रभाव रचना के भाव, मयन और कल्पना रेखाप्रा स गुण दृकर वाहरी अभिव्यक्तिया की मगति तक चना घनता है । यनी कारण है कि हम लाग नजीर की शायर का आन उठा लन है मने ता, उगम स्थान-स्थान पर वाह्य स्थात्मकता मरहा हा । मुदर आकृति का कलाकार करने वाले लोग वस्तुन कलात्मक अभिव्यक्ति का किनी विषया तक सीमित रचना चाहत है । यही नया वरन् उह किनी अभिव्यक्ति परती म ही माय्य सिगाई देता है ।

यह धारणया नही है कि माय्य अनुभूति का माय्य कलात्मक अनुभव का क्षण उस अनुभूति या अनुभव कलात्मक अभिव्यक्ति का भी क्षण हा । उसी तरह यह भी जरूरी नहीं है कि कलात्मक अभिव्यक्ति क काय व तीरतन म माय्य अनुभूति का एकछत्र माधारण हा । कवि-वम न केवल प्रणिमा का

प्रकटीकरण है वह अभ्यास की भा अभिव्यक्ति है। प्रति ॥ शीघ्र अभ्यास क योग
 ग कवि कम लिखा जाता है। किन्तु भाग इन प्रतिभा वा कथा परिभाषा
 करने ? व्यक्ति के विशेष विभाग प्राप्त जा अभ्यास गुण क शीघ्र गुण धम
 है क्या प्रतिभा है। कवि कई श्रम माध्य है। अपने लिए गियाज की उत्कर्ष
 हाता है। अभिव्यक्ति मरणा बदने की उत्कर्ष जाता है। यह धनविषय नियम
 नहा है कि कवि कम या कतावृत्ति की रचना वा क्षण कतात्मन अनुभूति या
 मोक्षानुभूति वा उच्चतम भाण है। अभिव्यक्ति प्रयत्न एर-दूगर प्रकार वा
 एक श्रय स्तर वा भ्रम है कि जिम स्तर म शब्द मुझावने विषय स्वर भाषि
 क स्वरूप की तुलना हृदय म उठन हुए भावा क स्वरूप ग रन हुए प्रतिभूत
 शब्द विम्बा भाषि की निकालकर अनुभूत को रखा जाता है। एक शर लयन
 गणन भाषा क प्रति उद्बुद्ध ता दूगरा शर वह शब्द क प्रति जागृत रहता है।
 वह क्षण कवि कम की विशेष दृष्टि स आलोचन वा क्षण भा हाता है क्योंकि
 कवि कवि हृदय म उमटत भावा म सगति उपस्थित करना चांता है अनवानर
 तेस भाव भा उत्पन्न हात है जो मूल भाव स सम्बद्ध हात हुए भी क्षत्यत
 सौंदर्य सपन होन हुए भा की गई रचना क भीतर जो सगति स्थापित हा चुका
 है उसम जम नहीं पाते शीघ्र श्रवान्तर प्रतात होत है। किन्तु यदि उन्हें महत्व
 पूरण जानकर ठूंम ठांस की जाए तो दूसरे प्रकार वा सगति के लिए प्रयत्न करना
 होगा क्योंकि ठूस ठांस स पहले प्रकार की सगति ता टूट पूट चुकी है। सधप
 म सवन्तात्मक उद्देश्या द्वारा उनकी अपनी दिशा म परिचालित होन वाली
 निधायक बलाना द्वारा जीवन वा जो पुनरचना हुई है उसम डूबर आत्मा
 प्रण करने वाली गान प्राप्त करन वाली जा अनुभूति है—वह जो कलात्मक
 अनुभूति या सौंदर्य अनुभूति है उसके कुछ अशा क अतिरिक्त कवि कम वा
 आनन्द भा उही क्षणी होता रहता है।

मनुष्य मन उदास हातर जिदगी म गरा दिलचस्पी लन लगता है। मातव
 जीवन उसका मूल विषय हो जाता है। शीघ्र उस जीवन की प्ररणएँ उसे बेचन
 करती हैं। वह काय की शीघ्र भा प्रवृत्त होता है। इसलिए हेमिगवे शीघ्र काडवेल
 सपन क मुद्ध म गय थे। अपना इन भीतरा कलात्मक प्ररणाम्री के कारण हा क
 उस शीघ्र उमुख हुए। अनकानक रुसा लखने न श्रद्धवर कानि म शीघ्र दूसरे
 शिष्यमुद्ध म अपने देश की शर स भाग लिया। यही कारण है कि साय आज भा
 अपने देश की राजनीतिक शीघ्र सामाजिक समस्याभा म शीघ्र देशवासी जनता क
 जीवन म शिचस्पी रखता है।

यह कहना विलुल गलत है कि कलाकार क लिए राजनतिक प्रेरणा कना
 त्मक प्ररण नही है, अथवा विमुद्ध दाशनिक अनुभूति कलात्मक अनुभूति नही
 है बशर्ते कि वह सच्ची वास्तविक अनुभूति हो छद्मजात न हो। यह

रिलकुन मनी है कि कलाकार की प्रवृत्ति राजनीति या दार्शनिक की प्रवृत्ति मनी है । वह राजनीतिक क्षेत्र में भी जिन आदर्शों का पकड़ जाता है व आदर्श हृदय के अग्रिमोम विस्तार के आदेश में सम्बद्ध होने के कारण उन कलाकार के लिए तो कलात्मक ही हैं । वह राजनीतिक कारण प्राप्त करने के लिए राजनीति में मनी जाना, पद प्राप्ति के लिए या कीर्ति के लिए भी गढ़ बना नहीं जाता बरन मानव-जीवन के एक क्षेत्र में भोगत में लेन, शान-शीति प्राप्त करने और उसे उत्तमतर बनाने और उचित दिशा में परिवर्तित करने के लिए वहाँ जाता है । यह विशेष अर्थ में उसके लिए राजनीतिक आदर्श कलात्मक ही है यदि वह दर्शन के क्षेत्र में भी जाता तो इसलिए मनी कि वह पूर्वप्राप्त शान की काट छोटकर एक नया पद्धति चलाय बरन इसलिए उन अपनी और दूसरा की जिज्ञासा का एक बड़ा टिप्पस मिल गय । हाँ यह मभव है कि इस बीच लगे हाथ वह अपना एक नया वाद चलाय, लेकिन वह तो अनायास ही होता है । मच ता यह है कि उनका दार्शनिक वृत्ति, जीवन की अधिकाधिक उच्चतर परिणति के लिए होती है—हाँ यहाँ बात अलग है कि वह जिम उच्चतर कहता हो वह वस्तुतः उच्चतर न हो । संक्षेप में कलाकार के दार्शनिक प्रयत्न वस्तुतः कलात्मक प्रयत्न ही हैं ।

हमारे यहाँ कुछ एक महामनीषी भा है जा लखन का हृदय के द्रवण से मलग कल्पना का ज्ञप्ति के क्षण में बाँध रखना चाहत हैं । व उसे केवल उस क्षण में ही कलाकार ममभने हैं । वे यह नहीं ममभन कि कलाकार का ज्ञप्ति-व धारे धीरे चलता है कि कलाकार के व्यक्तित्व निर्माण की भी ममभ्याएँ हानी हैं और व ममभ्याएँ और कलात्मक चेतना इसी जीवन में विकसित हाना है । व यह ममभना चाहत कि वास्तविक कलाकार की हालत यह है कि उनका कलाकार की हैमियत उसमें मनी भी नहीं छूटता—बायानय में भी मनी, चूल्हा फूटन वक्त भी मनी, लकड़ी चारन वक्त भी मनी अस्पताल से दवाइ लान वक्त भी मनी पिताजी के परदारन ममय भी मनी कज भेने वाचे पठान के ममभन भी मनी, बालक के जन्म के समय भी मनी शमशान-यात्रा में भी मनी प्रेतानि में लकड़ा डालन वक्त भी मनी । कलाकार का वन छाया वन व्यक्तित्व वन हैमियत उनके साथ-साथ मनी हुई है वह हर जगह हर मीने पर है । हाँ हाँ सक्ता है कि मनी वह अधिक तीव्र और उड़ीण होगी कही अप और मद । पाँच बजकर एक मिनट पर कम तेज और पाँच बजकर दस मिनट पर ज्यादा तेज । स रेप में कलाकार का एक मच्छा वास्तविक मनोमय जीवन होना है जो उसके साथ चलता रहता है चाहे वह जहाँ जाय जहाँ । मुश्किल मंड है कि बहुत से लेखक ऐसे मने हैं जिनका यह मनोमय जीवन बहुत खिलना मनी क्षण भंगुर और सक्षिप्त होता है । मी यह सम्भव है कि छत्र भाव और भाषा पर उनका

अधिकार मान के कारण एस बनाकर जिाने पात जीवन की सामग्री बम्बुन
 अस्य है गुत्तर गुत्तर चिन्तादिनीय पस्तुन करके और उनका पश्चिमिग कर्के व
 अमरता र अधिराग हो जाय । एग प्रकार की चन्ना साहित्यिका तथा प्रकाशका
 के समाज की वस्तुस्थिति पर निर्भर रहता है युग की विक्षयताओं पर निर्भर
 रहती है । चूनि व हमारा मून नियम नहीं है इमनिग उमरे सम्बन्ध म म्म चुप
 रहण । हम ता मिफ यह कन्ता चाहते हैं कि मनामय जीवन का यह जा दूसरा
 स्तर है यह बलाकार के लिए न कवल महत्वपूर्ण है वरन् मच्च बलाकारों के
 लिए व्म अत्यन्त स्वाभाविक ही हाना है । इगी दूसरे स्तर के मनामय जीवन के
 प्राप्तगन न मालूम जिता ही प्रकार की समस्याए उसने हृदय को स्पश करता
 रहती हैं न जाने कितन ही उच्च जीवन चित्र उम भीतर स प्रेरित करत हैं । साथ
 ही नव-नय जीवन-शाखा के अनुभव प्राप्त करने की प्राप्न करत रहने की उम
 इच्छा हाती है ।

साधारणत यह देखा गया है कि हमारा जलक प्रारम्भिक प्रयत्ना के
 धनतर प्राप्त हुई आपक्षित श्वाति के उपरान्त, आर्थिक सुसज्जना ऊपरा
 पालिश और अच्चा जिदगी बसर करने की और प्रवत्त हाजर ऊन प्रकाशका,
 ऊपरी अधिकारिया, अष्ट सम्पर्कों और शक्तिशाला तन्वों में गात् समग्री का प्राप्त
 करन के लिए छटपटाना रहता है । यही वह आधार भूमि है जहा वह व्यक्तिक
 स्वातन्त्र्य का प्रयोग करता है । इस प्रकार के जीवन म उसे प्रनेक प्रकार की
 सफलताए और असफलताए होती है । यही नहीं, जो ससग और जा सम्पत्क प्राप्त
 हाते हैं वे इतन प्रगात् और आत्मीय नहीं हो पाते कि मन का तृप्ति हा । मन का
 न केवल प्रम चाहिए उसे एक ऐसी दिशा भा चाहिए कि जिम और वह जिदगा
 माड सके । वस यहा नहीं हा पाता, वह दिशा नहीं मिल पाती । फन्त उन
 ममताँ और मध्यकों को बनाये रखन के लिए श्रेय्ठा और उत्तमा की बठक म
 जाने जान के लिए उनम स एक बनने के लिए वह चाह जो करता है । हिंदी के
 साहित्य क्षेत्र म एक लम्बे असें से दो विषेय बग काम करते आ रहे ह । एक
 को हम कहेंगे सुसम्पन्न उच्च मध्यवग और दूसरे का हम कहेंगे गरीब निम्न
 मध्यवग । इस सुसम्पन्न मध्यवग ने हिन्दी साहित्य म बहुत कुछ काम किया ह ।
 फन्त प्रसात् प्राप्ति इसी सुसम्पन्न मध्यवग की प्रगाड छाया माया के एक अग
 य । किन्तु प्रेमचन्द नहीं । प्रेमचन्द और नन्ददुलार वाजपेयी के बीच जा विवाद
 चन पडा था वस्तुन यह दो विपरान प्रवृत्तियों दो विपरान्त सुखा दा विपरान
 रवया दो प्रतिकूल दष्टिकाशा की सापसी लडाई थी । नन्ददुलार वाजपेयी और
 प्रेमचन्द की मुठभेद विचारधारागत थी । प्रेमचन्द की जन-नात्रिक मनाधारा
 भारतीय सस्कृति के साद्वयलाक म पलन वाल आध्यात्मिक माया स्वप्ना से
 अनस्थूत बलाघाद से टकरा जाती थी । वाजपेयी और प्रेमचन्द का भगडा

भावस्मिन्व नहीं था। वह प्राकृतिक और अनिश्चय था।

किंतु आज के हमारे निम्न मध्यवर्गीय लेखक लोग अपने ही दरिद्र बंधु बांधवों को तनाव देकर उनके अपने बग का त्याग करन के लिए उत्सुक रहते हैं। वे शीघ्रताशीघ्र एरिस्टोश्रेटिक पश्चिमीकृत सम्करण बनाना चाहते हैं। यह ज्ञान मासतौर से वे शहरों के निम्न मध्या का है। वे अपनी आधार भूमि का छाड़कर पराई आधार भूमि पर स्थित होना चाहते हैं। उच्च मध्यवर्गीयों का जीवन प्रणाली के प्रति उनका अत करण में नोभ-लालमा जगती रहती है। आश्चर्य की बात है कि बहुतरे स्यातिप्राप्त प्रगतिशाल लेकिन एक जमान के निम्न मध्यवर्गीय लेखकों ने भी, वही एरिस्टोश्रेटिक जि दगी अपना ला है। उन्होंने अपने बग का त्याग कर दिया है। इस अभिशाप से वाइ बचा नहीं है। एसी हालत में, उनकी प्रगतिशील भाव धारा केबन दन पूजा को भाति आध्यात्मिक और कृत्रिम हो जाती है—भने हा वे अपना शब्द क्रियाधा में प्रगतिशील भावना का दीपक जगायें। उन्होंने अपने हा बग की जनता का त्याग कर दिया है। यहा कारण है कि उनकी प्रगतिशील भाव धारा यात्रिक है कृत्रिम है देव पूजा के मन्त्रा के समान है। उनके अपने मान्दित्य में, निम्न मध्यवर्ग का चित्रण होने हुए भी उमम जान नहीं है।

एसा स्थिति में यदि निम्न मध्यवर्ग के अथ लेखक ऊच एरिस्टोश्रेटिक जीवन के माया-ज्ञान में फसकर लाभ-लालमा, ईर्ष्या और द्वेष के आवरण में जलकर उमा उच्च मध्यवर्गीय मान्दित्याभिरुचि, मनाकति, भाव धारा आदि को अपनाकर, अन्न करण के नाम पर हृदय के नाम पर बला के नाम पर, अत करण हन्य और बला से का काट छांटकर फेंकें तो हमम आश्चर्य ही क्या है !!

